हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीजका १८ वाँ ग्रन्थ ।

राजा और प्रजा ।

जगत्प्रसिद्ध लेखक और कवि

डा० रवीन्द्रनाथ टागोरकी

राजा और प्रजा ' नामक निबन्धावलीका अनुवाद ।

अनुवादकर्त्ता—

श्रीयुत बाबू रामचन्द्र वर्मा ।

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय ।

आश्विन, १९७६ वि० ।

सितम्बर, सन् १९१९ ई० ।

प्रथमावृत्ति ।] [मूल्य एक रुपया ।

जिल्द-सहितका मूल्य १।=)

प्रकाशक—

नाथूराम प्रेमी,

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।

प्रिण्टर—

मंगेश नारायण कुलकर्णी,

कर्नाटक छापखाना,

४३४ ठाकुरद्वार, बम्बई।

निवेदन।

इसके पहले हमारे पाठक जगत्प्रसिद्ध लेखक सर रवीन्द्रनाथ टागोरकी दो निबन्धावलियाँ (स्वदेश और शिक्षा) पढ़ चुके हैं । आज यह तीसरी निबन्धावली उपस्थित की जाती है। हमारा विश्वास है कि हिन्दीके राजनीतिक साहित्यमें यह एक अपूर्व चीज होगी। इसमें पाठकोंको कवि-सम्राटकी सर्वतोमुखी प्रतिभाका दर्शन होगा। वे देखेंगे कि रवीन्द्र बाबूका राजनीतिक ज्ञान भी कितना गंभीर, कितना प्रौढ़ और कितना उन्नत है। हमारी समझमें राजनीतिके क्षेत्रमें काम करनेवालोंको और अपने प्यारे देशकी उन्नति चाहनेवालोंको ये निबन्ध पथ-प्रदर्शकका काम देंगे। राजा और प्रजाके पारस्परिक सम्बन्धको स्पष्टताके साथ समझनेके लिए ऐसे अच्छे विचार शायद ही कहीं मिलेंगे।

निबन्ध पुराने हैं, कोई कोई तो २५-२६ वर्ष पहलेके लिखे हुए हैं; फिर भी वे नये से मालूम होते हैं। उनमें जिन सत्यों पर विचार किया गया है, वे सार्वकालिक और सार्वदेशीय हैं, और इस लिए वे कभी पुराने नहीं हो सकते— उनकी जीवनी शक्ति सदा स्थिर रहेगी।

पाठकोंसे यह निवेदन कर देना आवश्यक है कि ये निबन्ध अध्ययन और मनन करने योग्य हैं—केवल पढ़ डालनेके नहीं। साधारण पुस्तकोंके समान पढ़ जानेसे ये समझमें भी नहीं आ सकते। इन्हें बारम्बार पढ़ना चाहिए और हृदयंगम करना चाहिए।

हिन्दी-संसारमें गंभीर और प्रौढ़ ग्रन्थोंके पढ़नेवालोंकी संख्या धीरे धीरे बढ़ रही है, यह जानकर ही हमने इस निबन्धावलीको प्रकाशित करनेका साहस किया है। आशा है कि इसके पढ़नेवाले हमें यथेष्ट संख्यामें मिल जावेंगे।

—प्रकाशक।

सूची ।

रवीन्द्र बाबूके अन्य ग्रन्थ।

१ स्वदेश। इसमें रवीन्द्रबाबूके १ नया और पुराना, २ नया वर्ष, ३ भारतका इतिहास, ४ देशी राज्य, ५ पूर्वीय और पाश्चात्य सभ्यता, ६ ब्राह्मण, ७ समाजभेद, और ८ धर्मबोधका दृष्टान्त, इन आठ निबन्धोंका हिन्दी अनुवाद है। अपने देशका असली स्वरूप समझनेवालोंको, उसके अन्तःकरण तक प्रवेश करनेकी इच्छा रखनेवालोंको, तथा पूर्व और पश्चिमका अन्तर हृदयंगम करने-वालोंको ये अपूर्व निबन्ध अवश्य पढ़ने चाहिए। बड़ी ही गंभीरता और विद्वत्तासे ये निबन्ध लिखे गये हैं। तृतीयावृत्ति हो चुकी है। मू० ॥=)

२ शिक्षा। इसमें १ शिक्षा-समस्या, २ आवरण, ३ शिक्षाका हेरफेर, ४ शिक्षा-संस्कार और ५ छात्रोंसे संभाषण, इन पाँच निबन्धोंके अनुवाद हैं। इनमें शिक्षा और शिक्षापद्धतिके सम्बन्धमें बड़े ही पाण्डित्यपूर्ण विचार प्रकट किये गये हैं। इनसे आपको मालूम होगा कि हमारी वर्तमान शिक्षापद्धति कैसी है, स्वाभाविक शिक्षापद्धति कैसी होती है और हमें अपने बच्चोंको कैसी शिक्षासे शिक्षित करना चाहिए। मूल्य नौ आने।

३ आँखकी किरकिरी। यह रवीन्द्रबाबूके बहुत ही प्रसिद्ध उपन्यास 'चोखेर बालि' का हिन्दी अनुवाद है। वास्तवमें इसे उपन्यास नहीं किन्तु मानस शास्त्रके गूढ़ तत्त्वोंको प्रत्यक्ष करानेवाला मनोमोहक चित्रपट कहना चाहिए। मनुष्योंके विचारोंमें बाहरी घटनाओं और परिस्थितियोंके कारण जो अगणित परिवर्तन होते हैं उनका आभास आपको इसकी प्रत्येक पंक्ति और प्रत्येक वाक्यमें मिलेगा। सहृदय पाठक इसे पढ़कर मुग्ध हो जायँगे। बड़ा ही सरस उपन्यास है। जो लोग केवल प्रेम-कथायें पढ़ना पसन्द करते हैं, उनका भी इससे खूब मनोरंजन होगा। क्योंकि इसमें भी एक प्रेम-कथा ग्रथित की गई है। अनुवाद बहुतही उत्तम हुआ है। तृतीयावृत्ति। मू० १॥=)

मैनेजर, **हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,**
हीराबाग, पो० गिरगाँव, **बम्बई।**

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीज ।

हिंदी-संसारमें नये ढंगके उच्चश्रेणीके ग्रन्थ प्रकाशित करनेवाली सबसे प्रसिद्ध और सबसे पहली ग्रन्थमाला विक्रम संवत् १९६५ से बराबर निकल रही है। अब तक नीचे लिखे ४० ग्रन्थ निकल चुके हैं। स्थायी ग्राहकोंको सब ग्रन्थ पौनी कीमतसे दिये जाते हैं। आठ आने 'प्रवेश फी' देनेसे चाहे जो ग्राहक बन सकता है।

१-२	स्वाधीनता	२)
३	प्रतिभा (उप०)	१।)
४	फूलोंका गुच्छा (गल्पें)	॥-)
५	आँखकी किरकिरी (उप०)	१॥=)
६	चौबेका चिट्ठा	॥।)
७	मितव्ययता	॥।≡)
८	स्वदेश (निबन्ध)	॥=)
९	चरित्रगठन और मनोबल	≡)
१०	आत्मोद्धार (जीवनी)	१)
११	शान्तिकुटीर	॥=)
१२	सफलता	॥।)
१३	अन्नपूर्णाका मन्दिर(उप०)	॥।)
१४	स्वावलम्बन	१॥)
१५	उपवास-चिकित्सा	॥।)
१६	सूमके घर धूम (प्रहसन)	≡)
१७	दुर्गादास (नाटक)	१)
१८	बंकिम-निबन्धावली	॥।=)
१९	छत्रसाल (उप०)	१॥)
२०	प्रायश्चित्त (नाटक)	।)
२१	अब्राहम लिंकन	॥=)
२२	मेवाड़-पतन (नाटक)	॥।)
२३	शाहजहाँ ,,	॥।=)
२४	मानव-जीवन	१।=)
२५	उस पार (नाटक)	१)
२६	ताराबाई ,,	१)
२७	देश-दर्शन	२)
२८	हृदयकी परख (उप०)	॥।=)
२९	नव-निधि (गल्पें)	॥।=)
३०	नूरजहाँ (नाटक)	१)
३१	आयर्लैण्डका इतिहास	१॥।=)
३२	शिक्षा (निबन्ध)	॥-)
३३	भीष्म (नाटक)	१=)
३४	कावूर (चरित)	१)
३५	चन्द्रगुप्त (नाटक)	१)
३६	सीता ,,	॥-)
३७	छाया-दर्शन	१।)
३९	गोबर-गणेश-संहिता	॥=)

प्रकीर्णक पुस्तकमाला।

सीरीजके सिवाय हमारे यहाँसे नीचे लिखी हुई फुटकर पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं।

व्यापार-शिक्षा ... ... ॥-)
युवाओंको उपदेश ... ॥-)
शान्ति-वैभव ... ... ।-)
कनकरेखा (गल्पें) ... ॥।)
कोलम्बस (जीवनी) ... ॥।)
बच्चोंके सुधारनेके उपाय ... ॥)
ठोक पीटकर वैद्यराज ... ।-)
मणिभद्र (उपन्यास) ... ॥=)
हिन्दीजैनसाहित्यका इतिहास ।=)
संन्तान-कल्पद्रुम... ... ॥।)
पिताके उपदेश ... ... =)
अच्छी आदतें ... ... =)॥
अस्तोदय और स्वावलम्बन... १=)
देवदूत (काव्य) ... ... ।=)

विधवा-कर्तव्य ... ... ॥)
भारत-रमणी (नाटक) ... ॥।=)
बूढ़ेका ब्याह (काव्य) ... ।=)
प्राकृतिक चिकित्सा ... ।=)
योग-चिकित्सा ... ... =)
दुग्ध-चिकित्सा ... ... =)
लन्दनके पत्र ... ... ≡)
ब्याहीबहू (स्त्रीशिक्षा) ... ≡)
अंजना-पवनंजय (काव्य) ... =)॥
श्रमण नारद ... ... =)
सदाचारी बालक ... ... =)
दियातले अँधेरा ... ... -)॥
भाग्य-चक्र ... ... -)
विद्यार्थी जीवनका उद्देश्य ... -)

नोट—हमारे यहाँ अन्यान्य प्रकाशकोंके भी उत्तमोत्तम ग्रन्थ विक्रीके लिये मौजूद रहते हैं।

मैनेजर—**हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,**
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

राजा और प्रजा ॥

अँगरेज और भारतवासी ।

There is nothing like love and admiration for bringing people to a likeness with what they love and admire; but the Englishman seems never to dream of employing these influences upon a race he wants to fuse with himslf. He employs simply material interests for his work of fusion; and, beyond these nothing except scorn and rebuke. Accordingly there is no vital union between him and the races he has annexed; and while France can freely boast of her magnificent unity, a unity of spirit no less than of name between all the people who compose her, in our country the Englishman proper is in union of spirit with no one except other Englishmen proper like himself.

Matthew Arnold.

हमारे यहाँके प्राचीन पुराणों और इतिहासोंमें लिखा है कि जबतक चरित्र या आचरणमें कोई छिद्र (या दोप) न हो तबतक अलक्ष्मीको प्रवेश करनेका कोई मार्ग नहीं मिलता, लेकिन दुर्भाग्यवश प्रत्येक जातिमें एक न एक छिद्र हुआ ही करता है । इससे भी बढ़कर दुर्भाग्यका विपय यह है कि जिस बातमें मनुष्यकी दुर्बलता होती है उसीपर उसका स्नेह भी अधिक होता है । अँगरेज लोग भी अपने चरित्रमें उद्धतताका पालन एक प्रकारके कुछ विशेष गौरवके साथ करते हैं । अपनी द्वैपायन संकीर्णतामें वे जो अटल रहते हैं और भ्रमण

अथवा शासन कार्य्यों आदिके सम्बन्धमें जिन लोगोंके साथ उन्हें काम पड़ता है उन लोगोंके साथ मेल-मिलाप करनेका जो कुछ भी प्रयत्न नहीं करते हैं, उनके इस गुणको साधारण लोग मन ही मन कुछ श्लाघाका विषय समझते हैं। उसका भाव यही है कि जिस प्रकार ढेंकी स्वर्ग पहुँच जानेपर भी ढेंकी ही बनी रहती है (अर्थात् उसे सब जगह धान कूटनेका ही काम करना पड़ता है,) उसी प्रकार अँगरेज सभी स्थानोंपर सदा अँगरेज ही रहते हैं। चाहे कुछ हो वे किसी प्रकार अँगरेज होनेके सिवा और कुछ हो ही नहीं सकते।

अँगरजोंमें मनोहारिताका जो यह अभाव है, वे लोग अपने अनुचरों और आश्रितोंके अंतरंग बनकर उनके मनका भाव जाननेकी ओर जो सदा पूरी उपेक्षा करते हैं, वे लोग समस्त संसारका अपने ही संस्कारोंके अनुसार जो विचार करते हैं वही अँगरेजोंके चरित्रमें छिद्र और अलक्ष्मीके प्रवेशका एक मार्ग है।

जब कहींसे शत्रुके आनेकी जरा भी संभावना होती है तब अँगरेज लोग इस छिद्रको बहुत ही यत्नपूर्वक बन्द करते हैं; जहाँ जहाँ जितने मार्ग होते हैं उन सभी मार्गोंपर वे पहरे बैठा देते हैं और आशंकाके अंकुरतकको पददलित करके छोड़ते हैं। परन्तु उनके स्वभावमें जो एक नैतिक विघ्न है उस विघ्नको वे सदा आश्रय देकर दुर्दम करते जा रहे हैं। कभी कभी वे स्वयं ही उसपर थोड़ा बहुत आक्षेप कर बैठते हैं परन्तु ममतावश वे उसे दूर किसी प्रकार नहीं कर सकते। यह बात ठीक वैसी ही है कि एक आदमी बूट पहनकर अपने हरे भरे खेतमें इस विचारसे चारों तरफ चलता है कि जिसमें पक्षी मेरी फसलमेंका एक दाना भी न खा सकें। उसके इस प्रकार बूट पहनकर तेजीके साथ चलनेसे पक्षी भाग तो अवश्य जाते हैं, परन्तु

उसको इस बातका कोई ध्यान नहीं रहता कि उसके कड़े बूटके तलेसे बहुतसी फसल नष्ट-भ्रष्ट भी हो जाती है ।

हम लोग सब प्रकारके शत्रुओंके उपद्रवोंसे रक्षित हैं । विपत्तिकी हम लोगोंको कोई आशंका नहीं है । केवल हमारी छाती पर अकस्मात् वह बूट आ पड़ता है । हम लोगोंको तो उससे वेदना होती ही है पर यह बात नहीं है कि उससे उस बूट पहनकर चलनेवालेकी कोई हानि न होती हो । लेकिन अँगरेज सब स्थानों पर अँगरेज ही हैं; वे कहीं अपना बूट उतारकर जाने आनेके लिये तैयार नहीं हैं ।

आयर्लैण्डके साथ अँगरेजोंका जो झगड़ा खड़ा हुआ है, हमारे लिये उसका जिक्र करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । अधीन भारतवर्षमें भी यह बात देखी जाती है कि अँगरेजोंके साथ अँगरेजी शिक्षितोंकी अनबन धीरे धीरे होती ही जा रही है । छोटेसे छोटा अवसर पाकर भी दोनोंमेंसे कोई दूसरेको छोड़ना नहीं चाहता । ईंटके बदलेमें पत्थर मारा जा रहा है ।

यह बात नहीं है, कि हम लोग सभी अवसरों पर सुविचारपूर्वक पत्थर फेंकते हों । अधिकांश अवसरों पर हम लोग अंधकारमें ही ढेला मारते हैं । यह बात अस्वीकृत नहीं की जा सकती कि हम लोग अपने समाचारपत्रों आदिमें अनेक अवसरों पर अन्यायपूर्ण ही झगड़ा करते हैं और बिना जड़का टंटा-बखेड़ा खड़ा कर लेते हैं ।

लेकिन इन सब बातोंका स्वतंत्र रूपसे विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है । उनमेंसे कोई बात सत्य और कोई झूठ, कोई न्याययुक्त और कोई अन्याययुक्त हो सकती है । वास्तविक विचारणीय विषय यह है कि आजकल इस प्रकार ईंटें और पत्थर चलानेकी प्रवृत्ति

जो इतनी प्रबल हो गई है वह क्यों ? शासनकर्त्ता हमारे यहाँके समाचारपत्रोंके किसी एकाध प्रबंध-विशेषको मिथ्या बतलाकर उसके सम्पादकको और यहाँ तक कि हतभाग्य मुद्रकको भी जेल भेज सकते हैं, किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यके पथमें प्रतिदिन जो ये छोटे छोटे कँटीले पेड़ बढ़ते जा रहे हैं उनका कौनसा विशेष प्रतिकार किया गया है ?

ऐसी दशामें जब कि इन कँटीले वृक्षोंका मूल मनमें है तब उन वृक्षोंको उखाड़ फेंकनेके लिये उसी मनमें प्रवेश करना आवश्यक होगा। किन्तु पक्की और कच्ची सड़कोंके द्वारा अँगरेज लोग और तो सब जगह जाआ सकते हैं परन्तु दुर्भाग्यवश वे उस मनके अन्दर नहीं जा सकते। उस जगह प्रवेश करनेके लिये तो कदाचित् सिरको थोड़ा झुकाना पड़ता है। लेकिन अँगरेजोंका मेरुदण्ड कहीं झुकना चाहता ही नहीं।

विवश होकर अँगरेज लोग अपने आपको यही समझानेकी चेष्टा करते हैं कि समाचारपत्रोंमें जो ये कड़वी बातें कही जाती हैं, ये जो सभाएँ होती हैं और राज्यतंत्रकी यह जो अप्रिय समालोचना हुआ करती है उसके साथ सर्वसाधारणका कोई सम्बन्ध नहीं है। ये सब उपद्रव केवल थोड़ेसे शिक्षित पुतली नचानेवालोंके ही उठाए हुए हैं। वे लोग कहते हैं कि अन्दर तो सभी बातें बहुत ठीक हैं और बाहर जो विकृतिका थोड़ा बहुत चिह्न दिखलाई देता है वह सब इन्हीं चतुर लोगोंका बनाया हुआ है। ऐसी अवस्थामें फिर अन्दर प्रवेश करके कुछ देखनेकी आवश्यकता रह नहीं जाती; केवल जिन चतुर लोगों-पर सन्देह किया जाता है उन्हींको दण्ड देनेसे सब झगड़ा खतम हो जाता है।

इसीमें अँगरेजोंका दोष है। वे किसी प्रकार घरमें (ठिकानेपर) आना ही नहीं चाहते। किन्तु दूर ही दूरसे, बाहर ही बाहरसे, सब प्रकारका स्पर्श आदि तक भी बचाकर मनुष्यके साथ किसी प्रकारका व्यवहार नहीं किया जा सकता। आदमी जितना ही अधिक दूर रहता है उसको विफलता भी उतनी ही अधिक होती है। मनुष्य कोई जड़ यंत्र तो है ही नहीं, जो वह बाहरसे ही पहचान लिया जा सके। यहाँ तक कि इस पतित भारतवर्षके भी एक हृदय है और उस हृदयको उसने अपने अँगरखेकी आस्तीनमें नहीं लटका रक्खा है।

जड़ पदार्थको भी विज्ञानकी सहायतासे बहुत अच्छी तरह पहचानना पड़ता है और तभी जाकर जड़ प्रकृतिपर पूर्ण रूपसे अधिकार किया जा सकता है। इस संसारमें जो लोग अपने स्थायी प्रभावकी रक्षा करना चाहते हैं उनके लिये अन्यान्य अनेक गुणोंके साथ साथ एक इस गुणका होना भी आवश्यक है कि वे मनुष्योंको बहुत अच्छी तरहसे पहचान सकें, उनके हृदयके भाव समझ सकें। मनुष्यके बहुत ही पास पहुँचनेके लिये जिस क्षमताकी आवश्यकता होती है वह क्षमता बहुत ही दुर्लभ है।

अँगरेजोंमें बहुत सी क्षमताएँ हैं किन्तु यही क्षमता नहीं है। वे बल्कि उपकार करनेसे पीछे न हटेंगे किन्तु किसी प्रकार मनुष्यके पास जाना न चाहेंगे। वे किसी न किसी प्रकार उपकार करके चटपट अपना पीछा छुड़ा लेंगे और तब क्लबमें जाकर शराब पीएँगे, बिलियर्ड खेलेंगे और जिसके साथ उपकार करेंगे उसके सम्बन्धमें अवज्ञाविषयक विशेषणोंका प्रयोग करते हुए उसके विजातीय शरीरको यथासाध्य अपने मनसे दूर कर देंगे।

यह लोग दया नहीं करते केवल उपकार करते हैं, स्नेह नहीं करते केवल रक्षा करते हैं, श्रद्धा नहीं करते बल्कि न्यायानुसार आचरण करनेकी चेष्टा करते हैं; जमीनको पानीसे नहीं सींचते पर हाँ, ढेरके ढेर बीज बोनेमें कंजूसी नहीं करते।

लेकिन ऐसा करने पर यदि यथेष्ट कृतज्ञताके पौधे न उगें तो क्या उस दशामें केवल जमीनको ही दोष दिया जायगा? क्या यह नियम विश्वव्यापी नहीं है कि यदि हृदयके साथ काम न किया जाय तो हृदयमें उसका फल नहीं फलता?

हमारे देशके शिक्षित-सम्प्रदायके बहुतसे लोग प्राणपणसे इस बातको प्रमाणित करनेकी चेष्टा करते हैं कि अँगरेजोंने हम लोगोंके साथ जो उपकार किये हैं वे उपकार नहीं हैं। हृदयशून्य उपकारको ग्रहण करके वे लोग अपने मनमें किसी प्रकारके आनन्दका अनुभव नहीं कर सकते। वे लोग किसी न किसी प्रकार उस कृतज्ञताके भारसे मानों अपने आपको मुक्त करना चाहते हैं। इसी लिये आजकल हमारे यहाँके समाचारपत्रोंमें और बातचीतमें अँगरेजोंके सम्बन्धमें अनेक प्रकारके कुतर्क दिखाई देते हैं।

कहनेका तात्पर्य यह है कि अँगरेजोंने अपने आपको हम लोगोंके लिये आवश्यक तो कर डाला है लेकिन अपने आपको प्रिय बनानेकी आवश्यकता नहीं समझी। वे हम लोगोंको पथ्य तो देते हैं परन्तु उस पथ्यको स्वादिष्ट नहीं बना देते और अन्तमें जब उसके कारण कै हो जाती है तब व्यर्थ आँखें लाल करके गरज उठते हैं।

आजकलका अधिकांश आन्दोलन मनके गूढ क्षोभसे ही उत्पन्न है। इस समय प्रत्येक ही बात दोनों पक्षोंकी हार जीतकी बात हो जाती है। जिस अवसर पर केवल दो चार मुलायम बातें कहनेसे ही

बहुत अच्छा काम हो सकता हो वहाँ हम लोग तीव्र भाषामें आग उगलने लग जाते हैं और जिस अवसर पर किसी साधारण अनुरोधके पालन करनेमें कोई विशेष हानि नहीं होती उस अवसर पर भी दूसरा पक्ष विमुख हो जाता है।

किन्तु सभी बड़े अनुष्ठान ऐसे होते हैं कि उनमें विना पारस्परिक सद्भावके काम नहीं चलता। पचीस करोड़ प्रजाका अच्छी तरह शासन करना कोई सहज काम नहीं है। जब कि इतनी बड़ी राजशक्तिके साथ कारबार करना हो तब संयम, अभिज्ञता और विवेचनाका होना आवश्यक है। गवर्नमेण्ट केवल इच्छा करके ही सहसा कोई काम नहीं कर सकती। वह अपने बड़प्पनमें डूबी हुई है, अपनी जटिलतासे जकड़ी हुई है। यदि उसे जरा भी कोई काम इधरसे उधर करना हो तो उसे बहुत दूरसे बहुतसी कलें चलानी पड़ती हैं।

हमारे यहाँ एक और बड़ी बात यह है कि ऐंग्लोइंडियन और भारतवासी इन दो अत्यन्त असमान सम्प्रदायोंका ध्यान रखते हुए सब काम करना पड़ता है। बहुतसे अवसरोंपर दोनोंके स्वार्थ परस्पर विरोधी होते हैं। राज्यतंत्रका चालक इन दो विपरीत शक्तियोंमेंसे किसी एककी भी उपेक्षा नहीं कर सकता और यदि वह उपेक्षा करना चाहे तो उसे विफल होना पड़ता है। हम लोग जब अपने मनके अनुसार कोई प्रस्ताव करते हैं तब अपने मनमें यही समझते हैं कि गवर्नमेण्टके लिये मानों ऐंग्लोइंडियनोंकी बाधा कोई बाधा ही नहीं है। लेकिन सच पूछिए तो शक्ति उन्हींकी अधिक है। प्रबल शक्तिकी अव-हेला करनेसे किस प्रकार संकटमें पड़ना पड़ता है इसका परिचय एल्बर्ट बिलके विप्लवसे मिल चुका है। यदि कोई सत्य और न्यायके पथमें भी रेलगाड़ी चलाना चाहे तौ भी उसे पहले यथोचित उपायसे मिट्टी

बराबर करके लाइन बिछानी पड़ेगी। यदि धीरज धरकर उस समय थोड़ी अपेक्षा की जाय और उस कामको सम्पन्न हो लेने दिया जाय, तो पीछे बहुत जल्दी जल्दी चलनेका अच्छा सुभीता हो जाता है।

इंग्लैण्डमें राजा और प्रजामें कोई विषमता नहीं है और वहाँ राज्य-तंत्रकी कल बहुत दिनोंसे चलती आ रही है जिसके कारण अब उसका चलना सहज हो गया है। लेकिन फिर भी वहाँ यदि कोई हितजनक परिवर्त्तन करना होता है तो बहुत कुछ कुशलता, बहुत कुछ अध्यवसायकी आवश्यकता होती है और अनेक सम्प्रदायोंका अनेक प्रकारसे परिचालन करना पड़ता है। और फिर वहाँ विपरीत स्वार्थका इतना भीषण संघर्ष भी नहीं है। उस देशमें जहाँ एक बार युक्तिसे किसी प्रस्तावकी उपयोगिता सब लोगोंके सामने प्रमाणित कर दी जाती है तहाँ साधारण अथवा अधिकांश लोगोंका स्वार्थ एक हो जाता है और सब लोग उस प्रस्तावको ग्रहण कर लेते हैं। और हमारे देशमें जब कि दो शक्तियोंका झगड़ा है और जब कि हमीं लोग सब बातोंमें दुर्बल हैं तब केवल बातोंके जोरपर गवर्नमेण्टको विचलित करनेकी आशा नहीं की जा सकती। यहां दूर दूरके दूसरे उपायोंका अवलम्बन करना आवश्यक है।

राजकीय कार्योंमें सभी जगह डिप्लोमेसी (Diplomacy) है और भारतवर्षमें हम लोगोंके लिये उसकी सबसे अधिक आवश्यकता है। इस संसारमें केवल इसी बातसे कोई काम सहज नहीं हो जाता कि हम उस कामके होनेकी इच्छा करते हैं और हमारी इच्छा अन्याय-मूलक नहीं है। जब कि हम चोरी करने न जा रहे हों बल्कि अपनी ससुराल जा रहे हों तब यदि रास्तेमें कोई तालाब पड़ जाय तब हमें यह प्रण न कर लेना चाहिए कि हम उस तालाबके ऊपरसे होकर

ही चलेंगे। क्योंकि यदि हम ऐसा प्रण करेंगे तो कदाचित ससुराल न भी पहुँच सकेंगे। उस स्थानपर तालाबके किनारे किनारे घूमकर ही आगे बढ़ना अच्छा होगा। अपनी राजनीतिक ससुरालमें पहुँचनेके लिये भी जहाँ कि हमारे लिये अच्छे अच्छे पक्वान्न और बढ़िया बढ़िया मिठाइयाँ आदि रक्खी हुई हैं हमें अनेक प्रकारकी बाधाओंको अनेक उपायोंसे दूर करके आगे बढ़ना पड़ेगा। जिस स्थानपर केवल लाँघनेसे काम चल सकता हो वहाँ तो हमें लाँघना चाहिए और जहाँ लाँघनेका सुभीता न हो वहाँ हमें क्रोधित होकर और अड़कर न बैठ जाना चाहिए, वहाँ घूमकर ही आगे बढ़ना चाहिए।

डिप्लोमेसीसे हमारा मतलब कपटाचरण नहीं है। उसका वास्तविक मर्म्म यही है कि अपनी व्यक्तिगत हृदय-वृत्तिके कारण मनुष्य अकस्मात् विचलित न हो जाय और कार्यका नियम तथा समयका सुयोग समझकर काम करे।

लेकिन हम लोग उस मार्गसे होकर नहीं चलते। काम हो चाहे न हो पर हम लोग बात एक भी नहीं छोड़ सकते। इससे केवल यही नहीं होता कि हम लोगोंकी अनभिज्ञता और अविवेचना प्रकट होती है बल्कि यह भी प्रकट होता है कि काम करनेकी अपेक्षा हम लोग हुल्लड़ मचाना, वाहवाही लेना और अपने मनका गुबार निकालना ही अधिक चाहते हैं। जब इन सब बातोंका हमें कोई सुयोग मिलता है तब हम लोग इतने प्रसन्न हो जाते हैं कि हम लोगोंको यह भी याद नहीं रह जाता कि इन सब बातोंसे हमारे वास्तविक कार्य्यकी कितनी हानि होती है। और अप्रिय भर्त्सनाके उपरान्त उचित प्रार्थनाको स्वीकृत या पूर्ण करनेमें भी गवर्नमेण्टके मनमें दुबिधा हो जाती है और तब पीछेसे प्रजाकी स्पर्द्धा बढ़ने लगती है।

इसका मुख्य कारण यह है कि मनमें एक प्रकारका असद्भाव उत्पन्न हो गया है और वह असद्भाव दिनपर दिन बढ़ता ही जाता है जिसके कारण दोनों पक्षोंका कर्त्तव्यपालन धीरे धीरे कठिन होता जा रहा है। राजा और प्रजाकी दिनरातकी यह कलह देखनेमें भी अच्छी नहीं मालूम होती। गवर्नमेण्ट भी बाहरसे देखनेसे चाहे जैसी जान पड़े पर फिर भी यह विश्वास नहीं होता कि वह मन ही मन इस सम्बन्धमें उदासीन होगी। लेकिन इसका उपाय क्या है? हजार हो ब्रिटिश-चरित्र फिर भी तो मनुष्य-चरित्र ही है।

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो जान पड़ेगा कि इस समस्याकी मीमांसा सहज नहीं है।

सबसे पहला संकट तो वर्णके कारण है। शरीरका वर्ण जिस प्रकार धो-पोंछकर दूर नहीं किया जा सकता उसी प्रकार मनसे वर्ण-सम्बन्धी संस्कारका हटाना भी बहुत ही कठिन है। गोरे रंगवाले आर्य लोग हजारों वर्षोंसे काले रंगको घृणाकी दृष्टिसे देखते आए हैं। इस अवसरपर वेदोंके अँगरेजी अनुवाद एवं इन्साइक्लोपीडियासे इस सम्बन्धके अध्याय, सूत्र और पृष्ठसंख्यासमेत उत्कट प्रमाण देकर मैं पाठकोंके साथ निष्ठुरताका व्यवहार नहीं करना चाहता। जो बात है वह सभी लोग समझते हैं। गोरे और कालेमें उतना ही अन्तर है जितना कि दिन और रातमें है। गोरी जाति दिनके समान सदा जाग्रत रहती है और कर्म्मशील तथा अनुसन्धानशील है; और काली जाति रातके समान निश्चेष्ट और कर्महीन है और स्वप्न देखती हुई सो रही है। इस श्यामा प्रकृतिमें यदि हो तो रात्रिके समान कुछ गम्भीरता, मधुरता, स्निग्धता, करुणा और घोर आत्मीयताका भाव हो सकता है। पर दुर्भाग्यवश व्यस्त और चंचल गोरोंको उसका आविष्कार करनेका अवसर

नहीं है और साथ ही उनके नजदीक इसका कोई यथेष्ट मूल्य भी नहीं है। यदि उन लोगोंसे यह बात भी कही जाय कि काली गऊके स्तन-मेंसे भी सफेद ही दूध निकलता है और भिन्न वर्णोंमें परस्पर हृदयकी भारी एकता होती है तौ भी इस कहनेका कोई फल नहीं है। लेकिन ये सब ओरिएण्टल (Oriental) उपमाएँ देनेकी आवश्यकता नहीं है। कहनेका तात्पर्य यही है कि कालोंको देखते ही गोरी जातिका मन बिना कुछ विमुख हुए रह ही नहीं सकता।

और फिर वस्त्र, आभूषण, अभ्यास, आचार आदि सभी बातोंमें ऐसी विसदृशता है जो हृदयको केवल चोट ही पहुँचाया करती है।

ये सब तर्क भी व्यर्थ ही हैं कि शरीरको आधा ढाँककर और आधा नंगा रखकर भी मनके अनेक सद्गुणोंका पोषण किया जा सकता है। मानसिक गुण कुछ छायाप्रिय कोमल जातिके पौधोंके समान नहीं हैं और बिना जीन या बनातसे ढाँके दूसरे उपायोंसे भी उनकी रक्षा की जा सकती है। यह तर्ककी बात नहीं है बल्कि संस्कारकी बात है।

यदि दोनों जातियाँ बहुत ही पास पास और हिल-मिलकर रहें तो इस संस्कारका बल बहुत कुछ कम हो सकता है; परन्तु कठिनता तो यही है कि यह संस्कार ही किसी एकको दूसरेके निकट नहीं जाने देता। जिन दिनों स्टीमर नहीं थे और सारे आफ्रिकाकी परिक्रमा करके पालवाले जहाज बहुत दिनोंमें भारतसे चलकर बिलायत पहुँचते थे उन दिनों अँगरेज लोग भारतवासियोंके साथ कुछ अधिक घनिष्ठता रखते थे। लेकिन आजकल साहब बहादुर तीन ही महीनेकी छुट्टी पाते ही चटपट इंग्लैण्ड भाग जाते हैं और भारतकी जो धूल उनपर पड़ी होती है वह सब वहाँ धो आते हैं। और फिर इधर भारतवर्षमें भी उनका

आत्मीय समाज बराबर धीरे धीरे बढ़ता ही जाता है इसीलिये उनके लिये यह काम बहुत ही सहज हो गया है कि जिस देशको उन लोगोंने जीता है उस देशमें रहकर भी वे यथासंभव न रहनेवालोंके बराबर हो जायँ और जिस जातिका वे शासन करते हैं उस जातिके साथ प्रेम न करके भी बराबर अपना काम करते रहें। जिस तरह लोग दिनभर दफ्तरमें बैठकर काम करते और सन्ध्या समय घर जाकर आनन्दसे भोजन करते हैं उसी प्रकार हजार कोस दूरसे समुद्रपार करके एक सम्पूर्ण विदेशी राज्य यहाँ आता और अपना काम करके फिर समुद्र पार करता हुआ अपने घर चला जाता है और वहाँ आनन्द करता है। भला इतिहासमें कहीं ऐसा और भी कोई दृष्टान्त है?

अँगरेजोंके लिये हम लोग यों ही विदेशी हैं। हम लोगोंका रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श अँगरेजोंको स्वभावतः ही अरुचिकर होता है। तिसपर बीचमें एक और बात पैदा हो जाती है। ऐंग्लो-इंडियन-समाज इस देशमें जितना ही प्राचीन होता जाता है उतना ही उनके कितने ही लोकव्यवहार और जनश्रुति क्रमशः बद्धमूल होती जाती हैं। यदि कोई अँगरेज अपनी स्वाभाविक उदारता और सहृदयताके कारण बाहरी बाधाओंको दूर करके हम लोगोंके अन्तरमें प्रवेश करनेके लिये मार्ग निकाल सकता है और हम लोगोंको अपने अन्तरमें आह्वान करनेके लिये द्वार खोल सकता है तो वह यहाँ आते ही अँगरेज-समाजके जालमें फँस जाता है। उस समय उसका निजका स्वाभाविक संस्कार उसकी जातिके समाजके बहुतसे एकत्र संस्कारोंमें मिल जाता है और एक अलंध्य बाधाका स्वरूप धारण कर लेता है। पुराने विदेशी किसी नए विदेशीको हम लोगोंके पास नहीं आने देते और उसे अपने दुर्गम समाज-दुर्गमें बन्द कर रखते हैं।

स्त्रियाँ समाजके लिये शक्तिस्वरूप होती हैं। यदि स्त्रियाँ चाहें तो वे दो विरोधी पक्षोंको परस्पर मिला सकती हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश वे स्त्रियाँ ही सबसे बढ़कर उन संस्कारोंके वशमें हैं। हम लोगोंको देखते ही उन ऐंग्लो-इंडियन स्त्रियोंके स्नायुओंमें विकार और सिरमें दर्द होने लगता है। इसके लिये हम उन लोगोंको क्या दोष दें, यह हम लोगोंके भाग्यका ही दोष है। विधाताने हम लोगोंको ऐसा बनाया ही नहीं कि हम लोग पूरी तरह उन्हें पसन्द आते।

इसके बाद हम लोगोंके बीचमें आकर अँगरेज लोग जिस प्रकार हम लोगोंके सम्बन्धमें बातचीत करते हैं, बिना कुछ भी परवाह किए हम लोगोंके सम्बन्धमें जिन सब विशेषणोंका प्रयोग करते हैं और हम लोगोंको बिना पूर्ण रूपसे जाने ही हम लोगोंकी जो शिकायतें और निन्दायें किया करते हैं, प्रत्येक साधारण बातमें भी हम लोगोंके प्रति उनका जो बद्धमूल अप्रेम प्रकट होता है, उस सबको कोई नया आया हुआ अँगरेज धीरे धीरे अपने अन्तःकरणमें स्थान दिए बिना रह ही नहीं सकता।

हम लोगोंको यह बात स्वीकृत करनी ही पड़ेगी कि कुछ ईश्वरीय बातोंके कारण ही हम लोग अँगरेजोंकी अपेक्षा बहुत दुर्बल हैं और अँगरेज लोग हम लोगोंका जो असम्मान करते हैं उसका हम लोग किसी प्रकार कोई प्रतिकार कर ही नहीं सकते। जो स्वयं अपने सम्मानका उद्धार नहीं कर सकता उसका इस संसारमें कहीं सम्मान नहीं होता। जब विलायतसे कोई नया आया हुआ अँगरेज यहाँ आकर देखता है कि हम लोग चुपचाप सारा अपमान सहते रहते हैं तब हम लोगोंके सम्बन्धमें उसे कुछ भी श्रद्धा नहीं रह सकती।

ऐसी दशामें उन्हें यह बात कौन समझाने जायगा कि हम लोग अपमानके सम्बन्धमें उदासीन नहीं हैं बल्कि हम लोग दरिद्र हैं और

हम लोगोंमें कोई भी स्वप्रधान नहीं है बल्कि प्रत्येक व्यक्ति एक एक बड़े परिवारका प्रतिनिधि है। उसके ऊपर केवल अपना ही भार नहीं है बल्कि उसके पिता, माता, भाई, बहन, पुत्र और परिवारका जीवन भी उसीपर निर्भर करता है। उसे बहुत कुछ आत्मसंयम और आत्म-त्याग करके सब काम करना पड़ता है। उसे सदासे इसीकी शिक्षा मिली है और इसीका अभ्यास हुआ है। यह बात नहीं है कि वह आत्मरक्षाकी तुच्छ इच्छाके सामने आत्मसम्मानकी बलि देता है बल्कि वह बड़े परिवारके सामने, अपने कर्त्तव्यज्ञानके सामने उसकी बलि देता है। कौन नहीं जानता कि दरिद्र भारतीय कर्मचारी नित्य कितनी फटकारें और धिक्कार सुनकर आफिससे घर चले आते हैं और उन्हें अपना अपमानित जीवन कितना असह्य और दुर्भर जान पड़ता है। उसे जो जो बातें सुननी पड़ती हैं वे इतनी कड़ी होती हैं कि उस दशामें पड़कर सबसे गया बीता आदमी भी अपने प्राण देनेके लिये तैयार हो सकता है; लेकिन फिर भी वह बेचारा भारतवासी दूसरे दिन ठीक समयपर पाजामेपर चपकन पहनकर फिर उसी आफिसमें जा पहुँचता है और उसी स्याहीसे भरे हुए टेबुलपर चमड़ेकी जिल्दवाला बड़ा रजिस्टर खोलकर उसी पिङ्गलवर्ण बड़े साहबकी नित्यकी फटकारें चुपचाप सहता रहता है। क्या वह आत्मविस्मृत होकर एक क्षणके लिये भी अपनी बड़ी गृहस्थीका ध्यान छोड़ सकता है? क्या हम लोग अँगरेजोंकी तरह स्वतंत्र और गृहस्थीके भारसे रहित हैं। यदि हम प्राण देनेके लिये तैयार हों तो बहुतसी निरुपाय स्त्रियाँ और बहुतसे असहाय बालक व्याकुल होकर हाथ उठाते हुए हमारी कल्पनादृष्टिके सामने आ खड़े होते हैं। हम लोगोंको बहुत दिनोंसे इसी प्रकार अपमान सहनेका अभ्यास हो गया है।

लेकिन यह बात अँगरेजोंके समझनेकी नहीं है। इसके लिये उनके पास केवल एक ही शब्द है और वह शब्द है भीरुता। संसारमें अपने लिए भीरुता और पराएके लिये भीरुताके भेदका निर्णय करके किसी बातकी सृष्टि नहीं हुई। इसलिये ज्यों ही भीरु शब्दका ध्यान आता है त्यों ही उसके साथ दृढ़तापूर्वक जकड़ी हुई अवज्ञाका भी ध्यान होता है। हम लोग बड़े परिवार और बड़े अपमानका बोझ एक साथ ही ढोते हैं।

इसके अतिरिक्त भारतवर्षके अधिकांश अँगरेजी समाचारपत्र सदा हम लोगोंके विरुद्ध रहते हैं। चाय रोटी और अंडेके साथ साथ हम लोगोंकी निन्दा भी भारतीय अँगरेजोंकी छोटी हाजिरीका एक अंग हो गई है। अँगरेजी साहित्य, गल्प, भ्रमण-वृत्तान्त, इतिहास, भूगोल, राजनीतिक प्रबन्ध और विद्रूपात्मक कवितायें, सभीमें भारतवासियों और विशेषत: शिक्षित बाबुओंके प्रति अँगरेजोंकी अरुचि बराबर बढ़ती ही जाती है।

भारतवासी अपनी झोंपड़ियोंमें पड़े पड़े उसका बदला चुकानेकी चेष्टा करते हैं लेकिन भला हम लोग उसका क्या बदला चुका सकते हैं! हम लोग अँगरेजोंकी कितनी हानि कर सकते हैं! हम लोग मनमें नाराज हो सकते हैं, घरमें बैठकर गाल बजा सकते हैं लेकिन अँगरेज यदि केवल दो ही उँगलियोंसे हमारा मुलायम कान पकड़ कर जरा जोरसे मल दें तो हमें चुपचाप सह लेना पड़ता है। और यह बात किसीसे छिपी नहीं है कि अँगरेजोंको इस प्रकार कान मलनेके छोटे और बड़े कितने प्रकार मालूम हैं और इसके लिये कितने अधिक अवसर मिलते हैं। अँगरेज मन ही मन हम लोगोंसे जितने ही विमुख होंगे और हम लोगोंकी ओरसे उनकी श्रद्धा जितना ही हट जायगी, हम लोगोंका सच्चा स्वभाव समझना, हम लोगोंका अच्छी तरह विचार

करना और हम लोगोंका उपकार करना भी उन लोगोंके लिये उतना ही अधिक दुस्साध्य होता जायगा। भारतवासियोंकी निरन्तर निन्दा और उनके प्रति अवज्ञा प्रकट करके अँगरेजी समाचारपत्र भारतवर्षके शासनका कार्य्य और भी कठिन करते जा रहे हैं। और हम लोग अँगरेजोंकी निन्दा करके केवल अपने निरुपाय असंतोपकी ही वृद्धि कर रहे हैं।

अबतक भारत पर अधिकार रखनेके सम्बन्धमें जो अभिज्ञता उत्पन्न हुई है उससे यह बात निश्चयात्मक रूपसे मालूम हो गई है कि अँगरेजोंके लिये डरनेका कोई कारण नहीं है। जब आजसे डेढ़ सौ वर्ष पूर्व ही इस प्रकार डरनेका कोई कारण नहीं था तब आजकलका तो कुछ कहना ही नहीं है। राज्यमें जो लोग उपद्रव मचा सकते थे अब उनके नाखून और दाँत नहीं रह गए और अभ्यासके अभावके कारण वे लोग इतने अधिक निर्जीव हो गए हैं कि स्वयं भारतवर्षकी रक्षा करनेके लिये सेना तैयार करना ही क्रमशः बहुत कठिन होता जा रहा है। लेकिन फिर भी अँगरेज लोग सेडिशन या राजद्रोहका दमन करनेके लिये सदा तैयार रहते हैं। इसका एक कारण है। वह यह कि प्रवीण राजनीतिज्ञ किसी अवस्थामें भी सतर्कताको शिथिल नहीं होने देते। जो सावधान रहता है उसका विनाश नहीं होता।

अतः बात केवल इतनी ही है कि अँगरेज लोग बहुत अधिक सावधान हैं। लेकिन दूसरी ओर अँगरेज यदि क्रमशः भारतद्रोही होते जायँ तो राजकार्य्यमें वास्तविक विघ्नोंका उत्पन्न होना सम्भव है। यद्यपि उदासीन भावसे भी कर्त्तव्यपालन किया जा सकता है; किन्तु जहाँ आन्तरिक विद्वेप हो वहाँ कर्त्तव्यपालन करना मनुष्यकी शक्तिके बाहर है।

यदि अमानुषिक शक्तिकी सहायतासे सब कर्त्तव्योंका ठीक ठीक पालन हुआ करे तो भी वह आन्तरिक विद्वेष प्रजाको पीड़ित करता रहता है। इसका कारण यह है कि जिस प्रकार जलका धर्म्म अपना समतल ढूँढ़ना है उसी प्रकार मनुष्यके हृदयका धर्म्म अपना सम ऐक्य ढूँढ़ना है। यहाँतक कि प्रेमके सूत्रसे वह ईश्वर तकके साथ अपना ऐक्य स्थापित करता है। जिस स्थानपर वह अपने ऐक्यका मार्ग नहीं पाता उस स्थानपर और जितने प्रकारकी सुविधाएँ होती हैं वे सब बहुत ही क्लिष्ट हो जाती हैं। मुसलमान राजा अत्याचारी होते थे लेकिन उनके साथ बहुतसी बातोंमें हम लोगोंकी समकक्षताकी समानता थी। हम लोगोंके दर्शन और काव्य, हम लोगोंकी कला और विद्या और हम लोगोंकी बुद्धिवृत्तिमें राजा और प्रजाके बीचमें आदान-प्रदानका सम्बन्ध था। इसलिये मुसलमान हम लोगोंको पीड़ित तो कर सकते थे लेकिन वे हम लोगोंका असम्मान नहीं कर सकते थे। मन मनमें हम लोगोंके आत्मसम्मानका कोई लाघव न था—उसमें कोई कमी न थी। क्योंकि श्रेष्ठता केवल बाहुबलके द्वारा कभी किसी प्रकार दबाई ही नहीं जा सकती।

किन्तु हम लोग अँगरेजोंकी रेलगाड़ी, कल-कारखाने और राज्य-शृंखला देखते हैं और चकित होकर सोचने लगते हैं कि ये लोग मय दानवके वंशज हैं—ये लोग बिलकुल स्वतंत्र हैं, इन लोगोंके लिये कोई बात असम्भव नहीं है। बस यही समझकर निश्चिन्त भावसे हम लोग रेलगाड़ीपर सवार होते हैं, सस्ते दामपर कलोंका बना हुआ माल खरीदते हैं और सोचते हैं कि अँगरेजोंके राज्यमें हम लोगोंको न तो कुछ डरनेकी आवश्यकता है न चिन्ता करनेकी आवश्यकता है और न कोई उद्योग करनेकी आवश्यकता है—केवल इतना है कि पहले

हम लोगोंसे जो कुछ डाकू लोग छीन लिया करते थे वह अब पुलिस और वकील दोनों मिलकर ले लेते हैं।

इस प्रकार मनका एक भाग जितना निश्चित निश्चेष्ट होता है उसके दूसरे भागपर उतना ही अधिक भारी बोझ मालूम होता है। खाद्यरस और पाकरसके मिलनेसे भोजनका परिपाक होता है। अँगरेजोंकी सभ्यता हम लोगोंके लिये खाद्यमात्र है किन्तु उसमें रसका बिलकुल अभाव है। इस कारण हम लोगोंका मन अपने आपमें ऐसा पाकरस एकत्र नहीं कर सकता जो उस खाद्यके उपयुक्त हो। हम लोग लेते तो हैं लेकिन पाते नहीं। हम लोग अँगरेजोंके सब कार्य्योंका फल तो भोगते हैं लेकिन हम उसे अपना नहीं कर सकते और उसे अपना करनेकी आशा भी बराबर नष्ट होती जाती है।

राज्य जीतनेसे गौरव और लाभ होता है। यदि राज्यका अच्छी तरह शासन किया जाय तो उससे धर्म और अर्थ होता है। तो क्या राजा और प्रजाके हृदयोंमें मेल स्थापित करनेका कोई माहात्म्य नहीं है और उससे कोई सुभीता नहीं हो सकता? आजकलके भारतवर्षकी राजनीतिमें क्या यही विषय सबसे बढ़कर चिन्तनीय और आलोचना करने योग्य नहीं है?

प्रश्न केवल यही है कि यह सब काम कैसे हो? एक एक करके यह दिखला ही दिया गया है कि राजा और प्रजाके बीचमें बहुतसी दुर्भेद्य, दुरूह और स्वाभाविक बाधाएँ खड़ी हैं। उन बाधाओंके लिये किसी किसी सहृदय अँगरेजको भी अनेक अवसरोंपर चिन्तित और दुःखी होना पड़ता है। लेकिन फिर भी जो बात असम्भव हो, जो बात असाध्य हो उसके लिये विलाप करनेका फल ही क्या हो सकता है?

लेकिन क्या कभी कोई बड़ा काम, कोई भारी अनुष्ठान सहजमें हुआ है ? इसी भारतवर्षको जीतने और उसका शासन करनेके लिये अँगरेजोंको जिन सब गुणोंकी आवश्यकता हुई है क्या वे सब गुण सुलभ हैं ? वह साहस, वह अदम्य अध्यवसाय, वह त्याग-स्वीकार क्या थोड़ी साधनाका फल है ? और पचीस करोड़ विदेशी प्रजाके हृदयपर विजय प्राप्त करनेके लिये जिस दुर्लभ सहृदयताकी आवश्यकता होती है क्या वह सहृदयता साधना करनेके योग्य नहीं है ?

बहुतसे अँगरेज कवियोंने यूनान, इटली, हंगरी और पोलैण्डके दु:खोंसे दुखी होकर अश्रुमोचन किया है। यद्यपि हम लोग उतने अश्रुपातके अधिकारी नहीं हैं लेकिन आजतक महात्मा एडविन् आर्नल्डके अतिरिक्त और किसी अँगरेज कविने किसी अवसरपर भारतवर्षके प्रति अपनी प्रीति व्यक्त नहीं की। बल्कि यह सुना है कि निःसम्पर्क फ्रान्सके कुछ बड़े कवियोंने भारतवर्षके सम्बन्धमें कुछ कविताएँ की हैं। इससे अँगरेजोंकी जितनी अनात्मीयता प्रकट हुई है उतनी और किसी बातसे नहीं हुई।

भारतवर्ष और भारतवासियोंके सम्बन्धमें आजकल बहुतसे अँगरेजी उपन्यास निकल रहे हैं। सुनते हैं आधुनिक ऐंग्लो-इंडियन लेखकोंमें रुड्यार्ड किप्लिंग सबसे बढ़कर प्रतिभाशाली लेखक हैं। उनकी भारतसम्बन्धी आख्यायिकाओं पर अँगरेज पाठक बहुत मुग्ध हैं। उनकी सारी रचना पढ़कर उनके एक अनुरक्त भक्त अँगरेज कविके मनमें जो धारणा हुई है वह हमने लिखी हुई देखी है। किप्लिंगकी रचनाकी समालोचना करते हुए ऐडमण्ड गस्ने लिखा है—"इन सब आख्यायिकाओंको पढ़नेसे यही मालूम होता है कि भारतवर्षकी छावनियाँ जनहीन, वालुका-समुद्रके बीचमें एक एक द्वीपके समान हैं। चारों

ओर भारतवर्षकी असीम मरुभूमि है। वह मरुभूमि अप्रसिद्ध, नूतन-तारहित और बहुत विशाल है। उसमें केवल काले आदमी पड़िया कुत्ते, पठान, हरे रंगके तोते, चील, मगर और घासके लम्बे चौड़े निर्जन क्षेत्र हैं। इस मरु-समुद्रके बीचवाले टापुओंमें थोड़ेसे युवा पुरुष विधवा महाराणीका काम करने और उनके अधीनस्थ पूर्व-देशीय धनसम्पत्तिपूर्ण जंगली साम्राज्यकी रक्षा करनेके लिय सुदूर इंग्लैण्डसे भेजे हुए आए और बैठे हैं।" अँगरेज द्वारा खींचा हुआ भारतवर्षका यह शुष्क और शोभाहीन चित्र देखकर मन निराशा और विषादसे भर जाता है। हम लोगोंका भारतवर्ष तो ऐसा नहीं है, लेकिन क्या अँगरेजोंके भारतवर्ष और हम लोगोंके भारतवर्षमें इतना अन्तर है?

परन्तु आजकल ऐसे प्रबन्ध प्राय: देखे जाते हैं जिनमें भारतवर्षके साथ स्वार्थ-सम्पर्ककी बातें होती हैं। इंग्लैण्डकी जनसंख्याके प्रति-वर्ष बढ़नेके कारण वहाँ खाने-पीनेकी चीजोंका अभाव क्रमश: कितना बढ़ता जाता है और भारतवर्ष उस अभावकी कहाँतक पूर्त्ति करता है और विलायती माल मँगाकर बहुतसे विलायती मजदूरोंको काम देकर किस प्रकार उनकी जीविकाका प्रबन्ध करता चलता है, इसकी सूचियाँ खूब निकलती हैं।

अँगरेज लोग दिनपर दिन यही समझते जाते हैं कि भारतवासी हम लोगोंकी राजकीय पशुशालामें सदासे पले हुए पशु हैं। वे लोग गौशालाको साफ रखते और घास-भूसेका प्रबन्ध करनेमें कभी आलस्य नहीं करते। इस अस्थावर सम्पत्तिकी रक्षाके लिये उनका प्रयत्न सदा होता रहता है। ये पशु कभी कोई बदमाशी न कर बैठें इस विचारसे वे उनके सींग घिस देनेसे भी उदासीन नहीं रहते और सवेरे सन्ध्या

दूध दूहनेके समय वे दुबले पतले बछड़ोंको भी एकदमसे वंचित नहीं करते। लेकिन फिर भी दिनपर दिन स्वार्थका सम्पर्क ही बराबर बढ़ता जा रहा है। इन सब प्रबन्धोंमें प्रायः एक ही समय भारतवर्षके साथ साथ अँगरेजी उपनिवेशोंके सम्बंधकी बातें भी दे दी जाती हैं। लेकिन दोनोंके सुरोंमें कितना भेद होता है। उपनिवेशोंके प्रति कितना प्रेम और कितना उत्तम भ्रातृभाव दिखलाया जाता है। उनके सम्बन्धमें तो किस प्रकार बार बार कहा जाता है कि यद्यपि वे लोग मातृभूमिसे अलग हो गए हैं तथापि माताके प्रति अबतक उनमें अचला भक्ति है—वे लोग रक्तसंबंधको भूल नहीं सके हैं। अर्थात् जब उनका जिक्र होता है तब स्वार्थके साथ साथ प्रेमपूर्ण बातोंका उल्लेख करना भी आवश्यक होता है। परन्तु इस बातका कहीं कोई आभास मात्र भी नहीं रहता कि हतभाग्य भारतवर्षका भी कहीं कोई हृदय है और उस हृदयके साथ कहीं न कहींसे थोड़ासा सम्बन्ध रहना आवश्यक है। हाँ केवल हिसाब किताबके समय श्रेणीबद्ध अंकोंके द्वारा भारतवर्ष निर्दिष्ट होता है। इंग्लैण्डके प्रैक्टिकल लोगोंके सामने भारतवर्षका गौरव केवल मनके हिसाबसे, सेरके हिसाबसे, रुपएके हिसाबसे और शिकारके हिसाबसे है। समाचारपत्रों और मासिकपत्रोंके लेखक लोग क्या इंग्लैण्डको केवल इसी शुष्क पाठका अभ्यास करावेंगे? भारतवर्षके साथ यदि उनका केवल स्वार्थसम्बन्ध ही दृढ़ हो तो जो श्यामांगिनी गऊ आज दूध दे रही है सम्भव है कि गोपकुलकी बेहिसाब वंशवृद्धि और क्षुधावृद्धिके कारण कल ही उसकी पूँछ खुर तक और घिसकर गायब हो जायँ। केवल स्वार्थका ही ध्यान रक्खा जाता है इसीलिये लंकाशायरने तो निरुपाय भारतवर्षके सूतपर महसूल लगा दिया है और अपना माल वह बिना महसूलके ही चलान कर रहा है।

हम लोगोंका देश भी वैसा ही है। जैसी धूप वैसी ही धूल। जैसी रूह वैसे ही फरिश्ते। साहब लोग बिना पंखेकी हवा खाए और बरफका पानी पीए जीते नहीं रह सकते। लेकिन दुर्भाग्यवश यहाँके पंखे-कुली रुग्ण-प्लीहा यातापतिल्ली लेकर सो जाते हैं और बरफ सब जगह सहजमें मिल नहीं सकता। अँगरेजोंके लिये भारतवर्ष रोग, शोक, स्वजन-विच्छेद और निर्वासनका देश है। इसलिये उन्हें बहुत अधिक वेतन लेकर इन सब त्रुटियोंकी पूर्ति कर लेनी पड़ती है। लेकिन कम्बख्त एक्सचेञ्ज (Exchange) उसमें भी झगड़ा खड़ा करना चाहता है। अँगरेजोंको स्वार्थसिद्धिके अतिरिक्त भारतवर्ष और क्या दे सकता है ?

हाय! हतभागिनी भारतभूमि! तुम्हें तुम्हारा स्वामी पसन्द न आया। तुम उसे प्रेमके बन्धनमें न बाँध सकीं। लेकिन अब ऐसा काम करो जिससे उसकी सेवामें त्रुटि न हो। उसको बहुत यत्नसे पंखा झलो, उसके लिये खसका परदा टँगवाकर उसपर पानी छिड़को जिसमें वह अच्छी तरह स्थिर होकर दो घड़ी तुम्हारे घर बैठ सके। खोलो, अपने सन्दूक खोलो। तुम्हारे पास जो कुछ गहने आदि हों उन्हें बेच डालो और अपने स्वामीको भरपेट भोजन कराओ और भरजेब दक्षिणा दो। तौ भी वह तुमसे अच्छी तरहसे न बोलेगा, तौ भी वह नाराज ही रहेगा और तौ भी तुम्हारे मैकेकी निन्दा ही करेगा। आजकल तुमने लज्जा छोड़कर मान अभिमान करना आरम्भ किया है। तुम झनककर दो चार बातें कह बैठती हो। परन्तु यह व्यर्थका बकवाद करनेकी आवश्यकता नहीं। तुम मन लगाकर वही काम करो जिससे तुम्हारा विदेशी स्वामी सन्तुष्ट हो और आरामसे रहे। तुम्हारा सौभाग्य सदा बना रहे।

अँगरेज राजकवि टेनिसनने मरनेसे पहले अपने अन्तिम ग्रन्थमें सौभाग्यवश भारतवर्षका भी थोड़ासा स्मरण किया है ।

कविवर टेनिसनने उक्त ग्रन्थमें 'अकबरका स्वप्न' नामकी एक कविता दी है । उस कवितामें अकबरने अपने प्रिय मित्रको रातका स्वप्न वर्णन करते हुए अपने धर्म्मका आदर्श और जीवनका उद्देश्य बतलाया है । अकबरने भिन्न भिन्न धर्म्मोंमें जो एकता तथा भिन्न भिन्न जातियोंमें प्रेम और शान्ति स्थापित करनेके लिये जो चेष्टा की थी, उसने स्वप्नमें देखा कि मेरे उत्तराधिकारियों तथा परवर्तियोंने उस चेष्टाको व्यर्थ तथा मेरे कार्योंको नष्ट कर दिया है । अन्तमें जिस ओर सूर्यास्त होता है उस ओर (पश्चिम) से विदेशियोंके एक दलने आकर उसके उस टूटे-फूटे और ढहे हुए मन्दिरको एक एक पत्थर चुनकर फिरसे प्रतिष्ठित कर दिया है और उस मन्दिरमें सत्य और शान्ति, प्रेम और न्यायपरताने फिरसे अपना सिंहासन स्थापित कर लिया है ।

हम प्रार्थना करते हैं कि कविका यह स्वप्न सफल हो । आजतक इस मन्दिरके पत्थर आदि तो चुने गए हैं । बल, परिश्रम और निपुणताके द्वारा जो कुछ काम हो सकता है उसे करनेमें भी किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं हुई है । लेकिन अभीतक इस मन्दिरमें समस्त देवताओंके अधिदेवता प्रेमदेवकी प्रतिष्ठा नहीं हुई है ।

प्रेम वास्तवमें भावात्मक है, अभावात्मक नहीं । अकबरने समस्त धर्मोंका विरोध नष्ट करके प्रेमकी एकता स्थापित करनेकी जो चेष्टा की थी वह भावात्मक ही थी । उसने अपने हृदयमें एकताका एक आदर्श खड़ा किया था । उसने उदार हृदय लेकर श्रद्धाके साथ सब धर्म्मोंके अन्तरमें प्रवेश किया था । वह एकाग्रता और निष्ठाके साथ हिन्दू मुसल-

मान, ईसाई और पारसी आदि धर्मज्ञोंसे धर्मालोचना सुना करता था। उसने हिन्दू स्त्रियोंको अपने अन्तःपुरमें, हिन्दू अमात्योंको मंत्रीसभामें और हिन्दू वीरोंको सेनानायकतामें प्रधान आसन दिया था। उसने केवल राजनीतिके द्वारा ही नहीं बल्कि प्रेमके द्वारा समस्त भारतवर्षको, राजा और प्रजाको एक करना चाहा था। सूर्यास्तभूमि (पश्चिम) से विदेशियोंने आकर हम लोगोंके धर्ममें किसी प्रकारका हस्तक्षेप नहीं किया, लेकिन प्रश्न यह है कि वह निर्लिप्तता प्रेमके कारण है या राजनीतिके कारण? क्योंकि इन दोनोंमें आकाश और पातालका अन्तर है।

किन्तु एक महदाशय भाग्यवान् पुरुषने जो बहुत ऊँचा आदर्श खड़ा किया था उस आदर्शकी किसी एक सारीकी सारी जातिसे कोई आशा नहीं की जा सकती। इसीलिये यह बतलाना कठिन है कि कविका उक्त स्वप्न कब सत्य होगा। और यह कहना इस लिये और भी कठिन है, कि राजा और प्रजामें जो आने जानेका मार्ग था उस मार्गको दोनों पक्ष बराबर काँटे बिछाकर घेरते जा रहे हैं और दिनपर दिन वह मार्ग बन्द होता जाता है। नए नए विद्वेष खड़े होकर मिलन-क्षेत्रको आच्छन्न करते जा रहे हैं।

राज्यमें इस प्रेमके अभावका आजकल हम इतना अधिक अनुभव कर रहे हैं कि जिसके कारण मन ही मन लोगोंमें एक प्रकारकी आशंका और अशान्ति बढ़ रही है। उसका एक दृष्टान्त लीजिए। आजकल हिन्दुओं और मुसलमानोंमें जो दिनपर दिन बहुत अधिक विरोध बढ़ता जाता है उसके सम्बन्धमें हम आपसमें किस प्रकारकी बातचीत किया करते हैं? क्या हम लोग लुक छिपकर यह बात नहीं कहते कि इस उत्पातका प्रधान कारण यही है कि अँगरेज यह विरोध दूर करनेके लिये यथार्थ रूपसे प्रयत्न नहीं करते। बात यह है कि अँगरेजोंकी

राजनीतिमें प्रेमनीतिके लिये कोई स्थान ही नहीं है। भारतवर्षके दो प्रधान सम्प्रदायोंमें उन लोगोंने प्रेमके बीजकी अपेक्षा ईर्ष्याका बीज ही अधिक बोया है। सम्भव है कि ऐसा काम उन्होंने बिना इच्छाके ही किया हो; लेकिन अकबरने प्रेमके जिस आदर्शको सामने रखकर टुकड़े टुकड़े भारतवर्षको एक करनेकी चेष्टा की थी वह आदर्श अँगरेजोंकी पालिसीमें नहीं है। इसीलिये इन दोनों जातियोंका स्वाभाविक विरोध घटता नहीं है बल्कि दिनपर दिन उसके बढ़नेके ही लक्षण दिखाई देते हैं। केवल कानूनके द्वारा केवल शासनके द्वारा दोनों एक नहीं किए जा सकते। दोनोंको एक करानेके लिये उनके अन्तरमें प्रवेश करनेकी आवश्यकता होती है, उनकी वेदना समझनी पड़ती है, यथार्थ रूपसे प्रेम करना पड़ता है, स्वयं पास आकर और दोनोंके हाथ पकड़कर मेल कराना होता है। यदि केवल पुलिस तैनात करके और हथकड़ी पहनाकर शान्ति स्थापित की जाय तो उससे केवल दुर्द्धर्ष या बहुत ही प्रबल बलका परिचय मिलता है। लेकिन अकबरके स्वप्नमें यह बात नहीं थी। सूर्यास्तभूमिके कवि लोग यदि व्यर्थका और मिथ्या अहंकार छोड़कर विनीत प्रेमके साथ गम्भीर आक्षेप करते हुए अपनी जातिको उसके दोष दिखलावें और प्रेमके उस उच्च आदर्शकी शिक्षा दें तो उनकी जातिकी भी उन्नति हो और इस आश्रितवर्गका भी उपकार हो। अँगरेजोंमें इस समय जो आत्माभिमान, अपनी सभ्यताका जो गर्व, अपनी जातिका जो अहंकार है, क्या वह यथेष्ट नहीं है? कवि लोग क्या केवल उसी अग्निमें आहुति देंगे—उसीको बढ़ावेंगे। क्या अब भी नम्रताकी शिक्षा देने और प्रेमकी चर्चा करनेका समय नहीं आया? सौभाग्यके सबसे ऊँचे शिखरपर चढ़कर क्या अब भी अँगरेज कवि केवल आत्मघोषणा ही करेंगे।

लेकिन जिस अवस्थामें हम लोग पड़े हुए हैं उसे देखते हुए हम लोगोंके मुँहसे ऐसी बातोंका निकलना कुछ शोभा नहीं देता। इसीलिये कहनेमें भी हमें लज्जा माळूम होती है। विवश होकर प्रेमकी भिक्षा करनेके समान दीनता और किसी बातमें नहीं है। और बीच बीचमें इस सम्बन्धमें हम लोगोंको दो चार उल्टी-सीधी बातें सुननी भी पड़ती हैं।

हमें याद आता है कि कुछ दिन हुए भक्तिभाजन प्रतापचन्द्र मजूमदार महाशयके एक पत्रके उत्तरमें लंडनके 'स्पेक्टेटर' नामक पत्रने लिखा था कि आजकलके बंगालियोंमें बहुतसे अच्छे लक्षण हैं; लेकिन उनमें एक दोष दिखाई पड़ता है। उनमें Sympathy (सहानुभूति) की लालसा बहुत बढ़ गई है।

हमें अपना यह दोष मानना पड़ता है और अबतक हम जिस प्रकार सब बातें कहते आए हैं उसमें बराबर जगह जगह इस दोषका प्रमाण मिलता है। अँगरेजोंसे अपना आदर करानेकी इच्छा हम लोगोंमें कुछ अस्वाभाविक परिमाणमें बढ़ गई है। लेकिन उसका कारण यह है कि हम लोग स्पेक्टेटरकी तरह स्वाभाविक अवस्थामें नहीं हैं। हम लोग जिस समय बहुत प्यासे होकर एक लोटा पानी माँगते हैं, उस समय हमारे राजा चटपट हमारे सामने आधा बेल (फल) ला रखते हैं! किसी विशिष्ट समय पर आधा बेल बहुत कुछ उपकारक हो सकता है, लेकिन उससे भूख और प्यास दोनों एक साथ ही दूर नहीं हो सकतीं। अँगरेजोंकी सुनियमित और सुविचारित गवर्नमेण्ट बहुत उत्तम और उपादेय है, लेकिन उससे प्रजाके हृदयकी तृष्णा नहीं मिट सकती बल्कि उल्टे जिस प्रकार बहुत अधिक गरिष्ठ भोजन कर-

नेसे प्यास बहुत बढ़ जाती है उसी प्रकार इस गवर्नमेण्टसे भी प्रजाके हृदयकी तृष्णा और भी बढ़ जाती है। स्पेक्टेटर देश-देशान्तरके सब प्रकारके भोज्य और पानीय पदार्थ बहुत अधिक परिमाणमें मँगाकर परिपूर्ण डिनर (dinner) में बैठकर किसी तरह भी यह नहीं समझ सकता कि उसके झरोखेसे बाहर रास्तेमें खड़े हुए ये विदेशी बंगाली इस प्रकार भूखे कंगालोंकी तरहके भाव क्यों रखते हैं?

लेकिन कदाचित् स्पेक्टेटर यह सुनकर प्रसन्न होगा कि उसकी बहुत ही दुष्प्राप्य सहानुभूतिके अंगूर धीरे धीरे हम लोगोंके निकट भी खट्टे होते जाते हैं। हम लोग बहुत देरतक लोलुपकी तरह ऊपर आँख उठाकर देखते रहे हैं और अब अन्तमें धीरे धीरे घर लौटनेकी तैयारी कर रहे हैं। हम लोगोंके इस चिर उपवासी और क्षुधित स्वभावमें भी जो थोड़ा बहुत मनुष्यत्व बच गया था वह अब धीरे धीरे विद्रोही होता जा रहा है!

हम लोगोंने यह कहना आरम्भ कर दिया है कि क्या तुम लोग इतने श्रेष्ठ हो! तुम लोगोंने बहुत किया तो कल चलाना और तोप बन्दूक छोड़ना सीखा है, लेकिन मनुष्यमें वास्तविक सभ्यता आध्यात्मिक सभ्यता है और उस सभ्यतामें हम लोग तुमसे कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं। हम लोग तुम्हें अध्यात्मविद्या क ख ग घ से आरम्भ करके अच्छी तरह सिखला सकते हैं। हम लोगोंको तुम जो कम सभ्य समझकर अवज्ञा करते हो, यह तुम लोगोंकी अन्ध मूढ़ता है। तुम लोगोंमें हिन्दू जातिकी श्रेष्ठता समझनेकी शक्ति ही नहीं है। हम लोग फिर आँखें बन्द करके ध्यानमें बैठ जायँगे। अब हमने तुम्हारे युरोपकी सुखासक्त चपल सभ्यताकी बाल-लीलाकी ओरसे अपनी दृष्टि हटा ली है और

अपनी नासिकाके अग्रभागपर जमा ली है। तुम लोग कचहरी करो, आफिस चलाओ, दूकान करो, नाच-खेल, मार-पीट लूट-पाट करो और शिमलेके शैल-शिखरपर विलासकी स्वर्गपुरी बनाकर सभ्यताके मदमें मत्त होकर रहो।

दरिद्र वंचित मनुष्य अपने आपको इसी प्रकार सान्त्वना देनेकी चेष्टा करता है। जिस श्रेष्ठताके साथ प्रेम नहीं होता उस श्रेष्ठताको वह किसी प्रकार वहन करनेके लिये राजी नहीं होता। इसका कारण यह है कि उसके अन्दर एक सहज ज्ञान होता है जिसके द्वारा वह यह समझता है कि यदि विवश होकर यह सूखी श्रेष्ठता वहन करनी होगी तो उससे धीरेधीरे भार ढोनेवाले मूढ़ पशुके समान हो जाना पड़ेगा।

लेकिन कौन कह सकता है कि यह मानसिक विद्रोह विधाताकी ही इच्छा नहीं है! वह विधाता जिस प्रकार इस क्षुद्र पृथ्वीकी प्रचण्ड सूर्य्यके प्रबल आकर्षणसे रक्षा करता है; उसने पृथ्वीमें एक प्रतिकूल शक्ति छिपा रखी है, उसी शक्तिके द्वारा यह पृथ्वी सूर्य्यके प्रकाश और उत्तापका भोग करके भी अपनी स्वतंत्रताकी रक्षा करती है और सूर्य्यके समान प्रतापशाली होनेकी चेष्टा न करके अपने अन्दर छिपी हुई स्नेहशक्तिके द्वारा वह श्यामला, शस्यशालिनी, कोमला मातृ-रूपिणी हो गई है, जान पड़ता है कि उसी प्रकार उस विधाताने अँगरेजोंके भारी आकर्षणसे हम लोगोंकी केवल रक्षा करनेका ही यह उद्योग किया है। जान पड़ता है कि उसका अभिप्राय यही है कि हम लोग अँगरेजी सभ्यताके प्रकाशमें अपनी स्वतंत्रताको समुज्वल कर डालें।

इस बातके लक्षण भी दिखाई देते हैं। अँगरेजोंके साथ होनेवाले संघर्षने हम लोगोंके हृदयमें जो एक प्रकारके उत्तापका संचार कर

दिया है उसके द्वारा हम लोगोंकी मुमूर्षु जीवनी शक्ति फिरसे सचेतन हो रही है। हम लोगोंके हृदयमें हम लोगोंकी जो समस्त विशेष शक्ति अबतक अन्ध और जड़के समान होकर पड़ी हुई थी वह शक्ति नए प्रकाशमें फिरसे अपने आपको पहचानने लग गई है। स्वाधीन युक्ति, तर्क और विचारसे हम लोग मानो अपनी मानस-भूमिका फिरसे आविष्कार कर रहे हैं। दीर्घ प्रलय-रात्रिके अन्तमें अरुणोदय होनेपर हम लोग मानो अपने ही देशका आविष्कार करनेके लिये निकल खड़े हुए हैं। हम लोगोंने श्रुति, स्मृति, काव्य, पुराण, इतिहास और दर्शनके पुराने घने जंगलमें प्रवेश किया है। हम अपने पुराने छिपे हुए धनको नए सिरेसे प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं। हम लोगोंके मनमें धिक्कारका जो प्रतिघात हुआ है उसीने हम लोगोंको जोरसे फिर हमारी ही ओर फेंक दिया है। पहले आक्षेपमें हम लोग कुछ अन्धभावसे अपनी मिट्टी पकड़कर रह गये हैं—किन्तु आशा की जाती है कि एक दिन स्थिर भाव और शान्त चित्तसे अच्छे बुरेका विचार करनेका समय आवेगा और हमलोग इसी प्रतिघातसे यथार्थ गूढ शिक्षा और स्थायी उन्नति प्राप्त कर सकेंगे।

एक प्रकारकी स्याही होती है जो कुछ समयके उपरान्त कागजपर दिखलाई ही नहीं देती और अन्तमें जब उस कागजको कुछ आँच दिखलाते हैं तब वह स्याही फिर उठ आती है। पृथ्वीकी अधिकांश सभ्यता मानो उसी स्याहीसे लिखी हुई है। समय पाकर वह लुप्त हो जाती है और फिर शुभ संयोग पाकर नई सभ्यताके संबंधसे, नए जीवनके उत्तापसे उसका फिरसे उठआना असम्भव नहीं जान पड़ता। हम लोग तो यही आशा करके बैठे हैं और इसी बड़ी आशासे उत्साहित होकर हम लोग अपने प्राचीन पोथी पत्रे आदि लाकर उसी

उत्तापके पास रख रहे हैं। यदि उसके पहले अक्षर फिरसे उठ आवें तब तो संसारमें हमारे गौरवकी रक्षा हो सकती है और नहीं तो वृद्ध भारतकी इसीमें सद्गति है कि उसका जराजीर्ण शरीर सभ्यताकी जलती हुई चितामें डाल दिया जाय और वह लोकान्तरित तथा रूपान्तरित हो जाय।

हम लोगोंमें सर्वसाधारणके सम्मानभाजन एक सम्प्रदायके लोग हैं जो वर्त्तमान समस्याकी एक सहज मीमांसा करना चाहते हैं। उन लोगोंके भाव इस प्रकार हैं;—

बहुतसी बाहरी बातें ऐसी हैं जिनके कारण अँगरेजोंके साथ हम लोगोंका मेल नहीं हो सकता। यही बाहरी बातें सबसे पहले आँखों-पर आघात करती हैं और उससे विजातीय विद्वेषका सूत्रपात हो जाता है। इसलिये सबसे पहले उसी बाहरी विरोधको यथासम्भव दूर करना आवश्यक है। जो आचार व्यवहार और दृश्य बहुत दिनोंके अभ्यासके कारण सहजमें ही अँगरेजोंकी श्रद्धा आकृष्ट करते हैं, इस देशके लिये उन्हीं आचार-व्यवहारों और दृश्योंका प्रवर्त्तन करना लाभ-दायक है। वस्त्र, भूषण, भावभङ्गी, और यहाँ तक कि यदि भाषा भी अँगरेजी हो जाय तो दोनों जातियोंका मेल होनेमें जो बड़ाभारी भेद पड़ता है वह दूर हो जाय और हम लोगोंको अपने सम्मानकी रक्षा करनेका एक सहज उपाय मिल जाय।

हमारी समझमें यह बात ठीक नहीं है। बाहरी अनेकता लुप्त कर देनेमें सबसे बड़ी विपत्ति यह है कि उससे अनभिज्ञ दर्शकके मनमें एक झूठी आशाका संचार हो जाता है। और उस आशाकी रक्षा करनेके लिये छिपे तौरपर हमें झूठका शरणापन्न होना पड़ता

है। अँगरेजोंको यह जतला देना होता है कि हम भी तुम्हीं लोगोंकी तरह हैं। और जहाँ कोई उनसे भिन्न बात निकल आती है तो उसे चटपट वहीं दबा देनेकी इच्छा होती है। आदम और हौआ ज्ञानवृक्षका फल खानेसे पहले जिस सहज वेशमें घूमा करते थे वह बहुत ही शोभायुक्त और पवित्र था, लेकिन ज्ञानवृक्षका फल खानेके बादसे लेकर जबतक इस पृथ्वीपर दरजीकी दूकान नहीं खुली थी तबतक इसमें सन्देह नहीं कि उन लोगोंका वेश आदि अश्लीलता-निवारिणी सभामें निन्दनीय समझा जाता था। हम लोगोंके लिये भी यही सम्भव है कि नए आवरणमें हम लोगोंकी लज्जा दूर न होगी बल्कि और बढ़ जायगी। क्योंकि, अभीतक कपड़े सीनेका कोई ऐसा कारखाना नहीं खुला है जो सारे देशवासियोंके शरीर ढक सके। यदि हम इस प्रकार शरीर ढकना चाहेंगे तो एक तो ढके ही न जा सकेंगे और फिर इसके समान विडम्बनाकी बात और कोई हो नहीं सकती। जो लोग लोभमें पड़कर सभ्यतावृक्षका यह फल खा बैठे हैं उन लोगोंको बहुत ही परेशान होना पड़ता है। इन लोगोंको सिर्फ इसी लिये परदा टाँगकर सब काम करना पड़ता है कि जिसमें कोई अँगरेज यह न देख ले कि हम हाथसे खाते हैं या चौका लगाकर भोजन करने बैठते हैं। एटीकेट (Ettiquete) शास्त्रमें यदि जरासी भी त्रुटि हो जाय, अथवा अँगरेजी भाषा बोलनेमें जरासी भी भूल हो जाय, तो वे उसे पातकके समान समझते हैं और अपने सम्प्रदायमें यदि वे आपसमें एक दूसरेके साहबी आदर्शमें कुछ भी कमी देखते हैं तो लज्जा और अवज्ञा अनुभव करते हैं। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो नंगे रहनेकी अपेक्षा इस अधूरे कपड़े पहननेमें ही और कपड़े पहननेकी निष्फल चेष्टामें ही वास्तविक अश्लीलता है—इसीमें यथार्थ आत्म-अवमानना है।

जहाँ थोड़ा बहुत अँगरेजी ठाठ बनाया जाता है वहाँ असमानता या बेढंगापन और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है। उसका फल कुछ अधिक शोभायुक्त नहीं होता। इसी लिये रुचिपर दोहरा आघात होता है। अपने पुराने अभ्यासके कारण भारतवासियोंके निकट आकृष्ट होनेमें अँगरेज मनमें यही समझते हैं कि यह बड़ा अन्याय हो रहा है—ठगे जा रहे हैं और इस कारण उनका मन दूने वेगसे प्रतिहत होता है।

आधुनिक जापान युरोपीय सभ्यताका ठीक ठीक अनुयायी हो गया है। उसकी शिक्षा केवल बाहरी शिक्षा नहीं है। कल-कारखाने, शासन-प्रणाली, विद्या-विस्तार आदि सभी काम वह स्वयं अपने हाथोंसे चलाता है। उसकी पटुता देखकर युरोप विस्मित होता है और उसे ढूँढ़नेपर भी कहीं कोई त्रुटि नहीं मिलती। लेकिन फिर भी युरोप अपने विद्यालयके इस सबसे बड़े छात्रको विलायती वेश-भूषा और आचार-व्यवहारका अनुकरण करते हुए देखकर विमुख हुए बिना नहीं रह सकता। जापान अपनी इस अद्भुत कुरुचि, इस हास्यजनक असंगतिके सम्बन्धमें स्वयं बिलकुल अन्धा है। किन्तु युरोप इस छद्म-वेशी एशियावासीको देखकर मनमें बहुत कुछ श्रद्धा रखनेपर भी बिना हँसे हुए नहीं रह सकता।

और फिर क्या हम लोग युरोपके साथ और समस्त विषयोंमें इतने अधिक एक हो गए हैं कि बाहरी अनेकता दूर करते ही असंगति नामक बहुत बड़ा रुचिदोष न होगा?

यह तो हुई एक बात, दूसरी बात यह है कि इस उपायसे लाभ तो गया चूल्हेमें उल्टे मूल धनकी ही हानि होती है। अँगरेजोंके साथ जो अनेकता है वह तो है ही, दूसरे अपने देशवासियोंके साथ भी

अनेकता सूचित होती है। आज यदि हम अँगरेजोंकी नकल बनकर किसी अँगरेजके पास सम्मान प्राप्त करनेके लिये जायँ तो हमारे जो भाई अँगरेजोंकी नकल नहीं बन सकते उन लोगोंको 'अपना' कहनेमें हमें स्वभावतः ही कुछ संकोच होगा। उनके लिये बिना लज्जा अनुभव किए हमारे लिये और कोई उपाय ही नहीं है। अपने विषयमें लोगोंसे यही कहनेकी प्रवृत्ति होती है कि हम अपने गुणोंसे इन सब लोगोंसे अलग होकर स्वतंत्र जातिमें मिल गए हैं।

इसका अर्थ ही यह है कि हम अपना जातीय सम्मान बेचकर, आत्म-सम्मान मोल लें। यह एक प्रकारसे अँगरेजोंके सामने यही कहना है कि साहब इन जंगलियोंके साथ आप चाहे जैसा व्यवहार करें; परन्तु जब हम बहुत कुछ आपहीकी तरह शकल बनाकर आए हैं तब हम अपने मनमें इस बातकी बहुत बड़ी आशा रखते हैं कि आप हमें अपने पाससे दूर न कर देंगे।

अब आप ही सोच लीजिए कि इस प्रकारके कंगालपनसे कुछ प्रसाद भले ही मिल जाय, लेकिन क्या इससे कभी अपने अथवा अपनी जातिके सम्मानकी रक्षा हो सकती है?

कर्णने जिस समय अश्वत्थामासे कहा था कि तुम ब्राह्मण हो, मैं तुम्हारे साथ क्या युद्ध करूँ! तब अश्वत्थामाने कहा था कि क्या तुम इसीलिये मुझसे युद्ध नहीं कर सकते कि मैं ब्राह्मण हूँ? अच्छा तो लो, मैं अपना यह यज्ञोपवीत तोड़कर फेंक देता हूँ।

यदि कोई अँगरेज हमसे हाथ मिलाकर कहे अथवा हमारे नामके साथ एस्क्वायर (Esquire=महाशय) जोड़कर लिखे कि अच्छा जब कि तुम यथासंभव अपनी जातीयताको ताकपर रखकर आए हो तो हम तुम्हें अपने क्लबका सभासद बना लेते हैं, हम लोगोंके होट-

लमें तुम्हें स्थान दिया जाता है और यदि तुम हमसे भेंट करनेके लिये आओगे तो एकाद बार हम भी तुम्हारे यहाँ बदलेकी भेंट करनेके लिये तुम्हारे यहाँ आ सकेंगे, तो क्या हम उसी समय अपने आपको परम सम्मानित समझकर आनन्दके मारे फूल उठेंगे अथवा यह कहेंगे कि क्या केवल इतनेके लिये ही हमारा सम्मान है! यदि यही बात हो तो हम अपना यह नकली वेश उतारकर फेंक देते हैं! जबतक हम अपनी जातिको यथार्थ सम्मानके योग्य न बना सकेंगे तबतक हम स्वाँग सजकर और अपवाद-स्वरूप बनकर तुम्हारे दरवाजे न आवेंगे ।

हम तो कहते हैं कि हमारा एक मात्र व्रत यही है । हम न तो किसीको ठगकर सम्मान प्राप्त करेंगे और न सम्मानको अपनी ओर आकृष्ट करेंगे । हम अपने आपमें ही सम्मान अनुभव करेंगे । जब वह दिन आवेगा तब हम संसारकी जिस सभामें चाहेंगे उस सभामें प्रवेश कर सकेंगे । उस दशामें हमारे लिये नकली वेश, नकली नाम, नकली व्यवहार और भिक्षामें माँगे हुए मानकी कोई आवश्यकता न रह जायगी ।

लेकिन इसका उपाय सहज नहीं है । हम पहले ही कह चुके हैं कि सहज उपायसे कभी कोई दुस्साध्य कार्य्य नहीं होता । यह कार्य बहुत ही कठिन है इसी लिये और सब कार्योंको छोड़कर केवल इसीकी ओर विशेष ध्यान देना पड़ेगा ।

कार्य्यमें प्रवृत्त होनेसे पहले हमें यह प्रण कर लेना पड़ेगा कि जबतक वह सुअवसर न आवेगा तबतक हम अज्ञात वासमें रहेंगे ।

निर्माण होनेकी अवस्थामें गुप्त रहनेकी आवश्यकता होती है । बीज मिट्टीके नीचे छिपा रहता है । भ्रूण गर्भके अन्दर गुप्तरूपसे रक्षित

रहता है। जिन दिनों बालकको शिक्षा दी जाती है उन दिनों यदि उसे सांसारिक बातोंमें अधिक मिलने दिया जाय तो वह प्रवीण समाजमें गिने जानेकी दुराशासे प्रवीण लोगोंका अनुचित अनुकरण करके उचित समयसे पहले ही पक्क हो जायगा। वह अपने मनमें समझने लगेगा कि मैं एक गण्य माण्य व्यक्त हो गया हूँ। फिर उसके लिये नियमानुकूल शिक्षाकी आवश्यकता न रह जायगी—विनय उसके लिये व्यर्थ और निरर्थक हो जायगी।

जब पाण्डव अपना प्राचीन गौरव प्राप्त करने चले थे तब उन्होंने पहले अज्ञातवासमें रहकर बल संचित किया था। संसारमें उद्योग-पर्वसे पहले अज्ञातवास-पर्व होता है।

आजकल हम लोग आत्म-निर्माण और जाति-निर्माणकी अवस्थामें हैं। हम लोगोंके लिये यह अज्ञातवासका समय है।

लेकिन यह हम लोगोंका दुर्भाग्य है कि हमलोग बहुत अधिक प्रकाशित हो गए हैं—संसारके सामने बहुत अधिक आ गए हैं। हम लोग बहुत अपरिपक्क अवस्थामें ही अधीर भावसे अंडेके बाहर निकल पड़े हैं। इस प्रतिकूल संसारमें हमारे लिये यह दुर्बल और अपरिणत शरीर लेकर अपनी पुष्टि करना बहुत ही कठिन हो गया है।

संसारकी रणभूमिपर आज हम कौनसा अस्त्र लेकर खड़े हुए हैं? केवल वक्तृता और आवेदन ही न? हम कौनसी ढाल लेकर आत्म-रक्षा करना चाहते हैं? केवल कपट-वेश ही? इस प्रकार कितने दिनोंतक काम चलेगा और इसका कहाँतक फल होगा?

एक बार अपने मनमें कपट छोड़कर सरल भावसे यह स्वीकृत करनेमें क्या दोष है कि अभीतक हम लोगोंके चरित्र-बलका जन्म नहीं हुआ? हम लोग दलबन्दी, ईर्षा और क्षुद्रतासे जीर्ण हो रहे हैं। हम

लोग एकत्र नहीं हो सकते, एक दूसरेका विश्वास नहीं करते और अपनेमेंसे किसीका नेतृत्व स्वीकृत करना नहीं चाहते। हम लोगोंके बड़े बड़े अनुष्ठान बड़े बड़े बुलबुलोंकी तरह बहुत ही थोड़े समयमें नष्ट हो जाते हैं। आरम्भमें तो हम लोगोंका काम बहुत तेजीके साथ उठता है और दो ही दिन बाद पहले तो वह विच्छिन्न होता है तब विकृत होता है और अन्तमें निर्जीव हो जाता है। जबतक यथार्थ त्याग-स्वीकारका समय नहीं आता तबतक हम लोग खेलवाड़ी बालककी तरह कोई काम हाथमें लेकर पागल बने रहते हैं और थोड़े ही दिनों बाद जब त्यागका समय उपस्थित होता है तो तरह तरहके बहाने करके अपने अपने घर चले जाते हैं। यदि किसी कारणसे हमारा आत्माभिमान तिलभर भी भंग होता है तो हमें अपने उद्देश्यके महत्त्वके सम्बन्धमें कुछ भी ज्ञान नहीं रह जाता। जिस प्रकार हो कामके आरम्भ होते न होते हमारा गरमागरम नाम हो जाना चाहिए। यदि विज्ञापन और रिपोर्टों आदिके द्वारा खूब धूमधाम हो जाय और हमारी यथेष्ट प्रसिद्धि हो जाय तो उससे हम लोगोंकी इतनी अधिक तृप्ति हो जाती है कि उसके बाद तुरन्त ही हमारी प्रकृति निद्रालस हो जाती है। फिर जो कार्य्य धैर्य्यसाध्य, श्रमसाध्य और निष्ठासाध्य होता है उसमें हाथ डालनेमें हमारा जी ही नहीं लगता।

हमारे लिये सबसे अधिक विस्मय और विचारकी बात यही है कि यह दुर्बल अपरिणत और बिलकुल जीर्णचरित्र लेकर हम लोग किस साहससे बाहर निकलकर खड़े हो गए हैं!

ऐसी अवस्थामें अपनी अपूर्णताका संशोधन या पूर्ति न करके उस अपूर्णताको छिपानेकी ही इच्छा होती है। ज्यों ही कोई अपने दोषोंकी समालोचना करनेके लिये खड़ा होता है त्यों ही सब लोग मिल-

कर उसके मुँहपर हाथ रखकर उसे बन्द कर देते हैं और कहते हैं कि अजी चुप रहो, चुप रहो। अगर अँगरेज लोग यह बात सुन लेंगे तो वे अपने मनमें क्या कहेंगे?

और फिर हम लोगोंके दुर्भाग्यसे एक बात यह भी है कि बहुतसे विषयोंमें अँगरेजोंकी दृष्टि भी कुछ स्थूल है। भारतवासियोंमें जो थोड़ेसे विशेष गुण हैं और जो विशेष आदरके योग्य हैं उन्हें अँगरेज लोग चुनकर ग्रहण नहीं कर सकते। चाहे अवज्ञाके कारण हो और चाहे किसी और कारणसे हो, वे विदेशी आवरण भेद नहीं कर सकते और न उसे भेद करना ही चाहते हैं। इसका एक दृष्टान्त देख लीजिए। विदेशमें रहकर जर्मन लोगोंने जिस प्रकार एकाग्रताके साथ हम लोगोंके संस्कृत शास्त्रोंका अनुशीलन किया है उस प्रकार एकाग्रताके साथ, स्वयं भारतमें उपस्थित रहकर, अँगरेजोंने नहीं किया है। अँगरेज लोग भारतवर्षमें ही अपना जीवन बिताते हैं और सारे देशपर उन्होंने पूर्णरूपसे अधिकार कर लिया है परन्तु देशी भाषाओंपर वे अधिकार नहीं कर सके हैं।

इस लिये अँगरेज लोग भारतवासियोंको ठीक भारतवर्षीय भावसे समझने और श्रद्धा करनेमें असमर्थ हैं। इसी लिये हम लोग विवश होकर अँगरेजोंको अँगरेजी भावोंसे ही मुग्ध करनेकी चेष्टा करते हैं। जो बात हम अपने मनमें समझते हैं वह अपने मुँहसे नहीं कहते। कार्यरूपमें हम जो कुछ करते हैं समाचारपत्रोंमें उसे बहुत बढ़ाकर लिखते हैं। हम लोग समझते हैं कि अँगरेज लोग people (सर्व साधारण) नामक पदार्थको 'हौआ' समझते हैं। इसी लिये हम लोग भी किसी न किसी प्रकार चार आदमियोंको इकट्ठा करके people बनकर और अपने स्वरको गम्भीर करके अँगरेजोंको डराते हैं। आपसमें हम लोग

कहते हैं कि भाई क्या करें। बिना ऐसा किए तो वे कुछ सुनते ही नहीं, इस लिये और क्या किया जाय! वे लोग अपने यहाँका ही दस्तूर समझते हैं।

इस प्रकार अँगरेजोंके स्वभावके कारण ही हम लोगोंको अँगरेजोंकी नकल और आडम्बर करके उनसे सम्मान पाना और काम कराना पड़ता है लेकिन फिर भी हम कहते हैं कि सबसे बढ़कर अच्छी बात यही है कि हम लोग नकल या ढोंग न करें। यदि बिना नकल किए हमारे विधाता हमें थोड़ा बहुत अधिकार न दें अथवा हमपर थोड़ा बहुत अनुग्रह न करें तो नहीं सही!

यह बात नहीं है कि हम अपने विधाताओंसे बिगड़कर या नाराज होकर यह बात कह रहे हैं। वास्तवमें हमारे मनमें बहुत ही भय है। हम लोग ठहरे मिट्टीके बरतन। इन काँसेके बरतनोंके साथ विवाद करना तो चूल्हे भाड़में गया यदि हम आत्मीयतापूर्वक इनसे हाथ भी मिलाने जायँ तो आशंकाकी सम्भावना होती है।

इसका कारण यह है कि इतनी अनेकताके संघातमें आत्मरक्षा करना बहुत ही कठिन होता है। हम लोग दुर्बल हैं इसी लिए हम सोचते हैं कि चलो किसी अँगरेजके पास चलें, शायद वह कृपा करके प्रसन्नतापूर्वक हमें देखकर हँस दे। हमें इस बातका बहुत अधिक लोभ रहता है—इतना अधिक लोभ रहता है कि उस कृपाके सामने हम अपना यथार्थ हित तक भूल सकते हैं। अगर कोई अँगरेज हँसकर हमसे कहे कि वाह बाबू! तुम अँगरेजी तो बुरी नहीं बोलते, तो उसके बाद अपनी मातृभाषाकी चर्चा करना हमारे लिये बहुत ही कठिन हो जाता है। हमारे जिस बाहरी अंशपर अँगरेजोंकी कृपादृष्टि पड़ती है उसी अंशको हम खूब मनोहर और चित्ताकर्षक बनाना चाहते हैं

और जिस ओर किसी युरोपियनकी दृष्टि पड़नेकी सम्भावना नहीं होती उस ओर बिलकुल अन्धकार ही रह जाता है। उस ओरका हम बिलकुल अनादर और परित्याग ही कर देते हैं। उस ओरका किसी प्रकारका संशोधन करनेमें हमें आलस्य जान पड़ता है।

इसके लिये हम मनुष्यको दोष नहीं दे सकते। किसी अकिंचन, अपमानितके लिये यह प्रलोभन बहुत ही स्वाभाविक है। भाग्यवानकी प्रसन्नता उसे विना विचलित किए नहीं रह सकती।

हम आज कहते हैं कि भारतवर्षके सबसे अधिक दीन और मलिन कृषकको भी हम अपना भाई कहकर गलेसे लगावेंगे। और यह जो गोरे टमटम हाँकते हुए हमारे सारे शरीरपर कीचड़के छींटे डालते हुए चले जाते हैं उनके साथ हमारा रत्ती भर भी सम्बन्ध नहीं है।

ठीक उसी समय यदि वह गोरा अचानक टमटम रोककर हमारी दरिद्र कुटियामें आकर पूछे—" बाबू! तुम्हारे पास दियासलाई है?" तब हमारा जी चाहता है कि हमारे देशके पचीस करोड़ आदमी यहाँ आकर कतारके कतार खड़े हो जायँ और देख जायँ कि साहब आज हमारे ही घरपर दियासलाई माँगने आए हैं। यदि संयोगवश ठीक उसी समय हमारा कोई सबसे दीन और मलिन कृषक भाई हमारी माताको प्रणाम करनेके लिये हमारे दरवाजेपर आखड़ा हो तो यही जी चाहता है कि किसी प्रकार इस कुत्सित दृश्यको पृथ्वीके अन्दर लुप्त कर दें; जिसमें साहब कभी यह न सोचें कि उस जंगलीके साथ हमारा कोई सम्बन्ध या बहुत दूरकी कोई एकता है।

इसलिये जब हम अपने मन ही मन यह कहते हैं कि हम किसी साहबके पास न जायँगे, तब हम यह बात अहंकारके साथ नहीं कहते बल्कि बहुत ही विनय और बहुत ही आशंकाके साथ कहते हैं।

हम समझते हैं कि इसी सौभाग्य-गर्वसे ही हमारा सबसे अधिक सर्वनाश होगा, हम एकान्तमें बैठकर अपने कर्त्तव्यका पालन न कर सकेंगे। हमारा मन सदा साशंक और चंचल रहेगा और अपने दरिद्र सम्बन्धियोंका अप्रसिद्ध घर हमें बहुत अधिक सूना जान पड़ेगा। जिन लोगोंके लिये अपने प्राण दे देना हमारा कर्त्तव्य है उन लोगोंके साथ आत्मीयके समान व्यवहार करनेमें हमें लज्जा जान पड़ेगी।

अँगरेज लोग अपने आमोद-प्रमोद, आहार-विहार, आसंग-प्रसंग, बन्धुत्व और प्रेमसे हम लोगोंको बिलकुल बहिष्कृत करके हमारे लिये द्वार बन्द रखना चाहते हैं तो भी यदि हम लोग झुककर, दबकर, कलसे, बलसे, छलसे उस द्वारमें प्रवेश करनेका थोड़ासा अधिकार पा जाते हैं, राजसमाजसे हमारा यदि बहुत ही थोड़ा सम्बन्ध हो जाता है, हम उसकी केवल गंध भी पा जाते हैं तो हम लोग इतने कृतार्थ हो जाते हैं कि उस गौरवके सामने हमें अपने देशवासियोंकी आत्मीयता बिलकुल तुच्छ जान पड़ती है। ऐसे अवसरपर, ऐसी दुर्बल मानसिक अवस्थामें उस सर्वनाशी अनुग्रह मद्यको हमें बिलकुल अपेय और अस्पृश्य समझना चाहिए और उसका सर्वथा परिहार करना चाहिए।

इसका एक और भी कारण है। अँगरेजोंके अनुग्रहको केवल गौरव समझकर हमारे लिये सर्वथा निस्स्वार्थ भावसे उसका भोग करना भी कठिन है। इसका कारण यह है कि हम लोग दरिद्र हैं और पेटकी आग केवल सम्मानकी वर्षासे नहीं बुझ सकती। हम यह चाहते हैं कि अवसर पड़नेपर उस अनुग्रहके बदलेमें और कुछ भी ले सकें। हम लोग केवल अनुग्रह नहीं चाहते बल्कि उसके साथ ही साथ अन्नकी भी आशा रखते हैं। हम लोग केवल यही नहीं चाहते कि साहब

हमसे हाथ मिलावें बल्कि हमारे लिये यह भी आवश्यक है कि नौकरी परका हमारा वेतन बढ़ जाय। यदि आरम्भमें दो दिनतक हम साहब बहादुरके यहाँ मित्रकी भाँति आते जाते हैं तो तीसरे दिन भिख-मंगोंकी तरह उनके सामने हाथ फैलानेमें भी हमें लज्जा नहीं आती। इस लिये साहबके साथ हमारा जो सम्बन्ध होता है वह बहुत ही हीन हो जाता है। एक ओर तो हम इस लिये अपने मनमें नाराज हो जाते हैं कि अँगरेज हम लोगोंके साथ समानताका भाव नहीं रखते और तदनुकूल हमारा सम्मान नहीं करते और दूसरी ओर उनके दर-वाजेपर जाकर हम भीख माँगना भी नहीं छोड़ते।

जो भारतवासी अँगरेजोंसे मिलनेके लिये जाते हैं उन्हें वे अँगरेज अपने मनमें उम्मेदवार अनुग्रहप्रार्थी अथवा उपाधिके प्रत्याशी समझे बिना नहीं रह सकते। क्योंकि अँगरेजोंके साथ भेंट करनेका हमारे लिये और कोई कारण या सम्बन्ध तो है ही नहीं। उनके घरके किवाड़ बन्द हैं और हमारे दरवाजेपर ताला लगा है। तब आज अचानक जो आदमी अङ्गा और पगड़ी पहनकर कुछ शंकित भावसे चला आ रहा है, एक अभद्रकी भाँति अनभ्यस्त और अशोभित भावसे सलाम कर रहा है, यह नहीं समझ सकता कि मैं कहाँ बैठूँ और हिचक हिचककर बातें कर रहा है, उसके मनमें सहसा इतनी विरह-वेदना कहाँसे उत्पन्न हो गई जो वह चपरासीको थोड़ा बहुत पारितोषिक देकर भी साहबका मुख-चन्द्र देखने आ रहा है?

जिसकी अवस्था बहुत ही गई-बीती हो वह बिना बुलाए और बिना आदरके किसी भाग्यवानके साथ घनिष्टता बढ़ानेके लिये कभी न जाय। क्योंकि इससे दोनोंमेंसे किसी पक्षका मंगल नहीं होता। अँगरेज लोग इस देशमें आकर क्रमशः जो नई मूर्ति धारण करते जाते

हैं, क्या उसका बहुत कुछ कारण हम लोगोंकी हीनता ही नहीं है ? इसलिये भी हम कहते हैं कि जब अवस्था इतनी बुरी है तब यदि हमारे सम्बन्ध और संघर्षसे अँगरेज लोग रक्षित रहेंगे तो उन लोगोंका चरित्र भी इतनी जल्दी विकृत न होगा । इसमें दोनों ही पक्षोंका लाभ है ।

अतएव सब बातोंका अच्छी तरह ध्यान रखकर राजा और प्रजाका आपसका द्वेष शान्त रखनेके लिये सबसे अच्छा उपाय यही जान पड़ता है कि हम लोग अँगरेजोंसे सदा दूर रहें और एकान्त मनसे अपने समस्त निकट-कर्तव्योंके पालनमें लग जायँ । केवल भिक्षा करनेसे कभी हमारे मनमें यथार्थ सन्तोष न होगा । आज हम लोग यह समझते हैं कि जब हमें अँगरेजोंसे कुछ अधिकार मिल जायँगे तब हम लोगोंके सब दुख दूर हो जायँगे । लेकिन यदि भीख माँगकर हम सारे अधिकार भी प्राप्त कर लेंगे तब हम देखेंगे कि हमारे हृदयमेंसे लांछना किसी प्रकार दूर ही नहीं होती । बल्कि जबतक हमें अधिकार नहीं मिलते तबतक हमारे मनमें जो थोड़ी बहुत सान्त्वना है अधिकार प्राप्त करने पर वह सान्त्वना भी न रह जायगी । हमारे हृदयमें जो शून्यता है जबतक उसकी पूर्त्ति न होगी तबतक हमें किसी प्रकार शान्ति न मिलेगी । जब हम अपने स्वभावको सारी क्षुद्रताओंके बन्धनसे मुक्त कर सकेंगे तभी हम लोगोंकी यथार्थ दीनता दूर होगी और तभी हम लोग तेजके साथ, सम्मानके साथ अपने शासकोंसे भेंट करनेके लिये जा आ सकेंगे ।

हम कुछ ऐसे पागल नहीं हैं जो यह आशा करें कि सारा भारतवर्ष पद, प्रभाव और अँगरेजोंके प्रसादकी चिन्ता छोड़कर, ऊपरी तड़क भड़क और यश तथा प्रसिद्धिका ध्यान छोड़कर, अँगरेजोंको

आकृष्ट करनेके प्रबल मोहसे अपनी रक्षा करके, मनोयोगपूर्वक अविचलित चित्तसे चरित्रबलका संचय करने लगेगा, ज्ञान और विज्ञान सीखने लगेगा, स्वाधीन व्यापारमें प्रवृत्त हो जायगा, सारे संसारकी यात्रा करके लोकव्यवहार सीखेगा, परिवार और समाजमें सत्यके आचरण और सत्यके अनुष्ठानका प्रचार करेगा, मनुष्य जिस प्रकार अपना मस्तक सहजमें लिए चलता है उसी प्रकार अनायास और स्वाभाविक रूपमें वह अपना सम्मान बराबर रक्षित रखकर लिए चलेगा, लालायित और लोलुप होकर दूसरोंके पास सम्मानकी भिक्षा माँगने न जायगा और 'धर्मो रक्षति रक्षितः' वाले सिद्धान्तका गूढ तात्पर्य पूर्ण रूपसे अपने मनमें समझ लेगा। यह बात सभी लोग बहुत अच्छी तरह जानते हैं कि जिस तरफ सुभीतेकी ढाल जगह होती है मनुष्य अनजानमें धीरे धीरे उसी तरफ ढलता जाता है। यदि हैटकोट पहनने, अँगरेजी भाषा बोलने और अँगरेजोंके दरवाजे जानेमें कोई सुभीता हो तो कुछ लोग हैट-कोट पहनने लग जायँगे, अपने लड़कोंको बहुत कुछ प्रयत्न करके मातृभाषाका बोलना भुला देंगे और साहबोंके दरबानोंके साथ अपने पिता या भाईसे भी बढ़कर आत्मीयता स्थापित करने लग जायँगे। इस प्रवाहको रोकना बहुत ही कठिन है। लेकिन फिर भी अपने मनकी बातको स्पष्ट रूपसे प्रकट कर देना आवश्यक है। चाहे अरण्य-रोदन ही क्यों न हो तौ भी हमें कहना ही पड़ता है कि अँगरेजीका प्रचार करनेसे कोई फल न होगा। देशकी स्थायी उन्नति तभी होगी जब शिक्षाकी नीव देशी भाषाओंपर रक्खी जायगी। अँगरेजोंसे आदर प्राप्त करनेका भी कोई फल न होगा। अपने मनुष्यत्वको सचेतन और जाग्रत करनेमें ही यथार्थ गौरव है। यदि किसीको धोखा देकर कुछ वसूल कर लिया जाय तो उससे यथार्थ प्राप्ति नहीं

होती। निष्ठापूर्वक प्राणपणसे त्याग स्वीकार करनेमें ही यथार्थ कार्य-सिद्धि है।

सिक्खोंके अन्तिम गुरु गोविन्दसिंहने जिस प्रकार बहुत दिनोंतक दुर्गम एकान्त स्थानमें रहकर भिन्न भिन्न जातियोंके भिन्न भिन्न शास्त्रोंका अध्ययन किया था और बहुत दिनोंमें आत्मोन्नति करनेके उपरान्त तब निर्जन स्थानसे बाहर निकलकर अपना गुरुपद ग्रहण किया था, उसी प्रकार जो मनुष्य हम लोगोंका गुरु होगा उसे अप्रसिद्ध और एकान्तस्थानमें अज्ञातवास करना पड़ेगा। परम धैर्य्यके साथ गूढचिन्ता करते हुए भिन्न भिन्न देशोंके ज्ञान और विज्ञानमें अपने आपको डुबा देना होगा, आजकल सारा देश अन्धा होकर अनिवार्य्य वेगसे जिस आकर्षणसे बराबर खिंचा चला जा रहा है उस आकषर्णसे बहुत ही यत्नपूर्वक उसे अपने आपको दूर और रक्षित रखना पड़ेगा और बहुत ही स्पष्टरूपसे हानि और लाभके ज्ञानका अर्जन और मार्जन करना पड़ेगा। इतना सब कुछ करनेके उपरान्त जब वह बाहर निकलकर हम लोगोंकी चिरपरिचित भाषामें हम लोगोंका आह्वान करेगा, हम लोगोंको आदेश करेगा तब चाहे और कुछ हो या न हो पर हम लोग सहसा चैतन्य अवश्य हो जायँगे। तब हम लोग समझेंगे कि इतने दिनोंतक हम लोग भ्रममें पड़े हुए थे। हम लोग एक स्वप्नके वशमें होकर आँखें बन्द करके संकटके रास्तेमें चल रहे थे और वही रास्ता पतनकी उपत्यका है।

हम लोगोंके वे गुरुदेव आजकलके इस उद्भ्रान्त कोलाहलमें नहीं हैं। वे मानमर्य्यादाकी इच्छा नहीं करते। वे कोई बड़ा पद नहीं चाहते। वे अँगरेजी समाचारपत्रोंकी रिपोर्टें नहीं चाहते। वे सब प्रका-

रके पागलपनसे मूढजनस्रोतके भँवरसे यत्नपूर्वक अपनी रक्षा करते हैं। वे इस बातकी आशा नहीं करते कि किसी विशिष्ट कानूनके संशोधन अथवा किसी विशिष्ट सभामें स्थान मिलनेसे ही हम लोगोंके देशकी कोई यथार्थ दुर्गति दूर हो जायगी। वे एकान्तमें सब बातोंका ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं और एकान्तमें ही सब विषयोंका चिन्तन कर रहे हैं। वे अपने जीवनके बहुत ही उच्च आदर्शमें अटल उन्नति करते हुए चारों ओरके जनसमाजको अनजानमें ही अपनी ओर आकृष्ट कर रहे हैं। वे चारों ओर अपना उदार विश्वग्राही हृदय देकर चुपचाप सबको अपना रहे हैं और भारतलक्ष्मी उनकी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखती हुई ईश्वरसे एकान्तमनसे प्रार्थना कर रही है कि आजकलका मिथ्या तर्क और निर्दिष्ट बातें उन्हें कभी अपने लक्ष्यसे भ्रष्ट न कर सकें और देशके लोगोंकी विश्वासहीनता, निष्ठाहीनता और उद्देश्यके साधनके असाध्य होनेकी झूठी कल्पना उन्हें निरुत्साह न कर दे। इस देशकी उन्नति भले ही असाध्य हो परन्तु जो इस देशकी उन्नति करेगा, असाध्य कार्य्यका साधन ही उसका व्रत होगा।

राजनीतिके दो रुख।

साधारणतः न्यायपरता दया आदि अनेक बड़े बड़े गुणोंका जितना अधिक विकास अपनी बराबरीके लोगोंमें होता है उतना अधिक विकास असमान लोगोंके बीचमें नहीं होता। यह बात प्रायः देखी जाती है कि जो लोग अपनी बराबरी वालोंमें घरमें पले हुए हिरणके बच्चेकी तरह कोमल स्वभाववाले होते हैं, वे ही लोग छोटी श्रेणीवालोंके लिये जंगलके बाग, पानीके मगर अथवा आकाशके श्येन-पक्षीकी तरह होते हैं।

अबतक इस बातके अनेक प्रमाण पाए गए हैं कि युरोपकी जातियाँ युरोपमें जितनी सभ्य, जितनी सदय और जितनी न्यायपरायण होती हैं उतनी युरोपसे बाहर निकलनेपर नहीं रह जातीं। जो लोग ईसाइयोंके सामने ईसाइयोंकी ही तरह रहते हैं, अर्थात् जो एक गालपर थप्पड़ खाकर समय पड़नेपर दूसरा गाल भी उसके सामने कर देनेके लिये वाध्य होते हैं वे ही लोग दूसरे स्थानोंमें जाकर ईसाइयोंसे भिन्न दूसरी जातिके लोगोंके एक गालपर थप्पड़ मारकर उसे दूसरा गाल भी अपने सामने कर देनेके लिये कहते हैं और यदि ईसाईसे भिन्न जातिका वह मनुष्य अपनी मूर्खताके कारण उनका उक्त अनुरोध पालन करनेमें कुछ आगा पीछा करता है तो वे ईसाई तुरन्त ही उसका कान पकड़कर घरसे बाहर निकाल देते हैं और उसके घरमें अपना टेबुल, कुरसी और पलंग ला रखते हैं; उसके खेतमेंसे फसल काट लेते हैं, उसकी सोनेकी खानमेंसे सोना निकाल लेते हैं, उसकी गौओंका दूध दुह लेते हैं और उसके बछड़ोंको काटकर अपने बावर्चीखानेमें भेज देते हैं।

सच्चे ईसाइयोंने अमेरिकामें जिस प्रकार प्रलय और आस्ट्रेलियामें जिस प्रकार दारुण लोकसंहार उपस्थित कर दिया था उस अपेक्षाकृत पुरानी बातको इस समय उठानेकी आवश्यकता नहीं दिखाई देती। दक्षिण आफ्रिकामें जो मेटाविली युद्ध हुआ था यदि उसका वृत्तान्त अच्छी तरह देखा सुना जाय तो यह बात बहुत कुछ समझमें आ सकती है कि ईसाईसे भिन्न जातिके लोगोंके गालोंपर ईसाइयोंका जो थप्पड़ लगता है वह कैसा होता है।

उस युद्धका पूरा पूरा हाल नहीं मिलता लेकिन जो कुछ हाल मिलता है उसके भी पूर्ण रूपसे सत्य होनेमें बहुत कुछ सन्देह है, क्योंकि युद्धके समाचारोंकी तारकी खबरें लिखना भी उन्हीं ईसाइयोंके हाथमें रहता है। हम अपने पाठकोंसे उन कई पत्रों और प्रबंन्धोंके पढनेका अनुरोध करते हैं जो इस युद्धके सम्बन्धमें ट्रुथ (Truth) नामक प्रसिद्ध अँगरेजी साप्ताहिक पत्रमें प्रकाशित हुए थे।

हम इस प्रकारकी कोई आशा नहीं दिला सकते कि उन पत्रों और प्रबन्धोंको पढ़कर किसीको विशेप सन्तोष या आनन्द होगा। लेकिन हम इतना कह सकते हैं कि उन्हें पढ़कर लोग यह अवश्य समझ सकेंगे कि सभ्य जाति जिसे अपनी अपेक्षा कम सभ्य समझती है उसके सामने वह अपनी सभ्यताका और उसके साथ ही साथ उस असभ्यजातिका भी बलिदान कर देनेमें तनिक भी संकोच नहीं करती। उन्नीस सौ वर्षोंकी चिरसंचित सभ्यनीतिका युरोपीय आलोकित नाट्यशालाके बाहर अन्धकारपूर्ण नेपथ्य देशमें थोड़ी देरके लिये बनाया हुआ नकली वेश उतर जाता है और उसके स्थानपर जो आदिम नंगा मनुष्य निकल आता है उसकी अपेक्षा नंगे मेटाविली अधिक निकृष्ट नहीं होते।

हमने कुछ संकोचके साथ कहा है कि वे अधिक निकृष्ट नहीं होते, यदि हम निर्भय होकर सच कहना चाहें तो हमें यही कहना पड़ेगा कि वे जंगली इन सभ्योंसे बहुतसे अंशोंमें कहीं श्रेष्ठ हैं। यह बात स्वयं अँगरेजोंके पत्रमें प्रकाशित हुई है कि जँगली लवेंग्युलाने अँगरेजोंके साथ बरताव करते हुए जिस उदारता और उन्नत वीर हृदयका परिचय दिया है उसके सामने अँगरेजोंका क्रूर व्यवहार लज्जाके मारे म्लान हो गया है।

कोई कोई अँगरेज जो इस बातको स्वीकार करते हैं, बहुतसे लोग केवल इस स्वीकार करनेको ही अपने मनमें अँगरेजोंके गौरवकी बात समझेंगे और हम भी ऐसा ही समझते हैं, लेकिन आजकल अँगरेजोंमें बहुतसे लोग ऐसे हैं जो इसमें अपना गौरव नहीं समझते।

वे लोग यही समझते हैं कि आजकल धर्मनीति बहुत ही सूक्ष्म होती जा रही है। बात बातपर इतना अधिक असन्तोष प्रकाश करनेसे काम नहीं चलता। जिस समय अँगरेजोंके गौरवका मध्याह्न था उस समय वे नीतिकी सूक्ष्म परिधियोंको एक ही कुदानमें लाँघ सकते थे। जब आवश्यकता होती है तब अन्याय करना ही पड़ता है। जिन दिनों नारमन जातिके डाकू समुद्रोंमें डाके डालते फिरते थे उस समय वे लोग स्वस्थ और सबल थे। आजकल उनके जो अँगरेज वंशधर दूसरी जातियोंपर बलप्रयोग करनेमें संकुचित होते हैं वे दुर्बल और रुग्ण-प्रकृतिके हैं। कैसे मेटावेली और कहाँका लवेंग्युला, हम अँगरेज तुम्हारी सोनेकी खानें और तुम्हारे चौपायोंके झुण्ड लूटना चाहते हैं, इसके लिये इतने दाव-पेच और छल-कपटकी क्या आवश्यकता है? हम झूठी खबरें क्यों गढ़ने जायँ? अगर इसी तरहकी हमारी और भी

दो एक जबरदस्तियाँ पकड़ी जायँ तो उसके लिये समाचारपत्रोंमें इतने जोरोंसे पश्चात्ताप करने क्यों बैठें ?

लेकिन बाल्यावस्थामें जो बात अच्छी मालूम होती है बड़े होनेपर वह बात अच्छी नहीं मालूम होती। कोई एक दुष्ट लालची बालक अपनेसे किसी छोटे और दुर्बल बालकके हाथमें मिठाई देखकर जबर-दस्ती उससे छीन लेता है और क्षणभरमें ही अपने मुँहमें रख लेता है। उस असहाय बालकको रोते हुए देखकर भी उसके मनमें जरा भी पछ-तावा नहीं होता बल्कि यहाँतक कि वह उस दुर्बल बालकके गालपर एक तमाचा लगाकर जबरदस्ती उसका रोना बन्द करनेकी चेष्टा करता है और उसे देखकर दूसरे बालक भी मन ही मन उसके बाहुबल और दृढ़संकल्पकी प्रशंसा करते हैं।

यदि उस बलवान् बालकको बड़े होनेपर भी लोभ रह जाता है तो फिर वह थप्पड़ मारकर दूसरेकी मिठाई नहीं छीनता बल्कि छल करके उससे ले लेता है और यदि वह पकड़ा जाय तो कुछ लज्जित और अप्रतिभ भी होता है। उस समय वह अपने परिचित पड़ोसीपर हाथ साफ करनेका साहस नहीं करता। अपने गाँवसे दूरके किसी दरिद्र गाँवकी असभ्य माताके नंगे बालकके हाथमें जब वह एक समयका एक मात्र खाद्य पदार्थ देखता है, तब वह चारों ओर देखकर चुपचाप झपटकर उस पदार्थको ले लेता है और जब वह बच्चा जोर जोरसे चिल्लाने लगता है तब वह अपनी जातिके आनेजानेवाले पथिकोंसे आँखका इशारा करके कहता है कि इस असभ्य काले बालकको मैंने अच्छी तरह दंड देकर ठीक कर दिया है! लेकिन वह यह नहीं स्वीकार करता कि मुझे भूख लगी थी इस लिये मैंने उसके हाथका भोजन छीनकर खा लिया है।

पुराने जमानेकी डकैती और आज कलकी चोरीमें बहुत अन्तर है। आजकलके अपहरणमें प्राचीन कालका वह निर्लज्ज असंकोच और बलका अभिमान रही नहीं सकता। आजकल अपने कार्यके सम्बन्धमें अपना ज्ञान उत्पन्न हो गया है, इस लिये आजकल प्रत्येक कार्य्यके लिये न्याय-विचारके सामने उत्तरदायी होना पड़ता है। इससे काम भी पहलेकी तरह सहजमें पूरा नहीं उतरता और गालियाँ भी खानी पड़ती हैं। यदि कोई पुराना डाकू दुर्भाग्यवश इस बीसवीं शताब्दीमें जन्म ग्रहण कर ले तो उसका अविर्भाव बहुत ही असामायिक हो जायगा।

समाजमें इस प्रकारका असामयिक आविर्भाव सदा हुआ ही करता है। डाकू तो बहुतसे उत्पन्न होते हैं परन्तु वे सहसा पहचाने नहीं जाते। अनुपयुक्त समय और अनुपयुक्त स्थानमें पड़कर बहुतसे अवसरोंपर वे स्वयं अपने आपको ही नहीं पहचानते। इधर वे गाड़ीपर चढ़कर घूमते हैं, समाचारपत्र पढ़ते हैं, स्त्रीसमाजमें मीठी मीठी बातें करते हैं। कोई इस बातका सन्देह ही नहीं करता कि इस सफेद कमीज या काले कुर्तेमें राबिन हुडका नया अवतार घूम रहा है।

युरोपके बाहर निकलकर ये लोग सहसा अपनी पूर्ण शक्तिसे प्रकाशित हो जाते हैं। धर्मनीतिके आवरणसे मुक्त उस उत्कट रुद्रमूर्तिकी बात हम पहले ही कह चुके हैं। लेकिन युरोपके समाजमें ही जो राखसे ढके हुए बहुतसे अँगारे हैं उनका ताप भी कुछ कम नहीं है।

यही लोग आजकल कहते हैं कि बलनीतिके साथ यदि प्रेमनीति भी मिला दी जाय तो उससे नीतिका नीतित्व तो बढ़ सकता है परन्तु बलका बलत्व घट जाता है। प्रेम और दया आदिकी बातें सुननेमें तो बहुत अच्छी जान पड़ती है लेकिन जिस जगह हम लोगोंने रक्तपात करके अपना प्रभुत्व स्थापित किया है उस जगह जब नीतिदुर्बल नई

शताब्दिका सुकुमारहृदय बालक सेन्टिमेन्ट (Sentiment) के आँसू बहाता हुआ आ पहुँचता है तब उसके साथ हम लोग हृदयसे घृणा करते हैं। यहाँ तो संगीत, साहित्य, शिल्पकला और शिष्टाचार और वहाँ नंगी तलवार और संकोचरहित एकाधिपत्य।

इसीलिये आजकल हम लोगोंको अपनी शासक जातिके लोगोंमें दो तरहका सुर सुनाई पड़ता है। एक दल तो प्रबलताका पक्षपाती है और दूसरा दल संसारमें प्रेम, शान्ति और सुविचारका विस्तार करना चाहता है।

जब जातिका हृदय इस प्रकार विभक्त हो जाता है तब उसका बल टूट जाता है--अपना ही अपनेको बाधा देने लगता है। आज-कलके भारतमें रहनेवाले अँगरेज इसी बातको लेकर बहुत बड़ा कटाक्ष करते हैं। वे लोग कहते हैं कि हम लोग कुछ जबरदस्ती करके जो काम करना चाहते हैं उस काममें हमारे इंग्लैण्डवाले भाई बाधा देते हैं। हमें सभी बातोंमें नैतिक कैफियत देनी पड़ती है। जिन दिनों डाकू लोग कृष्ण समुद्रमें दिग्विजय करते हुए घूमते थे, अथवा जिन दिनों क्लाइवने भारत भूमिपर अँगरेजी झंडा खड़ा किया था, यदि उन दिनों उन लोगोंको नैतिक कैफियत देनी पड़ती तो अँगरेजोंको अपने घरके बाहर एक अंगुलभर भी जमीन न मिलती।

इस प्रकारकी बातें कहकर चाहे जितना प्रलाप करो लेकिन अखंड दुर्दमनीय बलकी वह अवस्था किसी प्रकार लौटकर नहीं आ सकती। आज यदि कोई अत्याचारका काम करने बैठो तो सारे देशमें दो प्रकारके मत फैल जायँगे। इस समय यदि कोई पीड़ित व्यक्ति न्यायविचारकी प्रार्थना करे तो स्वार्थहानिकी संभावना होनेपर भी विवश होकर कुछ लोग उसका सद्विचार करनेके लिये तैयार हो जायँगे।

यदि इस समय कोई व्यक्ति न्यायकी दोहाई देकर उठ खड़ा हो तो या तो स्वार्थपरता ही लज्जाके कारण कुछ संकुचित हो जायगी और नहीं तो न्याय ही छद्मवेश धारण करनेकी चेष्टा करेगा। जिन दिनों अन्याय और अनीति बलके साथ निःसंकोच भावसे अपना प्रकाश करती थी उन दिनों बलके अतिरिक्त उसका सामना करनेवाला और कोई न होता था, लेकिन आजकल जब कि वह स्वयं ही अपने आपको छिपानेकी चेष्टा करती है और बलके साथ अपना सम्बन्ध अस्वीकृत करके न्यायको अपनी ओर खींचती हुई बलवान् होना चाहती है तब वह आप ही अपने साथ शत्रुता करने लग जाती है। इसीलिये आजकल विदेशमें अँगरेज लोग कुछ दुर्बल हो रहे हैं और इसके लिये वे सदा बेचैनी दिखलाते हैं।

इसी लिये हम लोग भी जब अँगरेजोंका कोई दोष देख पाते हैं तब उन्हें दोषी कहनेका साहस कर बैठते हैं। इसके लिये हमारे अँगरेज प्रभू कुछ नाराज होते हैं। वे कहते हैं कि नवाब जब स्वेच्छाचार करते थे, मराठे सैनिक जब लूट-पाट करते थे, ठग जब गला घोंटकर लोगोंको मार डालते थे तब तुम्हारे कांग्रेसके सभापति और समाचारपत्रोंके सम्पादक कहाँ थे ! हम कहते हैं कि तब वे कहीं नहीं थे और यदि वे रहते भी तो उनके रहनेका कोई फल न होता। उस समय गुप्तरूपसे विद्रोह करनेवाले लोग थे, मराठे और राजपूत थे। उन दिनों बलके विरुद्ध बलके सिवा और कोई उपाय ही न था। उन दिनों चोरके सामने धर्मकी कथा उठानेका विचार किसीके मनमें आता ही न था।

आज कांग्रेस और समाचारपत्रोंका जो यह अभ्युदय हुआ है उसका कारण यही है कि अँगरेजोंमें अखंड बलका प्रादुर्भाव नहीं है।

आज यदि चोरके सामने धर्मकी बात उंठाई जाय तो चाहे वह उसे न माने, पर फिर भी वह उसका कुछ धर्मसंगत उत्तर देनेकी चेष्टा करता है। और यदि वह अच्छा उत्तर न दे सके तो वह उतने बलके साथ अपना काम नहीं कर सकता। इस लिये जो अँगरेज भारतीय सभा-समितियों और समाचारपत्रोंकी अधिकता और विस्तारपर आक्षेप करते हैं वे यथार्थतः अपने देशवासियोंकी जातीय प्रकृतिमें धर्म-बुद्धिके अस्तित्वसे दुःखी होते हैं। वे लोग जो वयःप्राप्त हो गए हैं, वे लोग अपनी त्रुटिके लिये जो आप ही लज्जित होना सीख गए हैं इसीको वे लोग शोचनीय समझते हैं।

एक हिसाबसे इसमें और भी बहुत कुछ शोचनीयता है। एक ओर तो भूखकी ज्वाला भी शान्त नहीं होती और दूसरी तरफ परा-एके हाथका अन्न भी नहीं ले सकते। यह एक बड़ा भारी संकट है! जातिके लिये अपने जीवनकी रक्षा करना भी परम आवश्यक है और धर्मकी रक्षा करना भी। दूसरेके साथ यदि अन्यायका आचरण किया जाय तो उससे केवल दूसरेकी हानि ही नहीं होती बल्कि अपने धर्मका आदर्श भी क्रमशः आधारहीन होता जाता है। गुलामोंपर जो लोग अत्याचार करते हैं वे स्वयं अपना चरित्र भी ध्वंस करते हैं। यदि धर्मको सब प्रकारका प्रयत्न करके बलवान् न बना रहने दिया जाय तो अपना जातीय बंधन भी क्रमशः शिथिल होता जाता है और फिर दूसरी ओर भरपेट खानेको भी चाहिए ही। क्रमशः वंश-वृद्धि और स्थानाभाव होता जाता है और सभ्यताकी उन्नतिके साथ साथ जीवनके आवश्यक उपकरण भी बहुत बढ़ते जा रहे हैं।

इसलिये पचीस करोड़ भारतवासियोंके भाग्यमें जो कुछ बदा हो सो हुआ करे लेकिन बड़ी तनख्वाहवाले अँगरेज कर्मचारियोंको

एक्सचेञ्जकी क्षतिपूर्त्तिके रूपमें ढेरके ढेर रुपए देने ही पड़ेंगे। यदि इस कामके लिये सरकारी खजानेमें रुपएकी कमी हो तो बिक्रीकी चीजोंपर नया महसूल लगाना आवश्यक होगा। लेकिन यदि इसमें लंकाशायरवालोंको जरा भी अड़चन या कठिनता हो तो फिर रुई पर महसूल लगाया जा सकता है। बल्कि इसके बदलेमें पब्लिकवर्क्सका काम भी कुछ कम किया जा सकता है और दुर्भिक्ष फण्डको रोककर काम चलाया जा सकता है।

एक ओर तो कर्मचारियोंका कष्ट आँखोंसे नहीं देखा जाता और दूसरी ओर लंकाशायरवालोंकी हानि भी नहीं देखी जा सकती। और फिर यह बात भी नहीं है कि पचीस करोड़ अभागे भारतवासियोंके लिये भी कुछ भी दुःख न होता हो। धर्मनीति मनुष्यको इसी प्रकारके संकटमें डाल देती है!

समाचारपत्रोंमें खूब आन्दोलन होने लगता है। आहत-नीड़ पक्षियोंके झुंडकी तरह सभास्थलमें कानोंके परदे फाड़नेवाली चिल्लाहट मचने लगती है और अँगरेज लोग बहुत बिगड़ उठते हैं।

जिस समय मन यह कहता हो कि यह काम न्यायसंगत नहीं हो रहा है और विना उस कामको किए भी गुजारा न होता हो, उस समय यदि कोई धर्मकी दोहाई देने लगे तो बहुत क्रोध आता है। उस समय कोई युक्तिका अस्त्र तो रह ही नहीं जाता, खाली हाथ घूँसा मारनेको जी चाहता है। उस समय केवल मनुष्यपर ही नहीं बल्कि धर्मशास्त्रपर भी तबीयत खिजला उठती है।

भारतमंत्रीकी सभाके सभापति तथा दूसरे कई मातबर सभासदोंने इशारेसे कई बार कहा है कि यदि केवल भारतवर्षका ही नहीं बल्कि सारे साम्राज्यका ध्यान रखकर कोई कानून बनाया जायगा तो केवल स्थानीय न्याय और अन्यायका विचार करनेसे काम न चलेगा और

यदि ऐसे न्याय और अन्यायका विचार किया जायगा तो वह विचार ठहरेगा भी नहीं। परन्तु लंकाशायर कोई स्वप्नकी चीज नहीं है। भारतवर्षका दुःख जिस प्रकार सत्य है लंकाशायरका लाभ भी ठीक उसी प्रकार सत्य है, बल्कि लंकाशायरके लाभका बल कुछ अधिक ही है! मान लो कि हमने भारतमंत्रीकी सभामें लंकाशायरवालोंके हानि-लाभका ध्यान छोड़कर कोई कानून पास कर लिया, लेकिन लंकाशायरवाले हमें क्यों छोड़ने लगे? बाबाजी तो कमलीको भले ही छोड़ दें लेकिन कमली ही बाबाजीको नहीं छोड़ती और फिर विशेषतः इस कमलीमें तो बहुत अधिक जोर है।

यदि चारों ओरकी अवस्थाओंकी उपेक्षा करके चटपट कोई कानून पास कर दिया जाय और फिर अन्तमें विवश होकर उसी कानूनको रद करना पड़े तो इसमें प्रतिष्ठा भी नहीं रह जाती और फिर इस ओरकी कैफियत भी कुछ वैसी सुविधाजनक नहीं है। नवाबोंकी तरह यह नहीं कहा जा सकता कि यदि हमें किसी बातकी कमी होगी तो हमारा जिस तरह जी चाहेगा उस तरह हम उसकी पूर्ति कर लेंगे। और दूसरी ओर न्यायबुद्धिसे जो कुछ कहा जाता है उसे सम्पन्न करनेमें भी बहुतसे ऐसे विघ्न पड़ते हैं जो किसी प्रकार दूर ही नहीं किए जा सकते। और फिर सबसे बढ़कर शोचनीय बात तो यह है कि सर्व साधारणके निकट अपनी यह संकटपूर्ण अवस्था बतलानेमें भी लज्जा जान पड़ती है।

ऐसे ही समयपर जब हम लोग देशी सभाओं और देशी समाचारपत्रोंमें उपद्रव करना आरम्भ कर देते हैं तब साहब लोग बीच बीचमें हम लोगोंको दंड देते हैं और गवर्नमेन्ट चाहे भले ही हम लोगोंपर हाथ छोड़नेमें कुछ संकोच करे लेकिन छोटे छोटे कर्मचारी जब किसी अवसरपर हम लोगोंको अपने हाथमें पा जाते हैं तब फिर वे हमें छोड़ना नहीं चाहते। और भारतवर्षीय अँगरेजोंके बड़े बड़े समाचार-

पत्र सिकड़ोंमें बँधे हुए कुत्तोंकी तरह दाँत निकालकर हम लोगोंपर बराबर भूँकते रहते हैं। अच्छा तो लो हम ही चुप हो जाते हैं, लेकिन देखें तो सही जरा तुम लोग भी चुप हो जाओ। तुम लोगोंमेंसे जो अपने स्वार्थकी उपेक्षा करके हाथमें धर्मका झंडा लेकर खड़े होते हैं उन्हें देशनिकालेका दण्ड दो और तुम लोगोंकी जातीय प्रकृतिमें न्यायपरताका जो आदर्श है उसे ठट्ठेमें उड़ाकर म्लान कर दो।

लेकिन यह बात किसी प्रकार हो ही नहीं सकती। तुम लोगोंकी राजनीतिमें धर्मबुद्धि सचमुच कोई चीज है। कभी तो उस धर्मबुद्धिकी जीत हो जाती है और कभी उसकी हार हो जाती है। लेकिन उस धर्मबुद्धिको छोड़कर कोई काम नहीं किया जा सकता। आयर्लैण्ड जिस समय ब्रिटानियासे किसी अधिकारकी प्रार्थना करता है तब वह जिस प्रकार एक ओर खूनकी छुरीपर सान देता रहता है उसी प्रकार दूसरी ओर इंग्लैण्डकी धर्मबुद्धिको भी अपनी ओर मिलानेकी चेष्टा करता रहता है। भारतवर्ष जिस समय अपने विदेशी स्वामीके द्वारपर जाकर अपना दुःख निवेदन करनेका साहस करता है तब वह भी अँगरेजोंकी धर्मबुद्धिसे अपनी सहायता करानेके लिये व्यग्र हो उठता है और बीचमें अँगरेजोंके राजकार्य्यमें बहुतसी झंझटें बढ़ जाती हैं।

लेकिन जब तक अँगरेजोंके स्वभावपर इस सचेतन धर्मबुद्धिका कुछ भी प्रभाव रहेगा, जबतक उन्हींके शरीरके अन्दर उनके निजके अच्छे और बुरे कार्य्योंका विचार करनेवाला वर्त्तमान रहेगा, तबतक हमारी सभा-समितियाँ बराबर बढ़ती ही जायँगी और हमारे समाचार-पत्रोंका भी प्रचार होता रहेगा। इससे हम लोगोंके बलवान् अँगरेज लोग व्यर्थ कुढ़कर जितने ही अधीर होंगे हमारे उत्साह और उद्यमकी आवश्यकता भी बराबर उतनी ही बढ़ती जायगी।

अपमानका प्रतिकार ।

एक बार किसी ऊँचे पदपर काम करनेवाले बंगाली सरकारी कर्मचारीके घर किसी कालेजके अँगरेज प्रिंसिपल साहब निमंत्रित होकर गए थे। उन दिनों जूरीकी प्रथा उठा देनेके लिये एक बिल पेश होनेवाला था और उसी बिलके सम्बन्धमें सारे देशमें आन्दोलन हो रहा था। भोजनके उपरान्त जब निमंत्रित स्त्रियाँ उठकर बगलवाले कमरेमें चली गईं तब बातों ही बातोंमें जूरीकी प्रथाकी चर्चा उठी। अँगरेज प्रोफेसरने कहा कि जिस देशके लोग अर्द्धसभ्य और अर्द्धशिक्षित हों और जिनकी धर्मनीतिका आदर्श उन्नत न हो उनके हाथमें जूरीके अधिकार सौंपनेका फल सदा बुरा ही होता है।

यह बात सुनकर हमने मनमें सोचा कि अँगरेज इतने अधिक सभ्य हो गए हैं कि हम लोगोंके साथ व्यवहार करते समय सभ्यताका ध्यान रखना अनावश्यक समझते हैं। हम यह तो नहीं जानते कि हम लोगोंका नैतिक आदर्श कहाँतक ऊपर उठा है अथवा कहाँतक नीचे गिरा है; लेकिन इतना अवश्य जानते हैं कि हम जिसका आतिथ्य भोग करते हों उसकी जातिके लोगोंके विषयमें कठोर वाक्य कहते हुए उनकी अवमानना करना हम लोगोंकी शिष्टनीतिके आदर्शके बहुत बाहर है।

अध्यापक महाशयने और भी एक बात कही थी। वह बात केवल कड़वी और भद्दी ही नहीं बल्कि ऐसी थी कि अँगरेजोंके मुँहसे उसका निकलना बहुत ही असंगत जान पड़ता था। उन्होंने कहा था

कि जीवनकी पवित्रता अर्थात् जीवनमें हस्तक्षेप करने (हत्या करने अथवा हत्याकी चेष्टा करने)की परम दूषणीयताके सम्बन्धमें भारतवासियोंकी धारणा अँगरेजोंके मुकाबलेमें बहुत ही परिमित और कम है। इसीलिये भारतवासी जूरियोंके मनमें किसी हत्या करनेवालेके प्रति यथोचित विद्वेष उत्पन्न नहीं होता।

जो लोग मांस खानेवाली जातिके हैं और जिन्होंने बड़े बड़े रोमाञ्चकारी हत्याकाण्ड करके पृथ्वीके दो नए आविष्कृत महादेशोंमें अपने रहनेके लिये स्थान साफ कर लिया है और जो इस समय तलवारके जोरसे तीसरे महादेशकी भी प्रच्छन्न छातीको धीरे धीरे फाड़ करके उसकी कुछ फसलको सुखसे खानेके उद्योगमें लगे हुए हैं, वे ही यदि निमन्त्रण-सभामें मजेमें और अहंकार करते हुए नैतिक आदर्शके ऊँचे दण्डपर चढ़ बैठें और उसीपरसे जीवनकी पवित्रता और प्राणहिंसाकी अकर्त्तव्यताके सम्बन्धमें अहिंसक भारतवर्षको उपदेश देने लगें तब केवल 'अहिंसा परमो धर्म्मः' इस शास्त्रवाक्यका स्मरण करके ही चुप रह जाना पड़ता है।

यह बात आजसे प्रायः दो वर्ष पहलेकी है।* सभी लोग जानते हैं कि इस घटनाके बाद अबतक इन दो वर्षोंमें अँगरेजोंके हाथों बहुतसे भारतवासियोंकी अपमृत्यु हुई है और अँगरेजी अदालतोंमें इन सब हत्याओंमें एक अँगरेजका भी दोष प्रमाणित नहीं हुआ। समाचारपत्रोंमें इस सम्बन्धमें बराबर समाचार देखनेमें आते हैं और जब कोई ऐसा समाचार देखनेमें आता है तब हमें भारतवासियोंके प्रति उसी मुँड़ी हुई मोछ और दाढ़ी तथा लम्बी नाकवाले अध्यापककी

---

* यह निबंध सन् १३०१ फसलीमें अर्थात् आजसे प्रायः २५ वर्ष पहले लिखा गया था।—अनुवादक।

तीव्र घृणायुक्त बात और जीवनहत्याके सम्बन्धमें उसके नैतिक आदर्शकी श्रेष्ठताका अभिमान याद आ जाता है। पर इस बातको याद करके हमारे हृदयको कुछ भी शान्ति नहीं मिलती।

भारतवासियोंके प्राण और अँगरेजोंके प्राण फाँसीवाली लकड़ीके अटल तराजूपर रखकर एक ही बाँटसे तौले जाते हैं, जान पड़ता है कि अँगरेज लोग इसे मन ही मन राजनैतिक कुदृष्टान्त स्वरूप समझते हैं।

अँगरेज लोग अपने मनमें यह बात समझ सकते हैं कि हम थोड़ेसे प्रवासी जो पचीस करोड़ विदेशियोंपर शासन कर रहे हैं सो यह शासन किसके बलसे हो रहा है? केवल अस्त्रके ही बलसे नहीं बल्कि नामके बलसे भी। इसीलिये सदा विदेशियोंके मनमें इस बातकी धारणा बनाए रखना आवश्यक है कि तुम लोगोंकी अपेक्षा हम पचीस करोड़ गुना अधिक श्रेष्ठ हैं। यदि हम इस धारणाका लेश मात्र भी उत्पन्न होने दें कि हम और तुम बराबर हैं तो इससे हमारा बल नष्ट होता है। दोनोंके बीचमें एक बहुत बड़ा परदा है। अधीन जातिके मनमें कुछ अनिर्दिष्ट आशंका और अकारण भय सैकड़ों हजारों सैनिकोंका काम करता है। भारतवासी जब यह देखते हैं कि आजतक न्यायालयमें हमारे प्राणोंके बदलेमें कभी किसी अँगरेजको प्राणत्याग नहीं करना पड़ा तब उनका वह सम्भ्रम और भी दृढ हो जाता है। वे मनमें समझते हैं कि हमारे प्राणों और किसी अँगरेजके प्राणोंमें बहुत अंतर है और इसीलिये असह्य अपमान अथवा नितान्त आत्मरक्षाके अवसरपर भी किसी अँगरेजके शरीरपर हाथ छोड़नेमें उन्हें बहुत आगा-पीछा करना पड़ता है।

यह बात जोर देकर कहना कठिन है कि अँगरेजोंके मनमें इस पालिसीका ध्यान स्पष्ट अथवा अस्पष्ट रूपसे है या नहीं। लेकिन इस बातका

बहुत कुछ निश्चयपूर्वक अनुमान किया जा सकता है कि वे अपने मन ही मन अपने जातिभाइयोंके प्राणोंकी पवित्रता बहुत अधिक समझते हैं। यदि कोई अँगरेज किसी भारतवासीकी हत्या कर डाले तो अवश्य ही वह इस हत्यासे बहुत दुखी होता है। उसे वह अपने मनमें एक 'ग्रेट मिस्टेक' (बहुत बड़ी भूल) यहाँतक कि 'ग्रेट शेम' (बहुत लज्जाकी बात) की बात भी समझ सकता है। लेकिन इसके बदलेमें दंडस्वरूप किसी युरोपियनके प्राण लेना कभी समुचित नहीं समझा जाता। यदि कानूनमें फाँसीकी अपेक्षा कोई और छोटा दंड निर्दिष्ट होता तो भारतवासीकी हत्याके अपराधमें अँगरेजको दंड मिलनेकी बहुत अधिक संभावना होती। जिस जातिको अपनी अपेक्षा बहुत अधिक निकृष्ट समझा जाता हो उस जातिके सम्बन्धमें कानूनकी धाराओंमें पक्षपातहीनताका विधान भले ही हुआ करे लेकिन हाकिमके अन्त:करणमें पक्षपातहीनताके भावका रक्षित रहना कठिन हो जाता है। उस अवसरपर प्रमाणकी साधारण त्रुटि, गवाहकी सामान्य भूल और कानूनकी भाषाका तिलमात्र छिद्र भी स्वभावत: बढ़कर इतना बड़ा हो जाता है कि अँगरेज अपराधी अनायास ही उसमेंसे निकलकर बाहर जा सकता है।

हमारे देशके लोगोंकी पर्यवेक्षण शक्ति और घटना-स्मृति वैसी अच्छी और प्रबल नहीं है। हमें अपना यह दोष स्वीकृत करना ही पड़ेगा कि हम लोगोंके स्वभावमें मानसिक शिथिलता और कल्पनाकी उच्छृंखलता है। यदि हम किसी घटनाके समय ठीक उसी जगह उपस्थित रहें तो भी आदिसे अन्ततक उस घटनाकी सारी बातें क्रमानुसार हमें याद नहीं रह सकतीं। इसीलिये हम लोगोंके वर्णनमें असंगति और संशय रहा करता है और भयके कारण अथवा

तर्कके सामने परिचित सत्य घटनाका सूत्र भी हम खा बैठते हैं। इसी लिये हम लोगोंके गवाहोंके सच और झूठका सूक्ष्मरूपसे निर्धारण करना विदेशी विचारकोंके लिये सदा ही कठिन होता है। और तिसपर अभियुक्त जब उन्हींके देशका होता है तब यह कठिनता सौगुनी बल्कि हजार गुनी हो जाती है। और फिर विशेषत: जब स्वभावसे ही अँगरेजोंके सामने कम पहननेवाले, कम खानेवाले, कम प्रतिष्ठावाले और कम बलवाले भारतवासीके 'प्राणकी पवित्रता' उनके देशभाइयोंके मुकाबलेमें बहुत ही कम और परिमित होती है तब भारतवासियोंके लिये यथोचित प्रमाण संग्रह करना एक प्रकारसे बिलकुल असंभव हो जाता है। इस तरह एक तो हम लोगोंके गवाह ही दुर्बल होते हैं और फिर हमारे तिल्ली आदि शरीर-यंत्र बहुत कुछ त्रुटिपूर्ण बतलाये जाते हैं, इस लिये हम लोग बहुत ही सहजमें मर भी जाते हैं और इस संबंधमें न्यायालयसे उचित विचार कराना भी हम लोगोंके लिये दुस्साध्य होता है।

लज्जा और दु:खके साथ हमें इन सब दुर्बलताओंको स्वीकृत करना पड़ता है, लेकिन उसके साथ ही साथ इस सत्य बातको भी प्रकाशित कर देना उचित जान पड़ता है कि इस प्रकारकी घटनाओंके लगातार होनेके कारण इस देशके लोगोंका चित्त बहुत अधिक क्षुब्ध होता जाता है। साधारण लोग कानून और प्रमाणोंका सूक्ष्म विचार नहीं कर सकते। यह बात बार बार और बहुत ही थोड़े थोड़े समयपर देखनेमें आती है कि भारतवासीकी हत्या करनेपर कभी किसी अँगरेजको प्राणदण्ड नहीं दिया जाता और इस बातको देखते तथा समझते हुए भारतवासियोंके मनमें अँगरेजोंकी निष्पक्ष न्यायपरताके सम्बन्धमें बहुत बड़ा सन्देह उत्पन्न होता है।

हम साधारण मनुष्योंकी मूढ़ताको क्यों दोष दें, स्वयं सरकार ही उपयुक्त और अनुरूप अवसर पाकर क्या करती है? जब सरकार देखती है कि कोई डिपुटी मजिस्ट्रेट अधिकांश असामियोंको छोड़ देता है तब गवर्नमेण्ट यह नहीं सोचती कि संभवतः यह डिपुटी मजिस्ट्रेट दूसरे मजिस्ट्रेटोंकी अपेक्षा अधिकतर न्यायशील है, इसी लिये यह गवाहोंके सच और झूठका बिना सूक्ष्म रूपसे और पूरा पूरा निर्णय किए असामीको दंड देनेमें संकोच करता है। अतः इसकी इस सचेतन धर्मबुद्धि और सतर्क न्यायपरताके लिये जल्दी ही इसकी पदवृद्धि कर देना कर्त्तव्य है। अथवा यदि सरकार देखती है कि किसी पुलिस कर्मचारीके इलाकेमें जितने अपराध होते हैं उनकी अपेक्षा बहुत कम अपराधी पकड़े जाते हैं अथवा वह यह देखती है कि चलान किए हुए असामियोंमेंसे बहुतसे असामी छूट जाते हैं, तब वह अपने मनमें यह नहीं सोचती कि संभवतः यह पुलिस कर्मचारी दूसरे पुलिस कर्मचारियोंकी अपेक्षा अधिक सत्प्रकृतिका मनुष्य है। यह भले आदमियोंका चोरीमें चलान नहीं करता अथवा स्वयं झूठी गवाहियाँ तैयार करके मुकदमेंकी सब कमजोरियोंको दूर नहीं कर देता, अतः पुरस्कार स्वरूप जल्दी ही इसके ग्रेडकी वृद्धि कर देना उचित है। हमने जो इन दो आनुमानिक दृष्टान्तोंका उल्लेख किया है ये दोनों ही संभवतः न्याय और धर्मकी ओर ही अधिक हैं। लेकिन यह बात किसीसे छिपी नहीं है कि सरकारके हाथों इस प्रकारके अभागे भले आदमियोंका कभी सम्मान या तरक्की नहीं होती।

सर्वसाधारण भी सरकारकी अपेक्षा अधिक सूक्ष्मबुद्धिवाले नहीं हैं। वे भी खूब मोटे हिसाबसे हर एक बातका विचार करते हैं। वे कहते हैं कि हम इतने आईन कानून और गवाह-सबूत कुछ नहीं समझते।

भला यह कैसी बात है कि किसी भारतवासीकी हत्याके अपराधमें आजतक एक अँगरेजको भी उपयुक्त दण्ड नहीं मिला!

यदि बार बार चोट लगनेके कारण साधारंण प्रजाके हृदयमें कोई भारी घाव हो गया हो तो उस घावको चुपचाप छिपा रखना राज-भक्ति नहीं है। इसीलिये हम लोगोंकी तरफसे बाबू कहलानेवाले लोग इन सब बातोंको प्रकट रूपसे कह देना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं। हम लोग भारतवर्षको चलानेवाले भाफके इंजिनमें लगे हुए ताप-मानयंत्र मात्र हैं। हम लोगोंकी निजकी कोई शक्ति नहीं है। हम लोग लोहेके छोटे और बड़े विचित्र चक्करोंको चलानेकी कोई शक्ति नहीं रखते। केवल वैज्ञानिक गूढ नियमके अनुसार समय समयपर हम लोगोंका चंचल पारा अचानक ऊपरकी ओर चढ़ जाता है, लेकिन इसके लिये इंजीनियरका यह कर्त्तव्य नहीं है कि वह हमसे नाराज हो जाय। अगर वह धीरेसे एक भी मुक्का मार दे तो यह क्षुद्र क्षणभंगुर पदार्थ टूट जाय और इसका सारा पारा इधर उधर छितराकर नष्ट हो जाय। लेकिन इंजिनके बायलरमें जो ताप होता है उसके परिमाणका निर्णय करना यंत्र चलानेके कामका एक प्रधान अंग है। अँगरेज लोग प्राय: उग्रमूर्ति धारण करके कहा करते हैं कि सर्व साधारणके नाम-पर अपना परिचय देने और बोलनेवाले तुम कौन होते हो? तुम लोग तो हमारे ही स्कूलोंसे निकले हुए थोड़ेसे बातें बनानेवाले अँगरेजीदाँ हो न?

सरकार, हम लोग कोई नहीं हैं। लेकिन तुम्हारी बेढब विरक्ति और क्रोधके कारण हम अनुमान करते हैं कि हम लोगोंको तुम बहुत ही सामान्य नहीं समझते और फिर हमें सामान्य समझना तुम्हारे लिये उचित भी नहीं है। यद्यपि हम शिक्षित लोग संख्यामें बहुत ही थोड़े हैं तौ भी विच्छिन्न-समाज भारतवर्षमें केवल शिक्षित सम्प्रदायमें

ही कुछ शिक्षा और हृदयकी एकता है और यही शिक्षित लोग ही भारतवासियोंके हृदयकी वेदना स्पष्ट रूपसे प्रकट कर सकते हैं और अनेक उपायोंसे उस वेदनाको संचारित भी कर सकते हैं। सरकारकी राजनीतिका यह एक प्रधान अंग होना चाहिए कि वह बराबर मनोयोगपूर्वक इस बातकी आलोचना करती रहे कि इस शिक्षित सम्प्रदायके हृदयपर कब और किस प्रकारका आघात, अभिघात होता है। लक्षणोंसे जहाँतक माळूम होता है वहाँतक यही पता चलता है कि सरकार इस विषयमें बिलकुल उदासीन नहीं है।

हम जिस घटनाकी आलोचना कर रहे हैं वह दो कारणोंसे हमारे हृदयपर चोट पहुँचाती है। पहला कारण यह है कि जब कभी अत्याचारकी कोई बात सुनाई पड़ती है तब उस अत्याचारके लिये उपयुक्त दण्डकी आशासे चित्त व्यग्र हो जाता है और चाहे जिस लिये हो लेकिन जब अपराधी दण्डसे बच जाता है तब हृदय बहुत क्षुब्ध होता है। दूसरा कारण यह है कि इन सब घटनाओंसे यह पता चलता है कि हम लोगोंका बहुत बड़ा जातीय अपमान हुआ है, इसलिये हम लोग बहुत मर्माहत होते हैं।

अपराधीका छूट जाना भले ही बुरा हो लेकिन अदृष्टवादी भारतवर्ष न्यायालयके विचारके सामने कुछ भी असंभव नहीं समझता। कानून इतना जटिल है, गवाहियाँ इतनी फिसल जानेवाली हैं और ममत्वहीन अवज्ञाकारी विदेशियोंके लिये इस देशके लोगोंका चरित्रज्ञान इतना दुर्लभ है कि मुकदमा, जिसका परिणाम बहुत अनिश्चित होता है, बिलकुल जूएके खेलकी तरह जान पड़ता है। इसीलिये जिस प्रकार जूएके खेलमें एक प्रकारका मोहकारी उत्तेजन होता है उसी प्रकार हमारे देशमें बहुतसे लोगोंको मुकदमेबाजीका एक नशासा हो जाता है। इसलिये

जब कि सर्वसाधारणको इस प्रकारकी एक धारणा हो गई है कि मुकदमेका परिणाम बिलकुल अनिश्चित होता है और जब इस विषयमें उस अनिश्चिततासे उत्पन्न हुआ हम लोगोंका स्वभावदोष भी बहुत कुछ उत्तरदायी है तब बीच बीचमें निर्दोषका पीड़न और दोषीका छुटकारा शोचनीय परन्तु अवश्यम्भावी माऌम होता है।

लेकिन जब बार बार यही देखा जाता है कि युरोपीय अपराधी छूट जाते हैं और इस सम्बन्धमें शासक लोग बिलकुल उदासीन रहते हैं तब इससे यही पता चलता है कि अँगरेज लोग भारतवासियोंके साथ हृदयसे लापरवाहीका व्यवहार करते हैं। इसी अपमानका धिक्कार हृदयमें काँटेकी तरह स्थायी रूपसे चुभा रहता है।

यदि इससे बिलकुल उलटी घटनायें होतीं, यदि थोड़े ही समयमें भारतवासियोंके द्वारा बहुतसे युरोपियन मारे जाते और विचार होनेपर प्रत्येक अभियुक्त छूट जाता तो इस प्रकारकी दुर्घटनाओंकी सारी संभावना नष्ट करनेके लिये हजारों तरहके उपाय सोचे जाते। लेकिन जब प्राच्य भारतवासी व्यर्थ गोलियाँ और लाठियाँ खाकर मरते हैं तब पाश्चात्य शासकोंमें किसी प्रकारकी दुर्भावनाके लक्षण नहीं दिखाई देते। यह भी नहीं सुननेमें आता कि कहीं इस प्रकारका कोई प्रश्न उठा है कि ये सब उपद्रव किस प्रकार दूर किए जा सकते हैं?

लेकिन हम लोगोंके प्रति शासकोंकी जो यह अवज्ञा है, उसके लिये प्रधानतः हम ही लोग धिक्कारके योग्य हैं क्योंकि हम लोगोंको यह बात किसी प्रकार भूल न जानी चाहिए कि सम्मान कभी कानूनकी सहायतासे प्राप्त नहीं किया जा सकता। सम्मान सदा अपने हाथमें ही होता है। हम लोगोंने जिस प्रकार गिड़गिड़ा कर अदा-

लतोंमें फरियाद करना आरम्भ किया है उससे हम लोगोंकी आत्म-मर्य्यादा बहुत ही घटती जा रही है।

उदाहरणके लिये हम उस घटनाका उल्लेख कर सकते हैं जिसमें खुलनाके मजिस्ट्रेटने अपने मुहर्रिरको मारा था। लेकिन यह बात पहलेसे ही बतला देना आवश्यक है कि डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट बेल साहब बहुत ही दयालु उन्नत विचारके और सहृदय मनुष्य हैं और उनमें भारतवासियोंके प्रति उदासीनता या अवज्ञा नहीं है। हमारा विश्वास है कि उन्होंने जो मुहर्रिरको मारा था उससे केवल दुर्द्धर्ष अँगरेजोंके स्वभावकी हठकारिता ही प्रकट होती है बंगालियोंके प्रति घृणा नहीं। जिस समय जठरानल प्रज्वलित होता है उस समय बहुत ही साधारण कारणसे भी क्रोधानल भड़क उठता है। यह बात भारतवासियोंमें भी होती है और अँगरेजोंमें भी, इस लिये इस घटनाके सम्बन्धमें विजातिद्वेषका प्रश्न उठाना उचित नहीं है।

लेकिन वादीकी ओरके बंगाली बैरिस्टर महाशयने इस मुकदमेके समय कई बार कहा था कि मुहर्रिरोंको मारना अँगरेजोंके लिये उचित नहीं है। क्योंकि बेल साहब यह बात जानते थे अथवा उन्हें यह जानना चाहिए था कि मुहर्रिर उलटकर हमें मार नहीं सकता है।

यदि यह बात सच हो तो यथार्थ लज्जा उसी मुहर्रिर और उस मुहर्रिरकी जातिके लोगोंको होनी चाहिए। क्योंकि अचानक क्रोधमें आकर किसीको मार बैठना मनुष्यकी दुर्बलता है। लेकिन मार खाकर बिना उसका बदला चुकाए रोने लगना कायरकी दुर्बलता है। हम यह बात कह सकते हैं कि मुहर्रिर यदि उलटकर बेल साहबको मार बैठता तो सच्चे अँगरेजकी तरह वे भी मन ही मन उसपर श्रद्धा करते। हमें सचाईसे और प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृत करना चाहिए कि यह बात

बिलकुल ध्रुव है कि बहुत अधिक अपमानित होने पर भी एक मुहर्रिर किसी अँगरेजको उलट कर मार नहीं सकता और हमारी समझमें केवल इसीलिये अँगरेजोंको अधिक दोषी ठहराना बहुत ही अनावश्यक और लज्जाजनक है।

इस बातकी ओर हम लोगोंका ध्यान रखना उचित हो सकता है कि मार खानेवाले मुहर्रिरको कानूनके अनुसार जो कुछ प्रतिकार मिल सकता हो उस प्रतिकारसे वह तनिक भी वंचित न हो, लेकिन हमें इस बातका कोई कारण नहीं दिखलाई देता कि जब वह मार खाकर और अपमानित होकर रोता गाता है तब सारे देशके लोग मिलकर खूब हो-हल्ला करें और केवल विदेशीको ही गाली गलौज दें। बेल साहबका व्यवहार प्रशंसनीय नहीं था। लेकिन मुहर्रिर और उसके पास रहनेवाले दूसरे आदमियोंका आचरण भी हेय था और खुलनाके बंगाली डिपुटी मजिस्ट्रेटके आचरणने तो हीनता और अन्यायको एकत्र मिलाकर सबसे अधिक बीभत्सपूर्ण कर दिया है।

थोड़े ही दिन हुए इसी प्रकारकी एक घटना पबनामें हुई थी। वहाँ म्युनिसिपैलिटीके घाटपरके एक ब्राह्मण कर्मचारीने पुलिसके साहबके पंखाकुलीसे वाजिब महसूल लेना चाहा था, इसपर पुलिसके साहबने उस ब्राह्मण कर्मचारीको अपने घर ले जाकर उसकी बहुत अधिक दुर्दशा की। बंगाली मजिस्ट्रेटने उस अपराधी अँगरेजको तो बिना किसी प्रकारका दंड दिए ही केवल सचेत करके छोड़ दिया परन्तु जब उस पंखाकुलीने उक्त ब्राह्मणके नाम दंगा करनेकी नालिश की तब ब्राह्मणको बिना जुरमाना किए न छोड़ा!

जिस कारणसे बंगाली मजिस्ट्रेटने प्रबल अँगरेज अपराधीको केवल सचेत करके छोड़ दिया और असमर्थ बंगाली अभियुक्तका जुर-

माना कर दिया वही कारण हम लोगोंकी जातिकी नसनसमें घुसा हुआ है। हम स्वयं ही अपने हाथों अपनी जातिके लोगोंका जो सम्मान करना नहीं जानते, हम लोग आशा करते हैं कि अँगरेज हम लोगोंका वही सम्मान आपसे आप करेंगे !

एक भारतवासी जब चुपचाप मार खाता है और दूसरा भारतवासी उस दृश्यको कुतूहलपूर्वक देखता है और जब बिना किसी प्रकारकी लज्जाके भारतवासी यह बात स्वीकृत करते हैं कि किसी भारतवासीके हाथसे इस अपमानके प्रतिकारकी आशा नहीं की जा सकती, तब यही समझना चाहिए कि अँगरेजोंके द्वारा हत और आहत होनेका मूल और प्रधान कारण स्वयं हम लोगोंके स्वभावमें ही है और इस कारणको सरकार किसी प्रकारके कानून अथवा विचारके द्वारा कभी दूर नहीं कर सकती।

हम लोग जब यह सुनते हैं कि किसी अँगरेजने एक भारतवासीका अपमान किया है तब चट आक्षेप करते हुए कह बैठते हैं कि वह अँगरेज किसी दूसरे अँगरेजके ही साथ कभी ऐसा व्यवहार न करता। खैर, यह मान लिया कि वह किसी दूसरे अँगरेजके साथ ऐसा व्यवहार न करता लेकिन अँगरेजके ऊपर क्रोध करनेकी अपेक्षा यदि हम स्वयं अपने ही ऊपर क्रोध करें तो इससे कुछ अधिक फल हो सकता है। जिन जिन कारणोंसे एक अँगरेज सहसा किसी दूसरे अँगरेजपर हाथ छोड़नेका साहस नहीं करता यदि वे ही सब कारण उसे हमपर हाथ छोड़ते समय नजर आने लगें तो हमारे साथ भी वैसा ही अनुकूल आचरण हो और हम लोगोंको इस प्रकार गिड़गिड़ाकर रोना गाना न पड़े।

पहले तो हमें अच्छी तरह यही देखना चाहिए कि एक भारतवासीके साथ दूसरा भारतवासी कैसा व्यवहार करता है। क्योंकि हम

लोगोंकी सारी शिक्षा इसीपर निर्भर है। क्या हम लोग अपने नौकरोंको नहीं मारते? क्या हम लोग अपने अधीनस्थ लोगोंके साथ उद्दंडताका व्यवहार नहीं करते और निम्नश्रेणीके लोगोंके प्रति सदा असम्मान प्रकट नहीं करते? हम लोगोंका समाज जगह जगह उच्च और नीचमें विभक्त है। जो व्यक्ति कुछ भी उच्च होता है वह नीच जातिवाले व्यक्तिसे अपरिमित अधीनताकी आशा करता है। यदि कोई निम्नवर्त्ती मनुष्य तनिक भी स्वतंत्रता प्रकट करता है तो ऊपरवालोंको उसका वह स्वतंत्रता प्रकट करना असह्य जान पड़ता है। भले आदमी तो यही समझते हैं कि देहाती और गँवार किसान मनुष्योंमें गिने जानेके योग्य ही नहीं हैं। यदि किसी सशक्त मनुष्यके सामने कोई अशक्त मनुष्य पूरी तरहसे दबकर न रहे तो उसे जबरदस्ती अच्छी तरह दबा देनेकी चेष्टा की जाती है। यह तो बराबर देखा ही जाता है कि चौकीदारके ऊपर कान्स्टेबुल और कान्स्टेबुलके ऊपर दारोगा केवल सरकारी काम ही नहीं लेते, वे केवल अपने उच्चतर पदका उचित सम्मान प्राप्त करके ही सन्तुष्ट नहीं होते बल्कि उसके साथ साथ अपने अधीनस्थ कर्मचारियोंसे गुलामी करानेका भी दावा रखते हैं। चौकीदारके लिये कान्स्टेबुल एक यथेच्छाचारी राजा होता है और कान्स्टेबुलके लिये दारोगा भी वैसा ही अत्याचारी राजा होता है। इस प्रकार हमारे समाजमें सभी जगह छोटोंको बड़े लोग जिस प्रकार अपने नीचे दबाए रखना चाहते हैं उसकी कोई सीमा ही नहीं है। समाजमें जगह जगह प्रभुत्वका भार पड़ा हुआ है जिससे हमारी नसनसमें दासत्व और भय घुसा रहता है। जन्मसे हम लोगोंका जो नियत अभ्यास होता है वह हम लोगोंको अन्धबाध्यताके लिये पूरी तरहसे तैयार कर रखता है। उसीसे हम लोग अपने अधीनस्थ लोगोंके प्रति

अत्याचारी, अपनी बराबरीके लोगोंके प्रति ईर्ष्यान्वित और ऊपरवाले लोगोंके सामने बिके हुए गुलाम बनना सीखते हैं। हम लोगोंकी हर-दमकी उसी शिक्षामें हम लोगोंके सारे व्यक्तिगत और जातीय अप-मानोंका मूल छिपा हुआ है। गुरुके प्रति भक्ति करके, प्रभुकी सेवा करके और अन्य मान्य लोगोंका यथोचित सम्मान करके भी मनुष्यमात्रमें जो एक मनुष्योचित आत्ममर्यादा रहनी चाहिए उसकी रक्षा की जा सकती है। लेकिन यदि हमारे गुरु, हमारे प्रभु, हमारे राजा या हमारे मान्य लोग उस आत्ममर्य्यादाका भी अपहरण कर लें तो उससे मनुष्यत्वमें बड़ा भारी हस्तक्षेप होता है। इन्हीं सब कारणोंसे हम लोग सचमुच ही मनुष्यत्वसे बिलकुल हीन हो गए हैं और इन्हीं कारणोंसे एक अँगरेज दूसरे अँगरेजके साथ जैसा व्यवहार करता है उस प्रकार वह हमारे साथ व्यवहार नहीं करता।

घर और समाजकी शिक्षासे जब हम उस मनुष्यत्वका उपार्जन कर सकेंगे तभी अँगरेज हम लोगोंके प्रति श्रद्धा करनेको बाध्य होंगे और हमारा अपमान करनेका साहस न करेंगे। अँगरेज सरकारसे हम लोग बहुत कुछ आशा कर सकते हैं लेकिन स्वाभाविक नियमको बद-लना उसके लिये भी सम्भव नहीं है। और संसारका यह एक स्वाभा-विक नियम है कि हीनताके प्रति आघात और अवमानना होती ही है।

सुविचारका अधिकार।

समाचारपत्रोंके पाठकोंको यह बात माॡम है कि थोड़े ही दिन हुए, सितारा जिलेके बाई नामक नगरमें तेरह भले आदमी हिन्दू जेल भेजे गए थे। उन लोगोंने कोई अपराध किया होगा और कानूनके अनुसार भी सम्भव है कि वे दण्ड पानेके योग्य हों, किन्तु इस घटनासे समस्त हिन्दुओंके हृदयपर भारी चोट पहुँची है और इस चोट पहुँचनेका उचित कारण भी है।

उक्त नगरमें मुसलमानोंकी अपेक्षा हिंदुओंकी संख्या बहुत अधिक है और आजतक उन दोनोंमें कभी किसी विरोधके लक्षण नहीं दिखाई दिए। न्यायालयमें एक मुसलमान गवाहने भी कहा था कि यहाँ हिन्दुओंके साथ मुसलमानोंका कोई झगड़ा नहीं है—झगड़ा है हिन्दुओंके साथ सरकारका।

मजिस्ट्रेटने अकस्मात् किसी अशान्तिकी आशंकासे एक पूजाके अवसरपर हिन्दुओंको बाजा बन्द करनेकी आज्ञा दे दी। हिन्दुओंने हतबुद्धि होकर राजाज्ञा और देवसम्मान दोनोंकी रक्षा करनी चाही, पर वे दोनोंमेंसे एककी भी रक्षा न कर सके। बहुत दिनोंसे वहाँ जिस प्रकारके बाजे बजानेकी प्रथा थी उन बाजोंको बन्द करके केवल एक साधारण बाजा बजाकर उन्होंने किसी प्रकार अपना उत्सव कर लिया। यह तो माॡम नहीं कि इससे देवता संतुष्ट हुए या नहीं, पर मुसलमान लोग असन्तुष्ट नहीं हुए। लेकिन फिर भी मजिस्ट्रेटने

रुद्रमूर्ति धारण की। उन्होंने नगरके तेरह भले आदमी हिन्दुओंको जेल भेज दिया।

हाकिम बहुत जबरदस्त हैं, कानून बहुत कठिन है, और शासन बहुत कड़ा है, लेकिन इसमें सन्देह है कि इन सब बातोंसे स्थायी शान्ति हो सकती है या नहीं। जिस स्थानपर विरोध नहीं होता उस स्थानपर ऐसी बातोंसे विरोध उठ खड़ा होता है, जहाँ विद्वेषका बीज भी नहीं होता वहाँ विद्वेषके अंकुर और पल्लव निकल आते हैं। प्रबल प्रतापसे यदि शान्ति स्थापित करनेका प्रयत्न किया जाय तो उससे अशान्ति उठ खड़ी होती है।

यह बात सभी लोग जानते हैं कि बहुतसी असभ्य जातियोंमें और किसी प्रकारकी चिकित्सा नहीं होती केवल भूतों और प्रेतोंकी झाड़-फूँक होती है। वे लोग गरज गरजकर नाचते हैं और रोगीको धरपकड़कर प्रलय उपस्थित कर देते हैं। यदि अँगरेज लोग हिन्दुओं और मुसलमानोंके विरोधरूपी रोगकी उसी आदिम प्रणालीसे चिकित्सा करना आरम्भ कर दें तो उससे रोगीकी मृत्युतक हो सकती है, परन्तु रोगके शमनकी कोई सम्भावना नहीं हो सकती। और फिर ओझा लोग जिस भूतको झाड़कर उतार लाते हैं उस भूतको शान्त करना बहुत कठिन हो जाता है।

बहुतसे हिन्दुओंका यह विश्वास है कि सरकारका आन्तरिक अभि-प्राय यह नहीं है कि विरोध मिटा दिया जाय। सरकार केवल इसी लिये दोनों सम्प्रदायोंमें धार्मिक विद्वेष बनाए रखना चाहती है कि जिसमें पीछेसे कांग्रेस आदिकी चेष्टासे हिन्दू और मुसलमान क्रमशः एकताके मार्गमें आगे न बढ़ने लग जायँ और वह मुसलमानोंके द्वारा

हिन्दुओंका अभिमान तोड़कर मुसलमानोंको सन्तुष्ट और हिन्दुओंको दबाए रखना चाहती है।

लेकिन लार्ड लैन्सडाउनसे लेकर लार्ड हैरिस तक सभी लोग कहते हैं कि जो व्यक्ति ऐसी बात मुँहपर लावे वह पाखण्डी और झूठा है। अँगरेज सरकार हिन्दुओंकी अपेक्षा मुसलमानोंके प्रति अधिक पक्षपात प्रकट करती है इस अपवादको भी वे लोग बिलकुल निर्मूल बतलाते और इसका तिरस्कार करते हैं।

हम भी उन लोगोंकी बातोंका अविश्वास नहीं करते। कांग्रेसके प्रति सरकारकी गहरी प्रीति न हो और यह भी पूर्ण रूपसे सम्भव है कि उन लोगोंकी यह भी इच्छा हो कि मुसलमान लोग हिन्दुओंके साथ मिलकर कांग्रेसको बलवान् न कर दें, लेकिन फिर भी राज्यके दो प्रधान सम्प्रदायोंकी अनेकताको विरोधमें परिणत कर देना किसी परिणामदर्शी और विवेचक सरकारका अभिप्राय नहीं हो सकता। अनेकता बनी रहे, अच्छी बात है, लेकिन सरकारके सुशासनमें उसे शान्तमूर्ति धारण करके रहना चाहिए। सरकारके मनमें इस अभिप्रायका होना भी असम्भव नहीं है कि जिस प्रकार हमारे बारूदखानेमें बारूद शीतल होकर पड़ी रहती है और फिर भी उसकी दाहक शक्ति नष्ट नहीं हो जाती, हमारी राजनैतिक शस्त्रशालामें हिन्दुओं और मुसलमानोंका आन्तरिक असद्भाव भी उसी प्रकार शीतल भावसे रक्षित रहना चाहिए।

इसी लिये हमारी सरकार हिन्दुओं और मुसलमानोंके गाली-गलौजका दृश्य देखनेके लिये भी व्याकुलता नहीं प्रकट करती और मारपीटके दृश्यको भी सुशासनके लिये हानिकारक समझकर उससे विरक्त रहती है।

यह बात सदा देखनेमें आती है कि जब दो पक्षोंमें विरोध होता है और शान्तिभंगकी आशंका उपस्थित होती है तब मंजिस्ट्रेट सूक्ष्म विचारकी ओर नहीं जाते और दोनों ही पक्षोंको समान भावसे दबा रखनेकी चेष्टा करते हैं। क्योंकि साधारण नियम यही है कि एक हाथसे कभी ताली नहीं बजती। लेकिन हिन्दुओं और मुसलमानोंके विरोधके सम्बन्धमें सर्व साधारणका यह विश्वास दृढ हो गया है कि दमन अधिकांश हिन्दुओंका ही होता है और आश्रय अधिकांश मुसलमानोंको ही मिलता है। इस प्रकारके विश्वासके उत्पन्न हो जानेसे दोनों सम्प्रदायोंमें ईर्ष्याकी आग और भी अधिक भड़क उठती है और जिस स्थानपर कभी किसी प्रकारका विरोध नहीं होता उस स्थानपर भी शासक लोग सबसे पहले निर्मूल आशंकाकी कल्पना करके एक पक्षका बहुत दिनोंका अधिकार छीनकर दूसरे पक्षका साहस और हौसला बढ़ा देते हैं और इस प्रकार बहुत दिनोंतक चलनेवाले विरोधका बीज बो दिया जाता है।

हिन्दुओंके प्रति सरकारका किसी विशेष प्रकारका विराग न होना ही सम्भव है लेकिन केवल सरकारकी पालिसीके द्वारा ही उसका सारा काम नहीं चल सकता। प्राकृतिक नियम भी कोई चीज है। स्वर्गराज्यके पवन देवका किसी प्रकारका असाधु उद्देश्य नहीं हो सकता, लेकिन फिर भी उत्तापके नियमके अधीन होकर उनके मर्त्यराज्यके अनुचर उनचास वायु यहाँ अनेक अवसरोंपर एकाएक प्रबल आँधी चला देते हैं। हम लोग सरकारके स्वर्गलोकका ठीक ठीक हाल नहीं कह सकते, वह हाल लार्ड लैन्सडाउन और लार्ड हैरिस ही जानते हैं; किन्तु हम लोग अपनी चारों ओरकी हवामें कुछ गड़बड़ी अवश्य देखते हैं। स्वर्गधामसे 'मा भैः मा भैः' की आवाज आती है लेकिन हमलोगोंके आसपास जो देवचर लोग

हैं उनमें कुछ अधिक गरमीके लक्षण दिखाई देते हैं। मुसलमान लोग भी जानते हैं कि हमारे लिये विष्णुके दूत खड़े हुए आसरा देख रहे हैं और हम लोग भी मन ही मन काँपते हुए इस बातका अनुभव करते हैं कि हम लोगोंके लिये दरवाजेके पास हाथमें गदा लिए हुए यमके दूत बैठे हुए हैं और ऊपरसे उन यमदूतोंकी खोराकी हमें अपने पल्लेसे देनी पड़ेगी।

इस बातपर भी विश्वास नहीं होता कि हम लोग हवाकी गतिका जिस रूपमें अनुभव करते हैं वह बिलकुल ही निर्मूलक है। थोड़े ही दिन हुए स्टेट्समैन नामक समाचारपत्रमें गवर्नमेन्टके उच्च उपाधिधारी किसी श्रद्धेय अँगरेज सिविलियनने यह बात प्रकाशित कराई थी कि आजकल भारतमें रहनेवाले साधारण अँगरेजोंके मनमें हिन्दुओंके प्रति विद्वेषका कुछ भाव व्याप्त हो रहा है और मुसलमान जातिके प्रति उनमें एक आकस्मिक वात्सल्य रसका उद्रेक दिखाई देता है। यदि हमारे मुसलमान भाइयोंके लिये अँगरेजोंके स्तनोंमें दूध उतरता हो तो यह बात हमारे लिये आनन्दकी ही है, लेकिन हम लोगोंके लिये यदि केवल पित्तका ही संचार होता हो तो निष्कपट भावसे उस आनन्दको बनाए रखना कठिन हो जाता है।

यह बात नहीं है कि केवल राग या द्वेषके कारण ही पक्षपात अथवा अविचार हुआ करता हो, भयके कारण भी न्यायपरताके तराजूका काँटा बहुत कुछ काँपने लगता है। हम लोगोंको इस बातका सन्देह होता है कि अँगरेज लोग मुसलमानोंसे मन ही मन कुछ डरते हैं। इसीलिये राजदण्ड मुसलमानोंके शरीरसे छूता हुआ हिन्दुओंके ठीक सिरपर कुछ जोरके साथ गिरता है।

इसी राजनीतिको कहते हैं—"दाईको मारकर बहूको सिखाना।" यदि दाईको कुछ अन्यायपूर्वक भी मारा जाय तो वह सह लेती है।

लेकिन बहू ठहरी पराए घरकी लड़की। यदि न्यायपूर्वक भी कोई उसपर हाथ छोड़ना चाहे तो सम्भव है कि वह उसे न सहे और फिर न्याय-विचारका काम एक दमसे बन्द भी नहीं किया जा सकता। यह बात विज्ञानसम्मत है कि जहाँ बाधा बहुत ही कम होती है वहाँ यदि शक्तिका प्रयोग किया जाय तो शीघ्र ही फल प्राप्त होता है। इसलिये यदि हिन्दू मुसलमानोंके झगड़ोंमें शान्तप्रकृति, एकताके बन्धनसे रहित और कानूनी बेकानूनी सभी बातें चुपचाप सहनेवाले हिन्दुओंको दबा दिया जाय तो सहजमें ही मीमांसा हो जाती है। हम यह नहीं कहते कि गवर्नमेन्टकी पालिसी ही यही है। लेकिन इतना अवश्य है कि कार्य्यविधि स्वभावतः और यहाँतक कि अज्ञानतः भी इसी पथका अवलम्बन कर सकती है। यह बात ठीक उसी प्रकार हो सकती है जिस प्रकार नदीका स्रोत कड़ी मिट्टीको छोड़कर आपसे आप ही मुलायम मिट्टीको काटता हुआ चला जाता है।

इस लिये, चाहे गवर्नमेन्टकी हजार दोहाई दी जाय लेकिन हम इस बातपर विश्वास नहीं करते कि सरकार इसका कुछ प्रतिकार कर सकती है। हम लोग कांग्रेसमें सम्मिलित होते हैं, विलायतमें आन्दोलन करते हैं, अखबारोंमें प्रबन्ध लिखते हैं, भारतवर्षके बड़ेसे लेकर छोटे सभी अँगरेज कर्मचारियोंके कामकी स्वाधीनतापूर्वक समालोचना करते हैं, बहुतसे अवसरोंपर उन्हें अपने पदसे हटा देनेमें कृतकार्य्य होते हैं और इंग्लैण्डनिवासी निष्पक्ष अँगरेजोंकी सहायता लेकर भारतीय शासकोंके विरुद्ध बहुतसे राजविधानोंका संशोधन करानेमें भी समर्थ होते हैं। इन सब व्यवहारोंसे अँगरेज लोग इतना अधिक जल गए हैं कि भारत-राजतंत्रके बड़े बड़े पहाड़ोंकी चोटियोंसे भी राजनीतिसम्मत मौनको फाड़कर बीच बीचमें आगकी लपटें निकलने लगती

हैं। दूसरी ओर मुसलमान लोग राजभक्तिके मारे अवनतप्राय होकर कांग्रेसके उद्देश्यमार्गमें बाधास्वरूप खड़े हो गए हैं। इन्हीं सब कारणोंसे अँगरेजोंके मनमें एक प्रकारका विकार हो गया है—सरकारका इसमें कोई हाथ नहीं है।

केवल इतना ही नहीं है बल्कि अँगरेजोंके मनमें कांग्रेसकी अपेक्षा गोरक्षिणी सभाओंने और भी अधिक खलबली डाल दी थी। वे लोग जानते हैं कि इतिहासके प्रारम्भकालसे ही जो हिन्दू जाति आत्मरक्षाके लिये कभी एकत्र नहीं हो सकती वही जाति गोरक्षाके लिये तुरन्त एकत्र हो सकती है। इसलिये, जब इसी गोरक्षाके कारण हिन्दुओं और मुसलमानोंके विरोधका आरम्भ हुआ तब स्वभावतः ही मुसलमानोंके साथ अँगरेजोंकी सहानुभूति बढ़ गई थी। उस समय अविचलित चित्त और निष्पक्ष भावसे इस बातका विचार करनेकी शक्ति बहुत ही थोड़े अँगरेजोंमें थी कि इस समय कौन पक्ष अधिक अपराधी है अथवा दोनों ही पक्ष थोड़े बहुत अपराधी हैं या नहीं। उस समय वे डरते हुए सबसे अधिक इसी बातका विचार किया करते थे कि यह राजनीतिक संकट किस प्रकार दूर किया जा सकता है। हमने साधनाके तीसरे खंडमें 'अँगरेजोंका आतंक' नामक प्रबन्धमें सन्थालोंके दमनका उदाहरण देकर दिखलाया है कि जब आदमी डर जाता है तब उसमें सुविचार करनेका धैर्य्य नहीं रह जाता और जो लोग जानबूझकर अथवा बिना जानेबूझे डरका कारण होते हैं उन लोगोंके प्रति मनमें एक निष्ठुर हिंस्रभाव उत्पन्न हो जाता है। इसी लिये, गवर्नमेन्ट नामक यंत्र चाहे जितना निरपेक्ष रहे लेकिन फिर भी, चाहे यह बात बार बार अस्वीकृत कर दी जाय, इस बातके लक्षण स्पष्ट रूपसे पहले भी दिखलाई देते थे और अब भी दिखलाई देते हैं कि गवर्नमेन्टके

छोटे बड़े सभी यंत्री आदिसे अन्त तक बिलकुल घबरा गए थे। और जब साधारण भारतीय अँगरेजोंके मनमें तरह तरहके स्वाभाविक कारणोंसे एक बार इस प्रकारका विकार उत्पन्न हो गया है, तब उसका जो फल है वह बराबर फलता ही रहेगा। राजा कैन्यूट जिस प्रकार समुद्रकी तरंगोंको रोक नहीं सका था उसी प्रकार गवर्नमेन्ट भी इस स्वाभाविक नियममें बाधा नहीं दे सकती।

प्रश्न हो सकता है कि तब फिर क्यों व्यर्थ ही यह आन्दोलन किया जाता है अथवा हमारे इस प्रबन्ध लिखनेकी ही क्या आवश्यकता थी? हम यह बात एक बार नहीं हजार बार मानते हैं कि सकरुण अथवा साभिमान स्वरमें गवर्नमेन्टके सामने निवेदन या शिकायत करनेके लिये प्रबन्ध लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हमारा यह प्रबन्ध केवल अपने जातिभाइयोंके लिये है। हम लोगोंपर जो अन्याय होता है अथवा हम लोगोंके साथ जो अविचार होता है उसके प्रतिकारका सामर्थ्य स्वयं हम लोगोंको छोड़कर और किसीमें नहीं है।

कैन्यूटने समुद्रकी तरंगोंको जिस स्थानपर रुकनेके लिये कहा था समुद्रकी तरंगें उस स्थानपर नहीं रुकीं—उन्होंने जड़ शक्तिके नियमानुसार चलकर ठीक स्थानपर आघात किया था। कैन्यूट मुँहसे कहकर अथवा मंत्रोंका उच्चारण करके उन तरंगोंको नहीं रोक सकता था लेकिन बाँध बाँधकर उन्हें अवश्य रोक सकता था। स्वाभाविक नियमके अनुसार, यदि हम आघात-परम्पराको आधे रास्तेमें ही रोकना चाहें तो, हम लोगोंको भी बाँध बाँधना पड़ेगा, सब लोगोंको मिल-कर एक होना पड़ेगा, सबको समहृदय होकर समवेदनाका अनुभव करना पड़ेगा।

हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि हम लोग दल बाँधकर विप्लव करें—और फिर हम लोगोंमें विप्लव करनेकी शक्ति भी नहीं है। लेकिन दल बाँधनेपर जो एक बृहत्त्व और बल आ जाता है उसपर लोग बिना श्रद्धा किए नहीं रह सकते। और जबतक कोई व्यक्ति या समाज अपनी ओर श्रद्धा आकृष्ट न कर सके तब तक उसके लिये सुविचार आकृष्ट करना बहुत ही कठिन होता है।

लेकिन बालूका बाँध क्योंकर बाँधा जा सकता है? जो लोग अनेक बार मारे पीटे जा चुके हैं फिर भी जिन्होंने कभी आजतक एका करना सीखा ही नहीं, जिन लोगोंके समाजमें फूटके हजारों विष-बीज छिपे हुए हैं वे लोग कैसे एक किए जा सकते हैं? आजकल उत्तरसे लेकर दक्षिणतक और पूर्वसे लेकर पश्चिमतक सारी हिन्दू जातिका हृदय दिन पर दिन अलक्षित भावसे केवल इसी विश्वासके कारण ही परस्पर निकट खिंचता आ रहा है कि अँगरेज लोग हम लोगोंके हृदयकी वेदनाका अनुभव नहीं कर सकते और वे औषधोंके द्वारा हमारी चिकित्सा न करके उलटे हमारे हृदयपर कड़ी चोट पहुँचाते और हमारे हृदयकी व्यथाको चौगुना बढ़ानेके लिये उद्योग करते हैं। लेकिन केवल इतनेसे ही कुछ नहीं हो सकता। हम लोगोंकी जाति अब भी हमारे जातिभाइयोंके लिए ध्रुव आश्रयभूमि नहीं बन पाई है। इसीलिये हम लोगोंको बाहरकी आँधीका उतना डर नहीं है जितना कि स्वयं अपने घरकी बालूकी दीवारका भय है। तेज बहनेवाली नदीके बीचके प्रवाहकी अपेक्षा उसके किनारेकी शिथिल बन्धन और खिसलनेवाली जमीनको बचाकर चलना होता है।

हम जानते हैं कि बहुत दिनों तक पराधीन रहनेके कारण हम लोगोंका जातीय मनुष्यत्व और साहस पिसकर चूर चूर हो गया है।

हम जानते हैं कि यदि हम अन्यायके विरुद्ध खड़े होना चाहें तो हमें सबसे अधिक डर अपनी जातिका ही होगा। जिसके लिये हम अपने प्राण देनेको तैयार होंगे वही हमारी विपत्तिका प्रधान कारण होगा। हम लोग जिसकी सहायता करने जायँगे वही हमारी सहायता न करेगा। कायर लोग सत्य बातको स्वीकार न करेंगे। जो पीड़ित होंगे वे अपने कष्टको छिपा रखेंगे। कानून अपना वज्रके समान मुक्का उठावेगा और जेलखाना अपना लोहेका मुँह फैलाकर हम लोगोंको निगलने आवेगा। लेकिन फिर भी सच्चे महत्त्व और स्वाभाविक न्याय-प्रियताके कारण हम लोगोंमेंसे दो चार आदमी भी जब अंत तक अटल रह सकेंगे तब हम लोगोंके जातीय बंधनका सूत्रपात हो जायगा और तब हम लोग न्याययुक्त विचार करानेके अधिकारी होंगे।

हिन्दुओं और मुसलमानोंके विरोध अथवा भारतवासियों और अँग-रेजोंके संघर्षके विषयमें हम जो कुछ अनुमान और अनुभव करते हैं, हम नहीं कह सकते कि हमारा वह अनुमान और अनुभव ठीक है या नहीं। और न हम यही जानते हैं कि हम जिस अविचारकी आशंका करते हैं उसका कोई आधार है या नहीं, लेकिन इतना अवश्य जानते हैं कि यदि मनुष्य केवल विचारकके अनुग्रह और कर्त्तव्य-ज्ञान-पर ही विचारका सारा भार छोड़ दे तो इतनेसे ही वह सुविचारका अधिकारी नहीं हो सकता। राजतंत्र चाहे कितना ही उन्नत क्यों न हो, परन्तु यदि उसकी प्रजाकी अवस्था बिलकुल ही गई बीती हो तो वह राजतंत्र कभी अपने आपको उस उच्चस्थानपर स्थित नहीं रख सकता। क्योंकि राज्य मनुष्यके ही द्वारा चलता है। न तो वह यंत्रोंके द्वारा चलता है और न देवताओंके द्वारा। जब उन मनुष्योंके सामने हम इस बातका प्रमाण देंगे कि हम भी आदमी हैं तब वे लोग

सभी अवसरोंपर हम लोगोंके साथ मनुष्योचित व्यवहार करेंगे। जिस समय भारतवर्षमें ऐसे थोड़े बहुत लोग भी उठ खड़े होंगे जो हम लोगोंमें अटल सत्यप्रियता और निर्भीक न्यायपरताका उन्नत आदर्श स्थापित करेंगे, जब अँगरेज लोग अपने हृदयमें इस बातका अनुभव करेंगे कि भारतवर्ष अब न्यायविचारको निश्चेष्ट भावसे ग्रहण नहीं करता, उसके लिये सचेष्ट भावसे प्रार्थना करता है और अन्याय दूर करनेके लिये अपने प्राणतक देनेको तैयार है, तब वे लोग कभी भूलसे भी हम लोगोंकी अवहेला न करेंगे और हम लोगोंके प्रति न्याय-विचारमें शिथिलता करनेकी ओर स्वभावत: ही उन लोगोंकी प्रवृत्ति न होगी।

कण्ठ-रोध ।*

इस समय हम जिस भाषामें प्रबन्ध पढ़नेके लिये उद्यत हुए हैं वह भाषा यद्यपि बंगालियोंकी भाषा है, दुर्बलोंकी भाषा है, विजित-जातिकी भाषा है तथापि उस भाषासे हमारे शासक लोग डरते हैं। इसका एक कारण है, वे लोग यह भाषा नहीं जानते और जहाँ अज्ञानका अन्धकार होता है वहीं अन्ध आशंकाके प्रेतका निवास होता है।

कारण चाहे कुछ ही क्यों न हो लेकिन जो भाषा हमारे शासक लोग नहीं जानते और जिस भाषासे वे लोग मन ही मन डरते हैं उस भाषामें उन लोगोंके साथ बातचीत करनेमें हमें उनसे भी अधिक डर लगता है। क्योंकि इस बातका विचार उन्हीं लोगोंके हाथमें है कि हम लोग किस भावसे कौनसी बात कहते हैं और हम लोगोंकी बातें असह्य वेदनाके कारण मुँहसे निकलती हैं अथवा दुःसह स्पर्धाके कारण। और इस विचारका फल कुछ ऐसा वैसा नहीं है।

हम लोग विद्रोही नहीं हैं, बहादुर नहीं हैं और समझते हैं कि शायद नासमझ भी नहीं हैं। हम लोग यह भी नहीं चाहते कि उठा हुआ राजदण्ड हम लोगोंपर गिर पड़े और हम अकस्मात् अकाल-मृत्युके मुँहमें जा पड़ें। लेकिन हम स्पष्ट रूपसे यह बात नहीं जानते

---

* जिस समय 'सिडिशन बिल' पास हुआ था उस समय यह निबन्ध कलकत्तेके टाउन हालमें पढ़ा गया था।

कि राजकीय दण्ड धारण करनेवाला पुरुष भाषाके किस कोनेपर घात लगाए बैठा है। और न शासक ही इस बातको अच्छी तरह जानते हैं कि किस स्थानपर वक्ताके पैर रखते ही हमारा दण्ड आकर उसको जमीनपर गिरा देगा। इसलिये स्वभावतः ही उन शासकोंका शासन-दण्ड आनुमानिक आशंकाके वेग और अन्ध भावसे चलकर कानूनकी न्यायसीमाका उल्लंघन करता हुआ अचानक उल्कापातकी तरह बेमौके और बेवक्त दुर्बल जीवोंकी अन्तरिन्द्रियको चकित कर सकता है। ऐसे अवसरपर बिलकुल चुपचाप बैठ रहना ही सबसे बढ़कर बुद्धिमत्ताका कार्य है और इस बातके भी कुछ लक्षण अब दिखाई देते हैं कि हमारे इस अभागे देशमें बहुतसे लोग कर्त्तव्य-क्षेत्रसे बहुत दूर छिपे रहकर आपत्तिसे बचानेवाली इस सद्‌बुद्धिका अवलम्बन करेंगे। और देशके कुछ ऐसे बुरे दिन आ रहे हैं कि हमारे देशके जो बड़े बड़े विक्रमशाली व्याख्यान-दाता विलायती सिंहनादसे श्वेत द्वैपायनोंके या गोरे अँगरेजोंके हृदयमें भी सहसा विभ्रम उत्पन्न कर सकते हैं उनमेंसे बहुतसे लोग किसी गुफामें छिपकर चुप रहनेका अभ्यास करने लगेंगे। उस समय ऐसे दुस्साहसिक देशभाई दुर्लभ हो जायँगे जो इस अभागे देशकी वेदनाका निवेदन करनेके लिये राजद्वारतक जा सकें। यद्यपि शास्त्रमें कहा है कि "राजद्वारे स्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः" लेकिन फिर भी ऐसी दशामें जब कि स्मशान और राजद्वार इतने अधिक निकटवर्त्ती हो गए हैं तब उन डरे हुए भाइयोंको कुछ क्षमा ही करना पड़ेगा।

हम लोगोंका ऐसा स्वभाव ही नहीं है कि यदि राजा विमुख हो जाय तो हम लोग उससे न डरें। लेकिन इसी प्रश्नने हम लोगोंको बहुत अधिक उद्विग्न कर दिया है कि राजा क्यों इस बातको इतना अधिक प्रकट करने लग गया है कि हम तुम लोगों (प्रजा) से डर रहे हैं।

यद्यपि अँगरेज हम लोगोंके एकेश्वर राजा हैं और उनकी शक्ति भी अपरिमित है, तथापि वे लोग इस देशमें डरते डरते ही वास करते हैं। क्षण क्षणपर उनके इस डरका पता पाकर हम लोग विस्मित होते हैं। बहुत दूरपर बैठे हुए रूसके पैरोंकी आहटका केवल अनुमान करके ही वे लोग जिस प्रकार चकित हो जाते हैं उसका हम लोग बहुत ही दुःखके साथ अनुभव करते हैं। क्योंकि जब जब उनका हृदय काँपता है तब तब हमारी भारत-लक्ष्मीके शून्यप्राय भांडारमें भूकम्प उपस्थित हो जाता है और इस दीन पीड़ित और कंगाल देशके लोगोंकी भूख मिटानेवाला अन्न क्षण भरमें तोपका गोला बन जाता है—हमारे लिये यह लघुपाक खाद्य पदार्थ नहीं है।

बाहरके प्रबल शत्रुके सम्बन्धमें इस प्रकारकी सचकित सतर्कताका समूलक कारण हो भी सकता है, उसकी भीतरी बातें और जटिल तत्त्व हम लोग नहीं समझते।

लेकिन इधर थोड़े दिनोंसे लगातार एकके बाद एक जो कई अभावनीय घटनाएँ हो गई हैं उनसे हमें सहसा यह मालूम हुआ है कि हम लोग बिना कोई चेष्टा किए और बिना किसी कारणके भय उत्पन्न कर रहे हैं। हम लोग भयंकर हैं! आश्चर्य! पहले हमें कभी इस बातका सन्देह भी नहीं हुआ था।

इतनेमें ही हम लोगोंने देखा कि सरकार बहुत ही चकित भावसे अपनी पुरानी दण्डशालामेंसे कई अव्यवहृत कठोर नियमोंके प्रबल लोहेके सिकड़ बाहर निकालकर उनका मोरचा छुड़ानेके लिये बैठी है। प्रचलित कानूनके मोटे रस्सोंसे भी अब वह हम लोगोंको बाँधकर नहीं रख सकती—हम लोग बहुत ही भयंकर हो गए हैं।

एक दिन हमने सुना कि अपराधीको अच्छी तरह समझ-बूझकर पकड़नेमें असमर्थ होकर हमारी क्रुद्ध सरकारने गवाह, सबूत, विचार, विवेचना आदिके लिये विलम्ब न करके अचानक सारे पूना शहरकी छातीपर राजदण्डका पत्थर रख दिया। हमने सोचा कि पूना बड़ा भयंकर शहर है! भीतर ही भीतर न जाने उसने कौनसा बड़ा भारी उपद्रव डाला है!

लेकिन आजतक उस भारी उपद्रवका किसीको कुछ भी पता न लगा।

हम चुपचाप बैठे हुए अभी यही सोच रहे थे कि यह बात सच-मुच हुई है या हम स्वप्न देख रहे हैं कि इतनेमें तारसे खबर आई कि राजप्रासादके गुप्त शिखरसे एक अज्ञात अपरिचित और बीभत्स कानून बिजलीकी तरह आ गिरा और नाटू भाइयोंको देखते देखते न जाने कहाँ उड़ा ले गया। देखते देखते सारे बम्बई प्रदेशके ऊपर घना काला बादल छा गया और जबरदस्त शासनकी गड़गड़ाहट, वज्रपात और शिलावृष्टिकी नौबत देखकर हमने सोचा कि यह तो नहीं मालूम कि अन्दर ही अन्दर वहाँ क्या हो रहा है लेकिन इतना बहुत अच्छी तरह दिखाई दे रहा है कि बात साधारण नहीं है! मराठे लोग बहुत भयंकर हैं!

एक ओर पुराने कानूनके सिक्कड़का मोरचा साफ हुआ और दूसरी ओर राजकीय कारखानेमें नए सिक्कड़ बनानेके लिये भीषण हथौड़ेका शब्द हो रहा है! इस शब्दसे सारा भारत काँप उठा है! लोगोंमें भयंकर धूम मच गई है! हम लोग बड़े ही भयंकर हैं!

अबतक हम लोग इस विपुला पृथ्वीको अचला समझा करते थे क्योंकि इस प्रबला पृथ्वीके ऊपर हम लोग जितने निर्भर हैं और उसके

प्रति हमने जितने उपद्रव किए हैं उन सबको उसने अपनी प्रकाण्ड शक्तिसे चुपचाप और अनायास ही सह लिया है। किन्तु एक दिन नई वर्षाके दुर्योगमें मेघावृत्त दोपहरको हम लोगोंकी वही चिर-निर्भर भूमि अचानक न जाने किस गूढ़ आशंकासे काँपने लगी। हमने देखा कि उसकी उस क्षण भरकी चंचलताके कारण हम लोगोंके बहुत दिनोंके प्रिय और पुराने वासस्थान मिट्टीमें मिल गए।

यदि सरकारकी अचला नीति भी अचानक साधारण अथवा अनिर्देश्य आतंकसे विचलित और विदीर्ण होकर हम लोगोंको खानेके लिये तैयार हो जाय, तो उसकी शक्ति और नीतिकी दृढताके सम्बन्धमें हम लोगोंका बहुत दिनोंसे जो विश्वास चला आता है सहसा उस विश्वासपर बड़ा भारी धक्का लगता है। उस धक्केसे प्रजाके मनमें भयका संचार होना सम्भव है लेकिन उसके साथ ही यह बात भी बहुत स्वाभाविक है कि सरकारको स्वयं अपने लिये भी अचानक बहुत कुछ सोच विचार करना पड़े। यह प्रश्न सहसा आप ही आप मनमें उठता है कि हम न जाने क्या हैं!

इससे हम लोगोंकी थोड़ी बहुत तसल्ली होती है। क्योंकि जो जाति पूरी तरहसे निस्तेज और निःसत्व हो गई हो, उसके प्रति बलका प्रयोग करना जिस प्रकार अनावश्यक है उसी प्रकार उसके प्रति श्रद्धा करना भी असम्भव है। जब हम लोग यह देखते हैं कि हमें दमन करनेके लिये विशेष प्रयत्न हो रहा है तब न्याय और अन्याय, विचार और अविचारका तर्क दूर हो जाता है और हमारे मनमें स्वभावतः यह बात आती है कि शायद हम लोगोंमें किसी शक्तिकी संभावना है और केवल मूढ़ताके कारण हम सब अवसरोंपर उस शक्तिको काममें नहीं ला सकते। ऐसी दशामें जब कि सरकार चारों तरफ तोपें लगा

रही है तो यह बात निश्चय है कि हम लोग मच्छड़ नहीं हैं—कमसे कम मरे हुए मच्छड़ नहीं हैं !

हमारी जातिमें यदि कुछ प्राण अथवा कुछ शक्तिके संचारकी संभावना हो तो हमारे लिये यह बहुत ही आनन्दकी बात है । इस बातको अस्वीकृत करना ऐसी स्पष्ट कपटता है कि पालिसीके रूपमें तो वह अनावश्यक और प्रवंचनाके रूपमें बिलकुल व्यर्थ है । इसलिये जब हम यह देखते हैं कि सरकार हम लोगोंकी उस शक्तिको स्वीकृत करती है तो हमारे निराश चित्तमें थोड़ेसे गर्वका संचार हुए बिना नहीं रह सकता ! लेकिन दुःखका विषय यह है कि यह गर्व हम लोगोंके लिये सांघातिक है । जिस प्रकार सीपमें मोतीका होना सीपके लिये बुरा होता है उसी तरह हम लोगोंमें इस गर्वका होना भी बुरा है । कोई चालाक गोताखोर हम लोगोंके पेटमें छुरी भोंककर यह गर्व निकाल लेगा और इसे अपने राजमुकुटमें लगा लेगा । अँगरेज अपने आदर्शको देखते हुए हम लोगोंका जो अनुचित सम्मान करते हैं वह सम्मान हम लोगोंके लिये परिहासके साथ ही साथ मृत्यु भी हो सकता है । गवर्नमेन्ट हम लोगोंमें जिस बलके होनेका सन्देह करके हम लोगोंके साथ बल प्रयोग करती है वह बल यदि हम लोगोंमें न हुआ तो उसके भारी दण्डसे हम लोग नष्ट हो जायँगे और यदि वह बल हम लोगोंमें सचमुच हुआ तो उस दण्डकी मारसे हमारा वह बल बराबर दृढ़ और अन्दर ही अन्दर प्रबल होता जायगा ।

हम लोग तो अपने आपको जानते हैं, लेकिन अँगरेज हम लोगोंको नहीं जानते । उनके इस न जाननेके सैकड़ों कारण हैं जिनका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं है । साफ़ बात यही है कि वे हम लोगोंको नहीं जानते । हम लोग पूर्वके रहनेवाले हैं और वे पश्चि-

सके। हम लोगोंमें किस बातका क्या परिणाम होता है, हमें किस जगह चोट लगनेसे कहाँ पीड़ा होती है, इस बातको वे लोग अच्छी तरह नहीं समझ सकते। इसीलिये उन लोगोंको भय है। हम लोगोंमें भयंकरताका और कोई लक्षण नहीं है,—केवल एक लक्षण है और वह यह कि हम लोग अज्ञात हैं। हम लोग स्तन्यपायी उद्भिद्भोजी जीव हैं, हम लोग शान्त सहनशील और उदासीन हैं; लेकिन फिर भी हम लोगोंका विश्वास नहीं करना चाहिए। क्योंकि हम लोग पूर्वके रहनेवाले और दुर्ज्ञेय हैं।

यदि सचमुच यही बात हो तो हम अपने शासकोंसे कहते हैं कि आप लोग क्यों हम लोगोंको और भी अधिक अज्ञेय करते जा रहे हैं? यदि आप रस्सीको साँप समझ रहे हों तो क्यों चटपट घरका दीआ बुझाकर अपना भय और भी बढ़ा रहे हैं? जिस एक मात्र उपायसे हम लोग आत्मप्रकाश कर सकते हैं, आपको अपना परिचय दे सकते हैं, उस उपायको रोकनेसे आपको क्या लाभ होगा?

गदरसे पहले हाथों हाथ जो रोटी वितरण की गई थी, उसमें एक अक्षर भी नहीं लिखा था; फिर भी उससे गदर हो गया था। तब ऐसे निर्वाक निरक्षर समाचारपत्र ही क्या वास्तवमें भयंकर नहीं हैं? साँपकी गति बिलकुल गुप्त होती है और उसके काटनेमें कोई शब्द नहीं होता, लेकिन क्या केवल इसीलिये साँप निदारुण नहीं होता? समाचारपत्र जितने ही अधिक और जितने ही अबाध होंगे स्वाभाविक नियमके अनुसार देश आत्मगोपन करनेमें उतना ही अधिक असमर्थ होगा। यदि कभी अमावस्याकी किसी गहरी अँधेरी रातमें हम लोगोंकी अबला भारतभूमि दुराशाके दुस्साहससे पागल होकर विप्लव-अभिसारकी यात्रा करे तो संभव है कि सिंहद्वारका कुत्ता

न भी भूँके, राजाके पहरेदार न भी जागें, नगररक्षक कोतवाल उसे न भी पहचाने, लेकिन स्वयं उसके ही शरीरके कंकण, किंकिणि, नूपुर और केयूर, उसकी विचित्र भाषाके विचित्र समाचारपत्र कुछ न कुछ बज ही उठेंगे, मना करनेसे न मानेंगे। पहरेदार यदि अपने हाथमें उन मुखर आभूषणोंकी ध्वनि रोक देगा, तो इससे केवल यही होगा कि उसे सोनेका अच्छा अवसर मिल जायगा लेकिन हम यह नहीं जानते कि उससे पहरेके काममें क्या सुभीता होगा !

लेकिन पहरा देनेका भार जिन जागे हुए लोगोंके हाथमें हैं पहरा देनेकी प्रणाली भी वे ही लोग स्थिर करते हैं। इस विषयमें विज्ञोंकी तरह परामर्श देना हमारे लिये बड़ी भारी धृष्टता है और संभवतः वह निरापद भी नहीं है। इसलिये मातृभाषाके हमारे इस दुर्बल उद्यममें दुश्चेष्टा नहीं है। तो फिर हम लोग यह क्षीण क्षुद्र व्यर्थ और विपत्तिजनक वाचालता क्यों करते हैं ? केवल इसी बातका स्मरण करके कि एक दुर्बलके लिये किसी प्रबलका भय कितना भयंकर होता है !

यदि इस स्थानपर एक छोटासा दृष्टान्त दे दिया जाय तो कदाचित् वह कुछ अप्रासंगिक न होगा। थोड़े दिन हुए कि कुछ निम्न श्रेणीके अविवेचक मुसलमानोंके एक दलने कलकत्तेकी सड़कोंपर ढेले फेंककर उपद्रव करनेकी चेष्टा की थी। इसमें आश्चर्यकी बात यही है कि उपद्रवका लक्ष्य विशेषतः अँगरेजोंपर ही था। उन मुसलमानोंको दण्ड भी यथेष्ट मिल गया। लोग कहते हैं कि जो ईंटे मारता है उसे पत्थर खाने पड़ते हैं, लेकिन उन मूर्खोंको ईंटें मारकर पत्थरसे भी कहीं बढ़कर कड़े कड़े पदार्थ खाने पड़े। उन्होंने अपराध किया और उसका दण्ड पाया; लेकिन आजतक स्पष्ट रूपसे यह समझमें न आया कि इसके अन्दर बात क्या थी। छोटी श्रेणीके ये मुसलमान

लोग न तो समाचारपत्र ही पढ़ते थे और न लेख ही लिखते थे। एक छोटी मोटी घटना हो गई, लेकिन इस मूक, निर्वाक् प्रजा-सम्प्रदायके मनकी कुछ भी समझाई न दी। इस बातका रहस्य नहीं खुला, इसी-लिये सर्व साधारणके मनमें उसके सम्बन्धमें एक झूठा और कृत्रिम गौरव उत्पन्न हुआ। हरिसन रोडसे लेकर तुर्कोंके अर्द्धचन्द्र-शिखरी राजप्रसाद तक इसके सम्बन्धमें तरह तरहके संभव और असंभव और कल्पनाएँ होने लगीं। इस बातका कुछ भी रहस्य नहीं खुला, इसी लिये आतंक-चकित अँगरेजी समाचारपत्रोंमेंसे किसीने कहा कि यह कांग्रेसके साथ मिले हुए राष्ट्रविप्लवकी सूचना है। किसीने कहा कि मुसलमानोंकी बस्ती बिल्कुल नष्टभ्रष्ट कर दी जाय और किसीने कहा कि ऐसी भयंकर विपत्तिके समय बड़े लाटका शीतल पहाड़पर आनन्दसे बैठे रहना उचित नहीं हुआ।

रहस्य ही अनिश्चित भयका प्रधान आश्रयस्थान है---और किसी प्रबल व्यक्तिका अनिश्चित भय एक दुर्बल व्यक्तिके लिये निश्चित मृत्यु है! रुद्धवाक् समाचारपत्रोंके बीचमें रहस्यके अन्धकारसे आच्छन्न होकर रहना हम लोगोंके लिये बहुत ही भयंकर अवस्था है। उस अवस्थामें हम लोगोंकी सारी क्रियाएँ और बातें हमारे शासकोंको संशयके अँधकारमें बहुत ही कृष्ण वर्णकी दिखाई देंगी, बहुत कठिनतासे दूर होनेवाले अविश्वासके कारण राजदण्डकी धार दिनपर दिन बराबर तेज होती जायगी और प्रजाका हृदय विषादके भारसे दबकर और निर्वाक् निराशाके कारण विपतिक्त होता जायगा। हम लोग अँगरेजोंकी एकान्त अधीन प्रजा हैं, लेकिन प्रकृतिका नियम अँगरेजोंका दासत्व नहीं कर सकता। यदि आघात किया जायगा तो हमें वेदना होगी। उस समय अँगरेज लोग हजार आँखें लाल करें लेकिन फिर भी वे इस नियमको

देशान्तरित न कर सकेंगे। वे क्रोध करके आघातकी मात्रा बढ़ा सकते हैं, लेकिन उसके साथ ही साथ वेदनाकी मात्रा भी बढ़ती जायगी। क्योंकि यह प्रकृतिका नियम है। पिनल कोड उसे रोक नहीं सकता। यदि मनकी जलन वाक्योंके रूपमें बाहर न निकले तो वह अन्दर ही अन्दर जमा होती रहेगी। इस प्रकारकी अस्वास्थ्यकर और अस्वाभाविक अवस्थामें राजा और प्रजाका सम्बन्ध जैसा विकृत हो जायगा उसकी कल्पना करके हम बहुत ही डर रहे हैं।

लेकिन यह अनिर्दिष्ट संशयकी अवस्था ही सबसे बढ़कर अमंगल-जनक नहीं है। हम लोगोंके लिये इससे भी बढ़कर एक और अशुभ बात है। यह बात हम लोगोंने अँगरेजोंसे ही सीखी है कि मनुष्यके चरित्र-पर पराधीनताका बहुत ही अवनतिकारक परिणाम होता है। असत्या-चरण और कपटता अधीनजातिके लिये आत्मरक्षाका अस्त्र हो जाती है और उसके आत्मसम्मान तथा मनुष्यत्वको अवश्य ही नष्ट कर देती है। स्वाधीनतापूजक अँगरेज अपनी प्रजाकी अधीन दशासे उस हीन-ताके कलंकको यथासंभव दूर करके हम लोगोंको मनुष्यत्वकी शिक्षा देनेमें प्रवृत्त हुए थे। उन्होंने पद पदपर हमें यह स्मरण नहीं दिलाया था कि तुम लोग विजित हो और हम विजेता हैं, तुम लोग निर्बल हो और हम लोग सबल हैं। उन्होंने इस बातको मनसे यहाँतक भुला दिया था कि हम लोग सोचने लगे थे कि अपने हृदयके भावोंको प्रकट करनेकी स्वाधीनता हम लोगोंके मनुष्यत्वका स्वाभाविक अधिकार है।

आज हम सहसा जागकर देखते हैं कि दुर्बलका कोई अधिकार ही नहीं है। हम लोग जिस बातको मनुष्यमात्रके लिये प्राप्य समझते थे वह दुर्बलके प्रति प्रबलका मनमाना अनुग्रह मात्र है। आज हम इस सभास्थलमें खड़े होकर जो केवल शब्दोच्चारण कर रहे हैं सो इससे

हमें मनुष्योचित गर्वके अनुभव करनेका कोई कारण नहीं है। अपराध करने और विचार होनेसे पहले ही हम अपने आपको जो कारागारमें प्रतिष्ठित नहीं देखते हैं, इससे भी हमारा कोई गौरव नहीं है।

यह बात एक हिसाबसे ठीक है, लेकिन इस ठीक बातका सदा अनुभव करते रहना राजा और प्रजा दोनोंमेंसे एकके लिये भी हितकारक नहीं है। अवस्थाकी पृथक्तामें हृदयका सम्बन्ध स्थापित करके असमानताके बीचमें भी मनुष्य अपने मनुष्यत्वकी रक्षा करनेकी चेष्टा करता है।

शासितों और शासकोंके बीचमें जो शासन-शृंखला है वह यदि सदा झनझनाई न जाया करे, बल्कि आत्मीय सम्बन्धके बंधनसे ढककर रक्खी जाया करे तो उससे अधीन जाति परका भार कुछ घट जाता है।

छापेखानेकी स्वाधीनता भी इसी प्रकारकी एक ढकनेवाली चीज है। इसने हमारी अवस्थाकी हीनताको छिपा रक्खा था। हम लोग जेता जातिकी अनेक शक्तियोंसे वंचित होनेपर भी इस स्वाधीनता-सूत्रके कारण अंतरंग भावसे उन जेताओंके निकटवर्ती हो गए थे। हम लोग दुर्बल जातिका हीन भय और कपटता भूलकर मुक्त हृदय और उन्नत मस्तकसे सत्य और स्पष्ट बात कहना सीख रहे थे।

यद्यपि उच्चतर राजकार्योंमें हम लोगोंको कुछ भी स्वाधीनता नहीं थी, तौ भी हम लोग निर्भीक भावसे परामर्श देकर, स्पष्ट वाक्योंमें समालोचना करके अपने आपको भारत राज्यके विशाल शासनकार्य्यका एक अंग समझते थे। यह इस बातका विवेचन करनेका अवसर नहीं है कि इसके अन्य अच्छे अथवा बुरे परिणाम क्या थे। लेकिन इसमें

सन्देह नहीं है कि इससे हम लोगोंका आत्मसम्मान बढ़ गया था। हम लोग जानते थे कि हम लोगोंके देशके शासनका जो बहुत बड़ा काम है उसमें हम लोग बिलकुल अकर्मण्य और निश्चेष्ट नहीं हैं, उसमें हम लोगोंका भी कुछ कर्त्तव्य है, हम लोगोंका भी कुछ दायित्व है। ऐसी दशामें जब कि इस शासन कार्य्यपर ही प्रधानतः हम लोगोंका सुख दुःख और शुभ अशुभ निर्भर करता है तब यदि उसके साथ हम लोगोंका किसी प्रकारके मन्तव्य अथवा वक्तव्य बन्धनका संबंध न रहे तो हम लोगोंकी दीनता और हीनताकी कोई सीमा नहीं रह जाती। विशेषतः हम लोगोंने अँगरेजी विद्यालयोंमें शिक्षा पाई है, अँगरेजी साहित्य पढ़नेके कारण अँगरेज कर्मवीरोंके दृष्टान्त हम लोगोंके अन्तःकरणमें प्रतिष्ठित हुए हैं और हम लोगोंने उस परम गौरवका अनुभव किया है कि सब प्रकारके कामोंमें अपने कल्याणके लिये हमें स्वतंत्र अधिकार है। आज यदि हम अचानक अपने भावोंको प्रकट करनेकी उस स्वतंत्रतासे वंचित हो जायँ, राजकार्य्य चलानेके साथ हम लोगोंका समालोचनावाला जो थोड़ासा सम्बन्ध है वह एक ही आघातमें टूट जाय और हम लोग निश्चेष्ट उदासीनतामें निमग्न हो जायँ, कपट और मिथ्या बातोंके द्वारा प्रबल राजपदके नीचे अपने मनुष्यत्वका पूरा पूरा बलिदान कर दें, तो पराधीनताकी सारी हीनता-ओंमें उच्च-शिक्षा-प्राप्त आकांक्षाकी वाक्यहीन व्यर्थ वेदना मिल जायगी और हम लोगोंकी दुर्दशाकी पराकाष्ठा हो जायगी। जिस सम्बन्धमें आदान-प्रदानका एक छोटासा मार्ग खुला हुआ था, भय उस मार्गको रोककर खड़ा हो जायगा। राजाके प्रति प्रजाका वह भय गौरवजनक नहीं है और प्रजाके प्रति राजाका वह भय भी उतना ही अधिक शोचनीय है।

यदि समाचारपत्रोंकी स्वाधीनताका यह परदा उठा दिया जाय तो हम लोगोंकी पराधीनताका सारा कठिन कंकाल क्षण भरमें बाहर निकल पड़े। आजकलके कुछ जबरदस्त अँगरेज लेखक कहते हैं कि जो बात सत्य है उसका प्रकट हो जाना ही अच्छा है। लेकिन हम पूछते हैं कि क्या अँगरेजी शासनका यह कठिन और शुष्क पराधीनताका कंकाल मात्र ही सत्य है? और इसके ऊपर जीवनके लावण्यका जो परदा था और स्वाधीन गतिकी विचित्र लीलाकी जो मनोहर श्री दिखलाई गई थी क्या वही मिथ्या और माया थी? दो सौ वर्षके परिचयके उपरान्त क्या हम लोगोंके मानव-सम्बन्धका यही अवशेष है?

अत्युक्ति ।*

पृथ्वीके पूर्वकोणके लोग अर्थात् हम लोग अत्युक्तिका बहुत अधिक व्यवहार करते हैं। अपने पश्चिमीय गुरुओंसे हम लोगोंको इस सम्बन्धमें अकसर उल्टी सीधी बातें सुननी पड़ती हैं। जो लोग सात समुद्र-पारसे हम लोगोंके भलेके लिये उपदेश देने आते हैं, हम लोगोंको उचित है कि सिर झुकाकर चुपचाप उनकी बातें सुना करें। क्योंकि वे लोग हमारे जैसे अभागोंकी तरह केवल बातें करना ही नहीं जानते और साथ ही वे लोग यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि बातें किस तरह सुनी जाती हैं। और फिर हम लोगोंके दोनों कानोंपर भी उनका पूरा अधिकार है।

लेकिन हम लोगोंने डाँट-डपट और उपदेश तो बार बार सुना है और हम लोगोंके स्कूलोंमें पढ़ाए जानेवाले भूगोलके पृष्ठों और कन्वोकेशन (Convocation) से यह बात अच्छी तरह प्रतिध्वनित होती है कि हम लोग कितने अधम हैं। हम लोगोंका क्षीण उत्तर इन बातोंको दबा नहीं सकता; लेकिन फिर भी हम बिना बोले कैसे रह सकते हैं? अपने झुके हुए सिरको हम और कहाँतक झुकावेंगे?

सच बात तो यह है कि अत्युक्ति और अतिशयिता सभी जातियोंमें है। अपनी अत्युक्ति बहुत ही स्वाभाविक और दूसरोंकी अत्युक्ति

* जिस समय दिल्ली-दरबारकी तय्यारियाँ हो रही थीं, यह लेख उस समय लिखा गया था।

बहुत ही असंगत जान पड़ती है। जिस विषयमें हम लोगोंकी बात आपसे आप बहुत बढ़ चलती है उस विषयमें अँगरेज लोग बिलकुल चुप रहते हैं और जिस विषयमें अँगरेज लोग बहुत अधिक बका करते हैं उस विषयमें हम लोगोंके मुँहसे एक बात भी नहीं निकलती। हम लोग सोचते हैं कि अँगरेज लोग बातोंको बहुत अधिक बढ़ाते हैं और अँगरेज लोग सोचते हैं कि पूर्वीय लोगोंको परिमाणका ज्ञान नहीं है।

हमारे देशमें गृहस्थलोग अपने अतिथिसे कहा करते हैं कि—"सब कुछ आपका ही है—घर-बार सब आपका है।" यह अत्युक्ति है। यदि कोई अँगरेज स्वयं अपने रसोई-घरमें जाना चाहे तो वह अपनी रसोई बनानेवालीसे पूछता है—"क्या मैं इस कमरेमें आ सकता हूँ?" यह भी एक प्रकारकी अत्युक्ति ही है।

यदि स्त्री नमककी प्याली आगे खसका दे तो अँगरेज पति कहता है—"मैं धन्यवाद देता हूँ।" यह अत्युक्ति है। निमंत्रण देनेवालेके घरमें सब तरहकी चीजें खूब अच्छी तरह खा-पीकर इस देशका निमंत्रित कहता है—"बड़ा आनन्द हुआ, मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ।" अर्थात् मेरा सन्तोप ही तुम्हारे लिये पारितोपिक है। इसके उत्तरमें निमंत्रण देनेवाला कहता है—"आपकी इस कृपासे मैं कृतार्थ हो गया।" इसे भी अत्युक्ति कह सकते हैं।

हम लोगोंके देशमें स्त्री अपने पतिको जो पत्र लिखती है उसमें लिखा रहता है—"श्रीचरणेषु।" अँगरेजोंके लिये यह अत्युक्ति है। अँगरेज लोग अपने पत्रोंमें जिस-तिसको "प्रिय" लिखकर सम्बोधन करते हैं। अभ्यस्त न होनेके कारण हम लोगोंको यह बात अत्युक्ति जान पड़ती है।

इस प्रकारके और भी हजारों दृष्टान्त हैं। लेकिन ये सब बँधी हुई अत्युक्तियाँ हैं—पैतृक हैं। हम लोग अपने दैनिक व्यवहारमें नित्य नई नई अत्युक्तियोंकी रचना किया करते हैं। वस्तुतः प्राच्यजातिकी भर्त्सनाका यही कारण है।

ताली एक हाथसे नहीं बजती, इसी प्रकार बात भी दो आदमियोंके मिलनेसे होती है। जिस स्थानपर श्रोता और वक्ता दोनों एक दूसरेकी भाषा समझते हैं उस स्थानपर दोनोंके संयोगसे अत्युक्ति आपसे आप संशोधित हो जाती है। साहब जब चिट्ठीके अन्तमें हमें लिखते हैं Yours truly—सचमुच तुम्हारा—तब यदि हम उनके इस अत्यन्त घनिष्ट आत्मीयता दिखलानेवाले पदपर अच्छी तरह विचार करें तो हम समझते हैं कि वे सचमुच हमारे नहीं हैं। विशेषतः जब कि बड़े साहब अपने आपको हमारा बाध्यतम भृत्य बतलाते हैं तो हम अनायास ही उनकी इस बातमेंसे सोलह आने बाद करके ऊपरसे और भी सोलह आने काट ले सकते हैं, अर्थात् इसका बिलकुल ही उलटा अर्थ ले सकते हैं। ये सब बँधी हुई और दस्तूरकी अत्युक्तियाँ हैं। लेकिन प्रचलित भाषा-प्रयोगकी अत्युक्तियाँ भी अँगरेजीमें कोड़ियों भरी पड़ी हैं। Immensely, immeasurably, extremely, awfully, infinitely, absolutely, over so much, for the life of me, for the world, unbounded, endless आदि शब्द-प्रयोग यदि सभी स्थानोंपर अपने अपने यथार्थ भावोंमें लिए जायँ तो उनके सामने पूर्वीय अत्युक्तियाँ इस जन्ममें कभी सिर ही न उठा सकेंगी।

यह बात स्वीकृत करनी ही पड़ेगी कि बाहरी या ऊपरी विषयोंमें हम लोग बहुत ही शिथिल हैं। बाहरकी चीजको न तो हम लोग ठीक

तरहसे देखते हैं और न उसे उसके ठीक रूपमें ग्रहण ही करते हैं। प्राय: हम लोग बाहरके ९ को ६ और ६ को ९ कर दिया करते हैं। यद्यपि हम लोग अपनी इच्छासे ऐसा नहीं करते, लेकिन फिर भी ऐसे अवसरपर अज्ञानकृत पापका दूना दोष होता है—एक तो पाप और दूसरा ऊपरसे अज्ञान। इन्द्रियोंको इस प्रकार अलस और बुद्धिको इस प्रकार असावधान कर रखनेसे हम लोग अपनी इन दोनों बातोंको, जो इस संसारमें हम लोगोंका प्रधान आधार हैं, बिलकुल मिट्टी कर देते हैं। जो व्यक्ति वृत्तांतको बिलकुल अलग छोड़कर केवल कल्पना-की सहायतासे सिद्धान्त स्थिर करनेकी चेष्टा करता है वह अपने आपको ही धोखा देता है। जिन जिन विषयोंमें हम लोग अनजान रहते हैं उन्हीं उन्हीं विषयोंमें हम लोग धोखा खाते हैं। काना हिरन जिस तरफ अपनी कानी आँख रखकर आनन्दसे घास खा रहा था उसी तरफसे शिकारीका तीर आकर उसके कलेजेमें लगा। हम लोगोंकी फूटी हुई आँख थी इहलोककी तरफ, इसलिये उसी तरफसे हम लोगोंको यथेष्ट शिक्षा भी मिली। उसी तरफकी चोट खाकर हम लोग मरे! लेकिन क्या करें—“ जाकर जौन स्वभाव छुटै नहिं जीसों।”

अपना दोष तो हमने मान लिया। अब हमें दूसरोंपर दोषारोपण करनेका अवसर मिलेगा। बहुतसे लोग इस प्रकार दूसरोंपर दोषारोपण करनेकी निन्दा करते हैं, हम भी उसकी निन्दा करते हैं। लेकिन जो लोग विचार करते हैं, दूसरे भी उनका विचार करनेके अधिकारी होते हैं। हम अपने इस अधिकारको नहीं छोड़ सकते। इससे हम यह आशा नहीं करते कि दूसरोंका कुछ उपकार होगा, लेकिन अपने अपमानके समय हमें जहाँसे जो कुछ आत्मप्रसाद मिल सकता हो, उसे हम नहीं छोड़ सकते।

हम यह बात देख चुके हैं कि हम लोगोंकी अत्युक्ति अलसबुद्धिका बाहरी प्रकाश है। इसके अतिरिक्त हम यह भी देखते हैं कि बहुत दिनों-तक पराधीन रहनेके कारण चित्तमें जो विकार हो जाता है वह भी इसका कुछ कारण है। इसका एक उदाहरण यह है कि हम लोगोंको जबतब, मौके बेमौके, आवश्यकता हो या न हो, खूब जोरसे चिल्लाकर कहना पड़ता है कि हम राजभक्त हैं, पर इसका कोई ठिकाना ही नहीं कि हम भक्ति करेंगे किसकी—कानूनकी किताबकी या कमिश्नर साहबके चपरासीकी या पुलिसके दारोगाकी? गवर्नमेन्ट तो है, लेकिन आदमी कहाँ है? हम हृदयका सम्बन्ध किसके साथ स्थापित करेंगे? आफिसको तो हम गलेके साथ लगाकर रख ही नहीं सकते। बीच बीचमें अप्रत्यक्ष राजाकी मृत्यु या अभिषेकके उपलक्ष्यमें जब तरह तर-हके चन्दोंके रूपमें राजभक्ति दुहनेका आयोजन होता है तब हमें डरते डरते उस सूखी भक्तिको छिपानेके लिये बहुत अधिक रकम और अत्युक्तिके द्वारा राजपात्रको बहुत अच्छी तरह और भरपूर भर देना पड़ता है। जो बात स्वाभाविक नहीं होती यदि उसी बातको प्रमाणित करना आवश्यक हो, तो लोग बहुत जोरसे चिल्लाने लगते हैं। वे यह बात भूल जाते हैं कि मृदु स्वरमें जो बे-सुर पकड़ा नहीं जा सकता, चिल्लानेमें वही बे-सुर चौगुना बढ़ जाता है।

लेकिन इस प्रकारकी अत्युक्तियोंके लिये अकेले हम ही लोग उत्तर-दायी नहीं हैं। यह बात ठीक है कि इस प्रकारकी अत्युक्तियोंसे परा-धीन जातिकी भीरुता और हीनता प्रकट होती है, लेकिन यह अवस्था इस बातका प्रमाण नहीं देती कि हमारे शासकोंमें महत्ता और सत्यके प्रति अनुराग है। यदि कोई प्रसन्नतापूर्वक यह कहे कि जलाशयका जल समतल नहीं है, तो यही समझना होगा कि यद्यपि यह बात विश्वास

करनेके योग्य नहीं है तौ भी उसका स्वामी यही बात सुनना चाहता है। आजकल अँगरेजलोग साम्राज्यके मदसे मत्त हैं, इसलिये वे तरह तरहसे यही सुनना चाहते हैं कि हम लोग राजभक्त हैं—हम लोग अपनी इच्छासे ही उनके चरणोंमे बिके हुए हैं। और फिर इस बातको वे सारे संसारमें ध्वनित और प्रतिध्वनित करना चाहते हैं।

और इधर हम लोगोंका किसी प्रकारका कुछ विश्वास भी नहीं किया जाता। इतना बड़ा देश एक दमसे निरस्त्र है। यदि दरवाजे पर कोई हिंसक पशु आजाय तो हम लोगोंके हाथमें दरवाजा बन्द कर लेनेके सिवा और कोई उपाय नहीं है। पर जब सारे संसारको साम्राज्यका बल दिखलाना होता है तब अटल भक्तिकी रट लगानेके समय हमारी आवश्यकता होती है। मुसलमान शासकोंके समय हम लोगोंका देशनायकता और सेनानायकताका अधिकार छीना नहीं गया था। मुसल्मान सम्राट् जब अपने दरबारमें अपने सरदारोंको साथ लेकर बैठा करते थे तब वह कोरा प्रहसन ही नहीं होता था। वे सरदार या राजेलोग सचमुच सम्राट्के सहायक थे, रक्षक थे, सम्मानभाजन थे। लेकिन आजकल राजाओंका सम्मान केवल मौखिक है। और उन्हें अपने पीछे पीछे घसीटकर देस परदेसमें राजभक्तिका अभिनय और आडम्बर कराना उन दिनोंकी अपेक्षा चौगुना बढ़ गया है। जिस समय इंग्लैण्डकी साम्राज्य-लक्ष्मी अपनी सजावट करने बैठती है उस समय उपनिवेशोंके सामान्य शासक लोग तो उसके माथेके मुकुटमें झिलमिलाने लगते हैं और भारतवर्षके प्राचीन वंशीय राजामहाराजा उस राजलक्ष्मीके पैरोंके नूपुरोंमें घुँघरुओंकी तरह बँध कर केवल झनकार देनेका काम करते हैं। यह बात इस बारके विलायती दरबारमें सारे संसारने अच्छी तरह देखी है। अँगरेजी साम्राज्यके जगन्नाथजीके मन्दिरमें जहाँ कनाडा,

न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया और दक्षिण आफ्रिका अपना पेट फुलाए हुए और हृष्टपुष्ट शरीर लेकर खूब रोबदाबके साथ पंडागिरी करते फिरते हैं वहाँ, दुबले पतले और जीर्णतनु भारतवर्षको कहींसे भी प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है । ठाकुरजीका भोग भी उसके भागमें बहुत थोड़ा पड़ता है, लेकिन जिस दिन संसारके राजपथमें ठाकुरजीका गगनभेदी रथ चलता है केवल उसी एक दिन रथका रस्सा पकड़कर खींचनेके लिये भारतवर्षकी बुलाहट होती है । उस दिन कितनी 'वाहवा' होती है, कितनी तालियाँ बजती हैं, कितना सौहार्द्र दिखलाया जाता है— उस दिन कर्जनकी निषेध-शृंखलासे मुक्त भारतीय राजा-महाराजाओंके मणि-माणिक्य लंदनके राजमार्गमें झिलमिलाते हुए दिखाई पड़ते हैं और राजभक्त राजाओंकी प्रशंसाकी झड़ी लगा दी जाती है । यह सब प्रशंसा भारतवर्ष चुपचाप सिर झुकाकर सुना करता है । यह सबकी सब पश्चिमी अत्युक्ति है । लेकिन यह झूठी और दिखौआ अत्युक्ति है, सच्ची नहीं ।

पूर्वीय लोगोंकी अत्युक्ति और अतिशयता प्रायः उन लोगोंके स्वभावकी उदारताके कारण ही होती है । पाश्चात्य अत्युक्ति बनावटी चीज है, उसे जाल भी कह सकते हैं । बड़े बड़े दिलदार मुगल-सम्राटोंके समय भी दिल्लीमें दरबार हुआ करता था । आज न तो वह दिन रह गया है और न वह दिल्ली रह गई है, लेकिन फिर भी दरबारकी नकल करनी ही पड़ती है । राजा लोग सदा ही पोलिटिकल एजेन्टरूपी राहुओंसे ग्रस्त रहते हैं । साम्राज्यके संचालनमें न तो उनके लिये कोई स्थान है, न उनका कोई काम है और न उन्हें किसी प्रकारकी स्वतंत्रता है । अचानक एक दिन अँगरेज सम्राट्के प्रतिनिधिने परित्यक्तमहिमा दिल्लीमें सलाम बटोरनेके लिये अँगरेजोंको तलब किया, और

अपनी जमीनपर लटकती हुई पोशाकका सिरा सिक्ख और राजपूत-कुमारोंके द्वारा उठवा लिया,—आकस्मिक उपद्रवकी तरह एक दिन एक समारोहका आग्नेय उच्छ्वास उठा और उसके बाद फिर सब कुछ वैसा ही शून्य और वैसा ही निष्प्रभ हो गया।

आजकलका भारतीय साम्राज्य दफतरों और कानूनोंसे चलता है। उसमें न तो तड़क-भड़क है, न गीत-वाद्य हैं और न प्रत्यक्ष मनुष्य ही हैं। अँगरेजोंका खेल-कूद, नाच-गाना, आमोद-प्रमोद सब कुछ उन्हीं लोगोंमें बद्ध रहता है। उस आनन्द-उत्सवकी बची बचाई भूमी भी भारतवर्षके सर्वसाधारणके लिये उस प्रमोदशालासे बाहर नहीं आने पाती। अँगरेजोंके साथ हम लोगोंका जो सम्बन्ध है वह आफिसके बँधे हुए कामों और हिसाब-किताबके बही-खातोंका ही है। प्राच्य सम्राटों और नवाबोंके साथ हम लोगोंका अन्न-वस्त्र, शिल्प-शोभा और आनन्द-उत्सवका बहुत कुछ सम्बन्ध था। जब उनके प्रासादमें आमोद-प्रमोदका दीप जलता था तब उसका प्रकाश बाहर चारों ओर प्रजाके घरोंपर भी पड़ता था। उन लोगोंके नौबतखानोंमें जो नौबत बजती थी उसकी आनन्द-ध्वनि एक दीनकी कुटीमें भी प्रतिध्वनित हो उठती थी।

अँगरेज सिविलियन लोग आपसके आमंत्रण-निमंत्रणमें सामाजिक दृष्टिसे सम्मिलित होनेके लिये बाध्य हैं। और जो व्यक्ति अपने स्वभावके दोषके कारण इस प्रकारके इन सब विनोद-व्यापारोंमें पटु नहीं होता, उसकी उन्नतिमें बहुतसी बाधाएँ आ पड़ती हैं। पर यह सब कुछ स्वयं अपने ही लोगोंके लिये है। जिस स्थानपर चार अँगरेज रहते हैं वहाँ आनन्द-मंगलका तो अभाव नहीं होता, लेकिन उस आनन्द-मंगलके कारण चारों ओर आनन्द-मंगल नहीं होता। हम लोग केवल

यही देखते हैं कि कुली लोग बाहर बैठकर त्रस्त चित्तसे पंखेकी रस्सी खींच रहे हैं, साईस घोड़ेकी लगाम पकड़कर चँवरसे मक्खियाँ और मच्छड़ उड़ा रहे हैं और दग्ध भारतवर्षके तप्त सम्बन्धसे दूर होनेके लिये शासक लोग शिमलेके पहाड़की तरफ भाग रहे हैं। भारतवर्षमें अँगरेजी राज्यका विशाल शासन-कार्य बिलकुल ही आनन्दहीन और सौन्दर्य्यहीन है। उसका सारा मार्ग केवल दफतरों और अदालतोंकी ही ओर है, जनसमाजके हृदयकी ओर बिलकुल नहीं है। तो फिर अचानक इसके बीचमें यह बिलकुल बेजोड़ दिखनेवाला दरबार क्यों किया जाता है? सारी शासन-प्रणालीके साथ उसका किस जगहसे सम्बन्ध है? पेड़ों और लताओंमें फूल होता है, आफिसोंकी कड़ियों और धरनोंमें माधवी मंजरी नहीं लगती! यह तो मानों मरुभूमिमें मरीचिकाके समान है। यह छाया तापके निवारणके लिये नहीं है, इस जलसे प्यास नहीं बुझेगी।

प्राचीन कालके दरबारोंमें सम्राट् लोग केवल अपना प्रताप ही नहीं प्रकट किया करते थे। वे सब दरबार किसीके सामने ऊँचे स्वरसे कोई बात प्रमाणित करनेके लिये नहीं किए जाते थे, वे स्वाभाविक होते थे। वे सब उत्सव बादशाहों और नवाबोंकी उदारताके उद्वेलित प्रवाह-स्वरूप हुआ करते थे। उस प्रवाहमें दानशीलता होती थी। उससे प्रार्थियोंकी प्रार्थनाएँ पूरी होती थीं, उससे दीनोंका अभाव दूर होता था, उससे आशा और आनन्दका दूर दूर तक प्रसार होता था। अब जो दरबार होनेवाला है उसके कारण बतलाओ किसे पीड़ितको आश्वासन मिला है, कौन दरिद्र सुखस्वप्न देख रहा है? यदि उस दिन कोई दुराशाग्रस्त अभागा अपने हाथमें कोई प्रार्थनापत्र लेकर सम्राटके प्रतिनिधिके पास जाना चाहे तो क्या उसे पुलिसके हाथकी मार खाकर रोते हुए न लौटना पड़ेगा?

इसीलिये कहते हैं कि आगामी दिल्ली दरबार पाश्चात्य अत्युक्ति और वह भी झूठी वा दिखौआ अत्युक्ति है। इधर तो हिसाब किताब और दूकानदारी है और उधर बिना प्राच्य सम्राटोंकी नकल किए काम नहीं चलता। हम लोग देशव्यापी अनशनके दिनोंमें इस अमूलक दरबारका आडम्बर देखकर डर गए थे, इसीलिये हमारे शासकोंने हमें आश्वासन देते हुए कहा था कि इसमें व्यय बहुत अधिक नहीं होगा और जो कुछ होगा भी उसका प्रायः आधा वसूल कर लिया जा सकेगा। लेकिन जिन दिनोंमें बहुत समझ-बूझकर रुपया खर्च करना पड़ता है उन दिनोंमें भी बिना उत्सव किए काम नहीं चलता। जिन दिनों खजानेमें रुपया कम होता है उन दिनों यदि उत्सव करनेकी आवश्यकता हो तो अपना खर्च बचानेकी ओर दृष्टि रखकर दूसरोंके खर्चकी ओरसे उदासीन रहना पड़ता है। इसीलिये चाहे आगामी दिल्ली दरबारके समय सम्राटके प्रतिनिधि थोड़े ही खर्चमें काम चला लें, लेकिन फिर भी आडम्बरको बहुत बढ़ानेके लिये वे राजा महाराजाओंका अधिक खर्च करावेंगे ही। प्रत्येक राजा महाराजाको कुछ हाथी, कुछ घोड़े और कुछ आदमी अपने साथ लाने ही पड़ेंगे। सुनते हैं कि इस सम्बन्धमें कुछ आज्ञा भी निकली है। उन्हीं सब राजा महाराजाओंके हाथी-घोड़ों और लाव-लश्करसे, यथासंभव थोड़ा खर्च करनेमें चतुर सम्राटके प्रतिनिधि जैसे तैसे इस बड़े कामको चला ले जायँगे। इससे चतुरता और प्रतापका परिचय मिलता है। लेकिन प्राच्य सम्प्रदायके अनुसार जो उदारता और वदान्यता राजकीय उत्सवका प्राण समझी जाती है वह इसमें नहीं है। एक आँख रुपयेकी थैलीकी ओर और दूसरी आँख पुराने बादशाहोंके अनुकरण-कार्यकी ओर रखनेसे यह काम नहीं चल सकता। जो व्यक्ति यह काम स्वभावतः ही

कर सकता हो वही कर सकता है और उसीको यह शोभा भी देता है।

इसी बीचमें हमारे देशके एक छोटेसे राजाने सम्राटके अभिषेकके उपलक्ष्यमें अपनी प्रजाको कई हजार रुपयोंकी मालगुजारी माफ कर दी है। हमने तो इससे यही समझा कि इससे भारतवर्षीय इन राजा साहबने अँगरेज शासकोंको इस बातकी शिक्षा दी है कि भारतवर्षमें राजकीय उत्सव किस प्रकार किया जाता है। लेकिन जो लोग नकल करते हैं वे सच्ची शिक्षा ग्रहण नहीं करते, वे लोग केवल बाहरी आडम्बर ही कर सकते हैं। तपा हुआ बालू सूर्य्यके समान ताप तो देता है परन्तु प्रकाश नहीं देता। इसीलिये हमारे देशमें तपे हुए बालूके तापको असह्य अतिशयताके उदाहरणमें लेते हैं। आगामी दिल्ली दरबार भी इसी प्रकार अपना प्रताप तो फैलावेगा लेकिन लोगोंको आशा और आनन्द न देगा। केवल दम्भ-प्रकाश सम्राटको भी शोभा नहीं देता। उदारताके द्वारा, दया-दाक्षिण्यके द्वारा दुस्सह दम्भको छिपा रखना ही यथार्थ राजोचित कार्य है। आगामी दिल्ली दरबारमें भारतवर्ष अपने सारे राजा महाराजाओंको लेकर वर्त्तमान सम्राट्के प्रतिनिधिके सामने अधीनता स्वीकार करने जायगा। लेकिन सम्राट् उसे कौनसा सम्मान, कौनसी सम्पत्ति, कौनसा अधिकार देंगे? कुछ भी नहीं। यह बात भी नहीं है कि इससे केवल भारतवर्षकी अवनतिकी ही स्वीकृति हो। इस प्रकारके कोरे आकस्मिक दरबारकी भारी कृपणतासे प्राच्य जातिके सामने अँगरेजोंकी राजमहिमा भी बिना घटे नहीं रह सकती।

दरबारके सब काम अँगरेजी प्रथाके अनुसार सम्पन्न होंगे। चाहे वह प्रथा हमारे यहाँकी प्रथासे मिलती जुलती न हो, लेकिन फिर भी हम लोग

इस सम्बन्धमें चुप रहनेके लिये वाध्य हैं। हमारे देशमें पहले बराबरीके किसी राजाके आगमनके समय अथवा राजकीय शुभ कार्योंके समय जो सब उत्सव और आमोद आदि होते थे उनमें सारा व्यय राजा अपने पाससे ही देता था। जन्मतिथि आदि अनेक प्रकारके अवसरोंपर प्रजा सदा राजाका अनुग्रह प्राप्त करती थी। लेकिन आजकल सब बातें इसके बिलकुल विपरीत हैं। राजाके यहाँ चाहे शादी हो चाहे गमी, उसका लाभ हो चाहे हानि, लेकिन उसकी ओरसे सदा प्रजाके सामने चन्देका खाता ही रखा जाता है और राजा तथा रायबहादुर आदि खिताबोंकी राजकीय नीलामकी दूकान जम जाती है। अकबर और शाहजहाँ आदि बड़े बड़े बादशाह अपनी कीर्त्ति स्वयं अपने व्ययसे ही खड़ी कर गए हैं। लेकिन आजकलके कर्मचारी लोग तरह तरहके छलों और तरह तरहके कौशलोंसे प्रजासे ही अपने बड़े बड़े कीर्त्तिस्तम्भोंका खर्च वसूल कर लेते हैं। सम्राटके प्रतिनिधिने सूर्यवंशीय क्षत्रिय राजाओंको सलाम करनेके लिये अपने पास बुलाया है, पर यह तो नहीं मालूम होता कि सम्राटके इन प्रतिनिधि महाशयने अपने दानसे कौनसा बड़ा भारी तालाब खोदवाया है, कौनसी धर्मशाला बनवाई है और देशके लिये शिक्षा और शिल्पचर्चाको कौनसा आश्रय दिया है? प्राचीनकालके बादशाह, नवाब और राजकर्मचारीगण भी इस प्रकारके मंगलकार्योंके द्वारा प्रजाके हृदयके साथ सम्बन्ध रखते थे। आजकल राजकर्मचारियोंका तो अभाव नहीं है और उनके बड़े बड़े वेतन भी संसारमें विख्यात हैं; परन्तु ये लोग इस देशमें दान और सत्कर्म करके अपने अस्तित्वका कोई चिह्न नहीं छोड़ जाते। ये लोग विलायती दूकानोंसे ही अपना सारा सामान खरीदते हैं, अपने विलायती संगीसाथियोंके साथ ही आमोद-प्रमोद करते हैं और विलायतके किसी कोनेमें बैठकर अन्तिम कालतक अपनी पेन्शिनका भोग किया करते हैं।

भारतवर्षमें लेडी डफरिनके नामसे जो सब अस्पताल खुले हैं उनके लिये इच्छासे अथवा अनिच्छासे भारतवर्षकी प्रजाने ही रुपए एकत्र किए हैं। यह प्रथा बहुत अच्छी तो हो सकती है, लेकिन यह भारतवर्षकी प्रथा नहीं है। इसलिये इस प्रकारके सार्वजनिक कार्य हम लोगोंका हृदय स्पर्श नहीं करते। न करें, लेकिन फिर भी विलायतके राजा विलायतकी प्रथाके अनुसार ही चलेंगे, इसमें कहने सुननेकी कोई बात नहीं है। लेकिन कभी देशी और कभी विलायती बननेसे कोई भी शोभायुक्त नहीं दिखता। विशेषतः आडम्बरके समय तो देशी प्रथा और खर्च आदिके समय विलायती प्रथाके अनुसार चलना हम लोगोंको बहुत असंगत जान पड़ता है। हम लोगोंके विदेशी शासक यह समझ बैठे हैं कि केवल आडम्बर दिखलानेसे ही प्राच्य हृदय भूल जाता है। इसीलिये वे तीस करोड़ तुच्छ जीवोंको अभिभूत करनेके लिये बड़ी चिन्ता और चेष्टासे और खर्चकी खूब कोर-कसर करके एक बहुत बड़ी अत्युक्तिकी तैयारी कर रहे हैं। वे यह नहीं जानते कि प्राच्य हृदय दानसे, दया-दाक्षिण्यसे और अबारित मंगल-अनुष्ठानसे ही भूलता है। हम लोगोंका जो उत्सव समारोह होता है वह आहूत और अनाहूत सभीके लिये आनन्द-समागम होता है। उसमें "एहि एहि, देहि देहि, पीयताम् भुज्यताम्" के रवको कहीं भी विराम या रोक नहीं। इसे प्राच्य अतिशयताका लक्षण कह सकते हैं लेकिन यह अतिशयता सच्ची है, स्वाभाविक है। और जो दरबार पुलिसके द्वारा सीमाबद्ध, संगीतोंके द्वारा कंटकित, संशयके द्वारा त्रस्त, सतर्क कृपणताके द्वारा संकीर्ण और दया तथा दानसे हीन है, जो केवल दम्भके प्रचारके लिये है वह पाश्चात्य अत्युक्ति है। उससे हम लोगोंका हृदय पीड़ित और लांछित होता है। उससे हम लोगोंकी कल्पना आकृष्ट

नहीं होती बल्कि प्रतिहत हुआ करती है। उसके मूलमें न तो उदारता है और न प्रचुरता।

यह तो हुई नकल करनेकी अत्युक्ति, लेकिन यह बात सभी लोग जानते हैं कि नकल केवल बाहरी आडम्बर कराके कार्यके मूल उद्देश्यको छुड़ा देती है। इसलिये अँगरेज लोग यदि अपना अँगरेजी ठाठ छोड़कर नवाबी ठाठ करेंगे तो उससे जो अतिशयता प्रकट होगी वह बहुत कुछ कृत्रिम होगी, इसलिये उसके द्वारा उनकी जातिगत अत्युक्तिका ठीक ठीक पता नहीं लग सकता। सच्ची विलायती अत्युक्तिका भी एक दृष्टान्त हमें याद आता है। गवर्नमेन्टने हम लोगोंकी दृष्टिके सामने उस दृष्टान्तको पत्थरके स्तम्भके रूपमें स्थायी बनाकर खड़ा कर दिया है, इसीलिये वह दृष्टान्त हमें सहसा याद आ गया। वह है कलकत्तेकी काल-कोठरीकी अत्युक्ति।

हम पहले ही कह चुके हैं कि प्राच्य अत्युक्ति मानसिक शिथिलता है। हम लोग कुछ प्रचुरताप्रिय हैं। हम लोगोंको बहुत किफायत या कंजूसी अच्छी नहीं लगती। देखिए न हम लोगोंके कपड़े ढीले-ढाले होते हैं और आवश्यकतासे बहुत अधिक या बड़े होते हैं, लेकिन अँगरेजोंके कपड़ोंकी काट-छाँट बिलकुल पूरी पूरी होती है। यहाँतक कि हम लोगोंके मतसे वे कोर-कसर करते करते और काटते-छाँटते शालीनताकी सीमासे बहुत दूर जा पड़े हैं। हम लोग या तो बहुत अधिक नग्न होते हैं और या बहुत अधिक आवृत। हम लोगोंकी बात-चीत भी इसी तरहकी होती है। वह या तो बिलकुल मौनके आस-पास होगी और नहीं तो उदार भावसे बहुत अधिक विस्तृत होगी। हम लोगोंका व्यवहार भी वैसा ही होता है, वह या तो बहुत अधिक संयत होता है और या हृदयके आवेगसे उछलता हुआ होता है।

लेकिन अँगरेजोंकी अत्युक्तिमें वह स्वाभाविक प्रचुरता नहीं है। वह अत्युक्ति होने पर भी क्षीणकाय होती है। वह अपनी अमूलकताको बहुत चतुराईसे दबाकर ठीक समूलकताकी तरह सजाकर दिखला सकती है। प्राच्य अत्युक्तिमें 'अति' की ही शोभा है, वही उसका अलंकार है। इसीलिये वह निस्संकोच भावसे बाहर अपनी घोषणा करती है। पर अँगरेजी अत्युक्तिकी केवल 'अति' ही गम्भीर भावसे अन्दर रह जाती है और बाहर वह वास्तवका संयत साज पहनकर खालिस सत्यके साथ एक पंक्तिमें आ बैठती है।

यदि हम लोग होते तो कहते कि कलकत्तेकी कालकोठरीमें हजारों आदमी मर गए। हम लोग इस समाचारको एक-दमसे अत्युक्तिके बीच-दरियामें बहा देते। लेकिन हालोवेल साहबने जन-संख्याको बिलकुल निर्दिष्ट करके और उसकी सूची देकर काल-कोठरीकी लंबाई-चौड़ाई बिलकुल फुटके हिसाबसे नाप-जोखकर बतला दी है! इस सचमें कहीं कोई छिद्र नहीं है। लेकिन उन्होंने इस बातका विचार नहीं किया कि इस विषयमें उधर गणितशास्त्र उनका प्रतिवादी हो बैठा है। अक्षयकुमार मैत्रेय महाशयने अपने 'सिराजुद्दौला' नामक ग्रंथमें इस बातकी अच्छी तरह आलोचना की है कि हालोवेल साहबका झूठ कितनी जगहोंपर और कितने रूपसे पकड़ा जाता है। हालोवेल साहबकी यह अत्युक्ति हम लोगोंके उपदेष्टा लार्ड कर्जनकी प्रतियोगिता करनेके लिए राजपथके बीचमें जमीन फोड़कर स्वर्गकी ओर पत्थरका अँगूठा उठाये हुए खड़ी है।

प्राच्य और पाश्चात्य साहित्यसे दो भिन्न प्रकारकी अत्युक्तियोंका उदाहरण दिया जा सकता है। प्राच्य अत्युक्तिका उदाहरण तो अलिफ लैलाका किस्सा है और पाश्चात्य अत्युक्तिका उदाहरण रुडयार्ड किप्लि-

गका 'किम्' नामक ग्रन्थ और उनकी भारतवर्षीय चित्रावली है। अलिफलैलामें भी भारतवर्ष और चीन देशकी बातें हैं, लेकिन सभी लोग जानते हैं कि वे केवल किस्सा कहानी हैं। यह बात इतनी अधिक स्पष्ट है कि उससे काल्पनिक सत्यके अतिरिक्त और किसी प्रकारके सत्यकी कोई आशा ही नहीं कर सकता। लेकिन किप्लिंगने अपनी कल्पनाको छिपाकर सत्यका एक ऐसा आडम्बर खड़ा कर दिया है कि जिस प्रकार किसी हलफ लेकर कहनेवाले गवाहसे लोग प्रकृत वृत्तान्तकी आशा करते हैं, उसी प्रकार किप्लिंगकी कहानीसे ब्रिटिश पाठक भारतवर्षके प्रकृत वृत्तान्तकी आशा किए बिना नहीं रह सकते।

ब्रिटिश पाठकोंको इसी प्रकार छल करके भुलाया जाता है। क्योंकि वे वास्तविक बातके प्रेमी होते हैं। पढ़नेके समय भी उन्हें वास्तविक बात ही चाहिए और खिलौनेको भी जबतक वे 'वास्तव' न कर डालें तबतक उन्हें चैन नहीं मिलता। हमने देखा है कि ब्रिटिश भोजमें खरगोश पका तो लिया गया है, लेकिन उसकी आकृति यथासंभव ज्योंकी त्यों रखी गई है। उसका केवल सुखाद्य होना ही आनन्दजनक नहीं है, बल्कि ब्रिटिश भोगी इस बातका भी प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहते हैं कि वह वास्तवमें एक जन्तु है। अँगरेजी भोजन केवल भोजन ही नहीं होता, उसे प्राणि-वृत्तान्तका एक ग्रन्थ कह सकते हैं। जब किसी व्यंजनमें किसी पक्षीके ऊपर भूने हुए मैदेका आवरण चढ़ाया जाता है, तब उस पक्षीके पर काटकर उस आवरणके ऊपरसे जोड़ दिए जाते हैं। उनके यहाँ वास्तविकता इतनी आवश्यक है। कल्पनाकी सामामें भी ब्रिटिश पाठक 'वास्तव' को ढूँढ़ते हैं, इसीलिये बेचारी कल्पनाको भी विवश होकर जीजानसे 'वास्तव' का स्वाँग रचना पड़ता है। जो व्यक्ति किसी असंभव स्थानमें भी साँप

देखना चाहता हो, उस व्यक्तिको धोखा देनेके लिये सँपेरेको भी बाध्य होना पड़ता है। वह साँप निकालता तो अपनी झोलीमेंसे ही है, लेकिन दिखलाता इस प्रकार है कि मानो वह दर्शकके दुपट्टेमेंसे ही निकला हो। किप्लिंगने साँप निकाला तो अपनी कल्पनाकी झोलीमेंसे ही, लेकिन उनकी निपुणताके कारण अँगरेजी पाठकोंने ठीक यही समझा कि एशियाके दुपट्टेमेंसे ही दलके दल साँप निकल रहे हैं।

लेकिन बाहरके वास्तव सत्यके लिये हम लोग इस प्रकार एकान्त लोलुप नहीं हैं। कल्पनाको कल्पना समझनेपर भी हमें उसमें आनन्द मिलता है। इसीलिये जब हम कहानी सुनने बैठते हैं तब स्वयं ही अपने आपको भुला सकते हैं। हमारे लिये लेखकको किसी प्रकारका छल नहीं करना पड़ता। उसे काल्पनिक सत्यको वास्तव सत्यकी दाढ़ी मूँछ नहीं लगानी पड़ती। बल्कि हम लोग और भी उलटी तरफ जाते हैं। हम लोग वास्तव सत्यपर कल्पनाका रंग चढ़ाकर उसे अप्राकृतिक बना सकते हैं; इससे हम लोगोंको किसी प्रकारका दुख नहीं होता। हम लोग वास्तव सत्यको भी कल्पनाके साथ मिला देते हैं और युरोप कल्पनाको भी वास्तव सत्यके रूपमें खड़ा कर देता है तब छोड़ता है। अपने इस स्वभाव-दोषके कारण हम लोगोंकी बहुत कुछ हानि भी हुई है। और क्या अँगरेजोंके स्वभावसे उन लोगोंकी कोई हानि नहीं हुई? गुप्त झूठ क्या उन लोगोंके घर और बाहर विहार नहीं कर रहा है? उन लोगोंके यहाँ समाचारपत्रोंके समाचार गढ़े जाते हैं और यह बात सभी लोग जानते हैं कि उन लोगोंके व्यवसाय-मन्दिरोंमें और शेअर (Share) खरीदने-बेचनेके बाजारोंमें किस प्रकार सर्वनाशक झूठका व्यवहार होता है। हम लोग यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि विलायती विज्ञापनोंकी अत्युक्तियाँ और मिथ्या उक्तियाँ भिन्न भिन्न

वर्णों, भिन्न भिन्न चित्रों और भिन्न भिन्न अक्षरोंमें देश-विदेशोंमें किस प्रकार अपनी घोषणा करती हैं। अब हम लोग भी निर्लज्ज होकर और उन्हींमें मिलकर इस प्रकारकी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं! विलायतमें जिस प्रकार राजनीतिक क्षेत्रमें झूठे बजट तैयार किए जाते हैं, प्रश्नोंके जिस प्रकार चतुराईसे गढ़े हुए और दूसरोंको धोखेमें डालनेवाले उत्तर दिए जाते हैं और अभियोग चलाकर एक पक्षपर दूसरे पक्षवाले जो सब दोषारोपण करते हैं, वे सब यदि मिथ्या हों तब तो लज्जाका विषय है और यदि वे मिथ्या न हों तो इसमें सन्देह नहीं कि वे शंकाजनक अवश्य हैं। वहाँकी पार्लिमेन्टसंगत भाषामें और कभी कभी उसका उल्लंघन करके भी बड़े बड़े लोगोंको झूठा, धोखेबाज और सच्ची बातको छिपानेवाला कह दिया जाता है। या तो इस निन्दावादको अत्युक्ति-परायणता कहना होगा और नहीं तो यह कहना पड़ेगा कि इंग्लैण्डकी राजनीति झूठसे बिलकुल जीर्ण है।

जो हो, इस आलोचनासे यह बात मनमें आती है कि अत्युक्तिको स्पष्ट अत्युक्तिके रूपमें रखना ही अच्छा है। उसे कौशलसे काट-छाँट-कर वास्तवके दलमें मिलानेकी चेष्टा करना अच्छा नहीं है—उसमें बहुत अधिक विपत्तियाँ हैं।

इम्पीरियलिज्म ।

(साम्राज्यवाद ।)

विलायतमें आजकल लोगोंको इम्पीरियलिज्म या साम्राज्यवादका एक नशासा हो गया है । उस देशमें आजकल बहुतसे लोगोंको यही धुन सवार है कि इंग्लैण्डके समस्त अधीन देशों और उपनिवेशों आदिको मिलाकर एक कर दिया जाय और अँगरेजी साम्राज्यको एक बड़ा उपसर्ग बना डाला जाय । विश्वामित्रने एक नए जगतकी सृष्टि करनेका उद्योग किया था । बाइबिलमें एक राजाका वर्णन है जिसने स्वर्गकी प्रतिस्पर्धा करके एक बहुत ऊँचा स्तम्भ खड़ा करनेकी चेष्टा की थी । स्वयं रावणके सम्बन्धमें भी इसी प्रकारकी एक जनश्रुति प्रचलित है ।

इस प्रकारके बहुत बड़े बड़े काम करनेके विचार इस संसारमें समय समयपर बहुतसे लोगोंके मनमें आए हैं । ऐसे ऐसे काम कभी पूरे नहीं उतरते । पर हाँ, वे नष्ट होनेसे पहले संसारमें कुछ न कुछ अमंगल या अनर्थ अवश्य कर जाते हैं ।

इस विचारने लार्ड कर्जनके मनमें भी जो उथलपुथल मचाई है उसका आभास उनकी हालकी एक वक्तृतासे मिलता है । हम देखते हैं कि हमारे देशके कुछ समाचारपत्र कभी कभी इस विषयमें थोड़ा बहुत उत्साह प्रकट किया करते हैं । वे कहा करते हैं कि

बात है; भारतवर्षको ब्रिटिश साम्राज्यमें एकात्म होनेका अधिकार दीजिए।

केवल बातोंके भरोसे ही तो कोई अधिकार मिल नहीं जाता—यहाँ तक कि यदि कागजपर पक्की लिखा पढ़ी हो जाय तो भी दुर्बल मनुष्योंको अपने स्वत्वोंका उद्धार करना बहुत कठिन होता है। इसीलिये जब हम देखते हैं कि जो लोग हमारे अधिकारी या शासक हैं वे जब इम्पीरियल-वायुसे ग्रस्त हैं तब हम नहीं समझते कि इससे हमारा कल्याण होगा।

पाठक कह सकते हैं कि तुम व्यर्थ इतना भय क्यों करते हो। जिसके हाथमें शक्ति है वह चाहे इम्पीरियलिज्मका आन्दोलन करे और चाहे न करे, पर यदि वह तुम्हारा अनिष्ट करना चाहे तो सहजमें ही कर सकता है।

लेकिन हम कहते हैं कि वह सहजमें हमारा अनिष्ट नहीं कर सकता। हजार हो, पर फिर भी दया और धर्मको एकदमसे छोड़ देना बहुत कठिन है। लज्जा भी कोई चीज है। लेकिन जब कोई व्यक्ति किसी बड़े सिद्धान्तकी आड़ पा जाता है तब उसके लिये निष्ठुरता और अन्याय करना सहज हो जाता है।

बहुतसे लोगोंको योंही किसी जन्तुको कष्ट पहुँचानेमें बहुत दुःख होता है। लेकिन जब उसी कष्ट देनेका नाम 'शिकार' रख दिया जाता है तब वे ही लोग बड़े आनन्दसे बेचारे हत और आहत पक्षियोंकी सूची बढ़ानेमें अपना गौरव समझते हैं। यदि कोई मनुष्य बिना कारण या उपलक्ष्यके किसी पक्षीके डैने तोड़ दे तो अवश्य ही वह शिकारीसे बढ़कर निष्ठुर माना जायगा; लेकिन उसके निष्ठुर माने जानेसे पक्षीको किसी प्रकारका विशेष सन्तोष नहीं हो सकता।

बल्कि असहाय पक्षियोंके लिये स्वभावतः निष्ठुर व्यक्तिकी अपेक्षा शिकारियोंका दल बहुत अधिक कष्टदायक है।

जो लोग इम्पीरियलिज्मके ध्यानमें मस्त हैं इसमें सन्देह नहीं कि वे लोग किसी दुर्बलके स्वतंत्र अस्तित्व और अधिकारके सम्बन्धमें बिना कातर हुए निर्मोही हो सकते हैं। संसारमें सभी ओर इस बातके दृष्टान्त देखनेमें आते हैं।

यह बात सभी लोग जानते हैं कि फिनलैण्ड और पोलैण्डको अपने विशाल कलेवरमें बिलकुल अज्ञात रीतिसे अपने आपमें पूरी तरहसे मिलानेके लिये रूस कहाँतक जोर लगा रहा है।* यदि रूस अपने मनमें यह बात न समझता कि इम्पीरियलिज्म नामक एक बहुत बड़े स्वार्थके लिये अपने अधीनस्थ देशोंकी स्वाभाविक विषमताएँ बलपूर्वक दूर कर देना ही आवश्यक है तो उसके लिये इतना अधिक जोर लगाना कदापि सम्भव न होता। रूस अपने इसी स्वार्थको पोलैण्ड और फिनलैण्डका भी स्वार्थ समझता है।

लार्ड कर्जन भी इसी प्रकार कह रहे हैं कि अपनी जातीयताकी बात भुलाकर साम्राज्यके स्वार्थको ही अपना स्वार्थ बना डालो।

यदि यह बात किसी शक्तिमानसे कही जाय तो उसके लिये इससे डरनेका कोई कारण नहीं है; क्योंकि वह केवल बातोंसे नहीं भूलेगा। उसके लिये इस बातकी आवश्यकता है कि वास्तवमें उस बातसे उसका स्वार्थ अच्छी तरह सिद्ध हो। अर्थात् यदि ऐसे अवसरपर कोई उसे बलपूर्वक अपने दलमें मिलाना चाहेगा तो जबतक वह अपने स्वार्थको भी यथेष्ट परिमाणमें विसर्जित न करेगा तबतक उसे अपने

* गत महायुद्धके कारण यह स्थिति बिलकुल लुप्त हो गई है।—अनुवादक।

अनुकूल न कर सकेगा। अतएव उस स्थानपर बिना बहुत कुछ शहद गिराए (लालच दिए) और तेल खर्च किए काम नहीं चलता।

इंग्लैण्डके उपनिवेश आदि इस बातके दृष्टान्त हैं। अँगरेज बराबर उनके कानमें यही मंत्र फूँकते आ रहे हैं—"यदेतत् हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव।" लेकिन वे केवल मंत्रमें भूलनेवाले नहीं हैं–वे अपने सौदेके रुपए गिन लेते हैं।

लेकिन हमारे लिये सौदेके रुपयोंकी बात तो दूर रही, दुर्भाग्यवश मंत्रकी भी आवश्यकता नहीं होती।

जब हम लोगोंका समय आता है तब इसी बातका विचार होता है कि विदेशियोंके साथ भेदबुद्धि रखना जातीयताके लिये तो आवश्यक है परन्तु वह इम्पीरियलिज्मके लिये प्रतिकूल है, इसलिये उस भेदबुद्धिके जो कारण हैं उन सबको दूर कर देना ही कर्त्तव्य है।

लेकिन जब ये कारण दूर किए जायँगे तब उस एकताको भी किसी प्रकार जमने या बढ़ने न देना ही ठीक होगा जो इस समय देशके भिन्न भिन्न भागोंमें होने लगी है। वे बिलकुल खण्ड खण्ड और चूर्ण अवस्थामें ही रहें, तभी उन्हें हजम करना सहज होगा।

भारतवर्ष सरीखे इतने बड़े देशको मिलाकर एक कर देनेमें बड़ा भारी गौरव है। प्रयत्न करके इसे विच्छिन्न और अलग अलग रखना अँगरेज सरीखी अभिमानी जातिके लिये लज्जाकी बात है।

लेकिन इम्पीरियलिज्मके मंत्रसे यह लज्जा दूर हो जाती है। ऐसी दशामें जब कि साम्राज्यमें मिलकर एक हो जाना ही भारतवर्षके लिये परमार्थ-लाभ है तब उस महान् उद्देश्यसे इस देशको चक्कीमें पीस कर विश्लिष्ट या खण्ड खण्ड कर डालना ही 'ह्यूमैनिटी' (humanity=मनुष्यत्व) है।

भारतवर्षके किसी स्थानमें उसकी स्वाधीन शक्तिको संचित न होने देना अँगरेजोंकी सभ्य नीतिके अनुसार अवश्य ही लज्जास्पद है। लेकिन यदि इम्पीरियलिज्मका मंत्र पढ़ दिया जाय तो जो बात मनुष्यत्वके लिये परम लज्जाकी है वही राजनीतिकताके लिये परम गौरवकी हो जाती है।

अपने निश्चिंत एकाधिपत्यके लिये एक बड़े देशके असंख्य लोगोंको निरस्त्र करके उन्हें सदाके लिये पृथ्वीके जनसमाजमें पूर्णरूपसे निःस्वत्व और निरुपाय कर देना कितना बड़ा अधर्म—कितनी अधिक निष्ठुरता है; इसकी व्याख्या करनेकी आवश्यकता नहीं है। लेकिन इस अधर्मकी ग्लानिसे अपने मनको बचानेके लिये किसी बड़े सिद्धान्तकी आड़ लेनी पड़ती है।

सेसिल रोड्स नामक एक साहब इम्पीरियल-वायुसे ग्रस्त थे। यह बात सभी लोग जानते हैं कि इसीलिये दक्षिण आफ्रिकाके बोअरोंकी स्वतंत्रता लुप्त करनेके वास्ते उनके दलके लोगोंने किस प्रकारका आग्रह किया था।

व्यक्तिगत व्यवहारमें जिन कामोंको लोग चोरी और मिथ्या आचार कहते हैं, जो बातें जाल, खून और डकैती कहलाती हैं, यदि उन कार्यों और बातोंका किसी 'इज्म'—प्रत्यययुक्त शब्दसे संशोधन कर दिया जाय तो वे कहाँतक गौरवका विषय हो जाती हैं, इसके सैकड़ों प्रमाण विलायती इतिहासके मान्य व्यक्तियोंके चरित्रोंमें मिलते हैं।

इसीलिये जब हम अपने शासकोंके मुँहसे इम्पीरियलिज्मका आभास पाते हैं तब स्थिर नहीं रह सकते। यदि इतने बड़े रथके पहिएके नीचे हम लोगोंका मर्म्मस्थान पिस जाय और इसपर हम धर्म्मकी भी दुहाई देने लगें तो उसे कोई न सुनेगा। क्यों कि मनुष्य केवल

इसी भयसे अपने बड़े बड़े कार्य्योंमें धर्म्मका अधिकार नहीं होने देना चाहते कि जिसमें पीछेसे कार्य नष्ट न हो जाय।

प्राचीन यूनानमें जब प्रबल एथीनियन लोगोंने दुर्बल मेलियन लोगोंका द्वीप अन्याय और निष्ठुरतासे ले लेनेकी तरकीब की थी, तब दोनों देशोंमें जिस प्रकारका वादानुवाद हुआ था उसका कुछ नमूना थुकिदिदीज नामक ग्रीक इतिहासवेत्ताने दिया है। नीचे उसका कुछ अंश उद्धृत किया जाता है। इसे पढ़कर पाठक समझ सकेंगे कि इम्पीरियलिज्मका सिद्धान्त युरोपमें कितना पुराना है और जिस पालिटिक्स (Potitics=राजनीति) की भित्तिपर युरोपीय सभ्यताकी इमारत बनी है उसके अन्दर कैसी दारुण क्रूरता छिपी हुई है।

Athenians. But you and we should say what we really think, and aim only at what is possible, for we both alike know that into the discussion of human affairs the question of justice only enters where the pressure of necessity is equal, and that the powerful exact what they can, and the weak grant what they must × × × And we will now endeavour to show that we have come in the interests of our empire, and that in what we are about to say we are only seeking the preservation of your city. For we want to make you ours with the least trouble to ourselves and it is for the interest of us both that you should not be destroyed.

(एथी०—लेकिन आपको और हमें वही बातें कहनी चाहिए जो वास्तवमें हम अपने मनमें सोचते हों और ऐसी ही बातपर हम लोगोंको लक्ष्य रखना चाहिए जो सम्भव हो। क्यों कि हम दोनों ही समान

रूपसे समझते हैं कि मानवी विषयोंके वादानुवादमें न्यायका प्रश्न वहीं आता है जहाँ कि आवश्यकताका जोर बराबर होता है। और हम लोग यह भी जानते हैं कि शक्तिशाली मनुष्य जो कुछ वसूल कर सकता है वह वसूल कर लेता है और दुर्बलको जो कुछ देना चाहिए वही वह दे देता है। × × × × × और अब हम लोग यह सिद्ध करनेका प्रयत्न करेंगे कि हम लोग अपने साम्राज्यके हितोंकी रक्षा करनेके लिये आए हैं और जो कुछ अभी कहना चाहते हैं उसमें हमारा उद्देश्य केवल यही है कि आपके नगरकी रक्षा हो। क्यों कि हम लोग अपने आपको यथासंभव बहुत ही कम कष्ट पहुँचाए हुए, आप लोगोंको अपना बनाना चाहते हैं और इसमें आपका और हमारा दोनोंका हित है कि आपका नाश न हो।)

Mel. It may be your interest to be our masters, but how can it be ours to be your slaves?

(मेल०—यदि आप हमारे स्वामी बन जायँ तो इसमें आपका तो हित हो सकता है, परन्तु यदि हम आपके गुलाम बन जायँ तो इसमें हमारा हित कैसे हो सकता है?)

Ath. To you the gain will be that by submission you will avert the worst; and we shall be all the richer for your preservation.

(एथी०—यदि आप हमारी बात मानकर आत्मसमर्पण कर देंगे तो इससे आपका तो यह लाभ होगा कि आप बहुत सी दुर्दशाओंसे बच जायँगे और हमारा यह लाभ होगा कि आपकी रक्षा करनेके लिये हम और अधिक सम्पन्न हो जायँगे।)

राजभक्ति ।

राजकुमार आए। बड़े बड़े राजकर्मचारियोंके जितने लड़के थे, सब उन्हें चारों तरफसे घेरकर बैठ गए। उनके बीचमें जरासा भी व्यवधान न रहा कि बाहरसे दूसरा कोई प्रवेश कर सके। इस व्यवधानको और भी अधिक संकीर्ण करनेके लिये कोतवालका लड़का पहरा देने लगा। इसके लिये उसे एक अच्छा 'सिरोपाव' मिला। इसके बाद ढेरकी ढेर आतिशबाजी उड़ाई गई और राजपुत्र जहाजपर चढ़कर चले गए। बस, हमारी कहानी समाप्त हो गई।

यह बात क्या हुई? केवल एक कहानी। राज्य और राजपुत्रका यह सुदुर्लभ मिलन जितना सुदूर, जितना स्वल्प और जितना निरर्थक हो सकता था, उतना किया गया। सारे देशका पर्यटन करके, उसे (देशको) जितना कम जाना जा सकता था और उसके साथ जितना कम योगस्थापन हो सकता था, वह बहुत बड़ा खर्च करके बड़ी निपुणता और बड़े भारी समारोहके साथ सम्पूर्ण किया गया।

अवश्य ही हमारे राजपुरुषोंने इस विषयमें कोई पालिसी सोची होगी— उनका कोई गहरा मतलब होगा—नहीं तो वे इतना व्यर्थ खर्च क्यों करते? 'नानीकी कहानी'का राजपुत्र किसी सोती हुई राजकन्याको जगानेके लिए सात समुद्र और तेरह नदी पार करके गया था। हमारे

राजपुत्रने भी जान पड़ता है, सुप्त राजभक्तिको जगानेके लिये ही यह यात्राका कष्ट स्वीकार किया था, परन्तु क्या उन्हें 'सोनेकी छड़ी' प्राप्त हुई?

अनेक घटनाओंसे यह बात स्पष्ट दिखलाई देती है कि हमारे राज-पुरुष सोनेकी छड़ीकी अपेक्षा लोहेकी छड़ीपर ही विशेष आस्था रखते हैं! वे अपने प्रतापके आडम्बरको वज्रगर्भ विद्युतके समान क्षण-क्षणमें हमारी आँखोंके आगे चमका जाया करते हैं। उससे हमारी आँखें चकचौंधा जाती हैं, हृदय भी काँपने लगता है किन्तु राजा प्रजाके बीच हृदयका बन्धन दृढ़ नहीं होता—बल्कि उल्टा पार्थक्य बढ़ जाता है।

भारतके भाग्यमें इस प्रकारकी अवस्था अवश्यंभावी है। क्योंकि, यहाँके राजसिंहासनपर जो लोग बैठते हैं उनकी अवधि तो अधिक दिनोंकी नहीं रहती; पर यहाँ उनकी राजक्षमता जितनी उत्कट रहती है, उतनी स्वयं भारत-सम्राटकी भी नहीं है। वास्तवमें देखा जाय तो इंग्लैण्डमें राज्य करनेका सुयोग किसीको भी नहीं मिलता, क्योंकि वहाँकी प्रजा स्वाधीन है। पर यहाँ ज्योंही किसी अँगरेजने पैर रक्खा कि उसे तत्काल ही मालूम हो जाता है कि भारतवर्ष अधीन राज्य है। ऐसी दशामें इस देशमें शासनके दम्भ और क्षमताके मदको संवरण करना क्षुद्र प्रकृतिके अफसरोंके लिये असंभव हो जाता है।

जिसके वंशमें पीढ़ियोंसे राज्य चला आया हो, ऐसे बुनियादी राजाको राजकीय नशा बेहोश नहीं कर सकता; परन्तु जो एकाएक राजा हो जाते हैं उनके लिये यह नशा एकदम विषका काम करता है। भारत-वर्षमें जो लोग शासन करने आते हैं, उनमेंसे अधिकांशको इस मदि-राका अभ्यास नहीं रहता। उन्हें स्वदेशकी अपेक्षा इस देशमें बहुत

अधिक परिवर्तन दिखलाई देता है। जो लोग वहाँ किसी भी समय विशेष कुछ नहीं थे, यहाँ वे बातकी बातमें हर्त्ता-कर्त्ता बने दिखलाई देते हैं। ऐसी अवस्थामें, नशाकी झोंकमें वे इस नूतनलब्ध प्रतापको सबसे अधिक प्रिय और श्रेय समझने लगते हैं।

प्रेमका पथ नम्रताका पथ है। किसी साधारणसे भी साधारण मनुष्यके हृदयमें प्रवेश करनेके लिये अपने मस्तकको उसके द्वारके मापके अनुसार झुकाना पड़ता है। पर जो व्यक्ति अपने प्रताप और प्रेष्टीजके सम्बन्धमें ताजा नवाबके समान सिरसे पैर तक सदा ही सावधान रहता है, उसके लिये यह नम्रता या सिर झुकाना दुःसाध्य कार्य है। अंगरेजोंका राज्य यदि शुरूसे ही आने-जानेका राज्य नहीं होता, यदि वे इस देशमें स्थायी होकर शासनकी उग्रताको थोड़ा बहुत सहन कर सकते, तो यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि वे हमारे साथ हृदय मिलानेकी चेष्टा करनेके लिये बाध्य होते। किन्तु वर्तमान व्यवस्था ऐसी है कि इंग्लैण्डके किसी अप्रसिद्ध प्रान्तसे, थोड़े समयके लिए इस देशमें आकर ये लोग इस बातको किसी तरह भी नहीं भूल सकते कि हम कर्त्ता-हर्त्ता हैं—स्वामी हैं। इस क्षुद्र दम्भको सर्वदा प्रकाशमान रखनेके लिये वे हम लोगोंको सभी बातोंमें निरंतर दूर दूर रखते हैं और केवल प्रबलताके द्वारा हमें अभिभूत कर रखनेकी चेष्टा करते हैं। इस बातको स्वीकार करनेमें वे कुण्ठित होते हैं कि हम लोगोंकी इच्छा अनिच्छा भी उनकी राजनीतिको स्पर्श कर सकती है। यहाँ तक कि उनके किसी कानूनसे या किसी विधानसे हम वेदना अनुभव करेंगे और उसे प्रकाश करेंगे, इसे भी वे गुस्ताखी समझते हैं।

किन्तु पति चाहे जितना कठोर क्यों न हो वह अपनी स्त्रीसे केवल बाध्यता ही नहीं चाहता, स्त्रीके हृदयके प्रति भी उसके भीतर ही

भीतर चाह रहती है । परन्तु वह हृदयपर अधिकार करनेका वास्तविक मार्ग ग्रहण नहीं कर सकता, इस कार्यमें उसका दुर्नम्य औद्धत्य बाधा डालता है । यदि उसे सन्देह हो जाय कि स्त्री मेरा आधिपत्य तो सहन करती है, परन्तु मुझपर प्यार नहीं करती, तो वह अपनी कठोरताकी मात्रा बढ़ाने लगता है। पर यह प्रीति उत्पन्न करनेका उत्तम उपाय नहीं है, इस बातको सभी जानते हैं, समझानेकी आवश्यकता नहीं ।

इसी तरह भारतवर्षके अँगरेज राजा हमसे राजभक्ति अदा किये बिना नहीं रहना चाहते । किन्तु वे यह नहीं सोचते कि भक्तिका सम्बन्ध हृदयसे है और उस सम्बन्धमें दान-प्रतिदान दोनों हैं । यह कोई कल या मशीनका सम्बन्ध नहीं है । इस सम्बन्धको जोड़नेके लिए निकट आना पड़ता है, यह कोरी जबर्दस्तीका काम नहीं है । किन्तु वे चाहते यह हैं कि पास भी नहीं आना पड़े, हृदय भी नहीं देना पड़े और राजभक्ति अदा हो जाय । अन्तमें इस भक्तिके बारेमें जब उन्हें सन्देह हो जाता है तब वे गोरखोंकी फौज बुलाकर, बेत झाड़कर और जेलमें ठूंसकर भक्ति अदा करनेका प्रयत्न करते हैं।

अँगरेज राजा शासनकी कल चलाते चलाते कभी कभी एकाएक राजभक्तिके लिये कैसे व्यग्र हो उठते हैं, इस बातका एक नमूना लार्ड कर्जनके शासनमें पाया गया था ।

यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो गई है कि स्वाभाविक आभिजात्यके अभावके कारण लार्ड कर्जन नशेमें उन्मत्त हो गए थे। इस तख्तको वे किसी तरह भी छोड़नेके लिये राजी नहीं थे । इस राजकीय आडम्बरसे जुदा होने पर उनका अन्तरात्मा एक दुर्दशाग्रस्त मतवालेके समान आज जिस अवस्थामें है, उसे यदि हम यथार्थभावसे अनुभव

करते तो शायद हमें भी उनपर दया आ जाती। हमारे खयालमें इस प्रकारकी शासन-लोलुपता भारतवर्षके और किसी भी शासन-कर्त्ताने इस तरहसे प्रकाशित नहीं की थी। इन लाट साहबने भारतके पुराने बादशाहोंके समान दरबार करना स्थिर किया और अहंकार प्रकट करनेके लिए उस दरबारका स्थान दिल्ली नियत किया।

किन्तु पूर्व देशोंके सभी राजा इस बातको जानते हैं कि दरबार अहंकार प्रकाश करनेके लिये नहीं किया जाता; यह राजाके साथ प्रजाके आनन्द-सम्मिलनका उत्सव है। इसमें केवल राजोचित ऐश्वर्यके द्वारा प्रजाको चकित स्तंभित नहीं किया जाता, किन्तु राजोचित औदार्यसे उसे निकट बुलाया जाता है। दरबार क्षमा करनेका, दान करनेका और राज-शासनको सुन्दरतासे सजानेका शुभ अवसर होता है।

किन्तु पश्चिमके इस ताजा नवाबने प्राच्य इतिहासको सम्मुख रखकर और वदान्यता या उदारताको सौदागरी कृपणता द्वारा खर्व करके केवल प्रतापको ही अतिशय उग्र करके प्रकाशित किया। वास्तवमें देखा जाय तो इससे अँगरेजोंकी राजश्रीने हम लोगोंके निकट गौरव नहीं पाया। इससे दरबारका उद्देश्य बिलकुल व्यर्थ हो गया। इस दरबारके दुःसह दर्पसे प्राच्य हृदय पीड़ित ही हुआ, आकर्षित तो जरा भी नहीं हुआ। उसका अपरिमित अपव्यय यदि कुछ फल छोड़ गया है, तो वह अपमानकी स्मृति है। लोहेकी छड़ीसे सोनेकी छड़ीका काम निकालनेकी चेष्टा केवल निष्फल ही नहीं होती है, उसका फल उलटा भी होता है।

अबकी बार राजपुत्रका भारतमें आगमन हुआ। राजनीतिकी दृष्टिसे यह परामर्श बहुत अच्छा हुआ था। क्योंकि, साधारणतः राजवंशीय पुरुषोंके प्रति भारतवर्षीय हृदय विशेषरूपसे अभिमुख रहता है। यह

भारतका बहुत पुराना प्रकृतिगत अभ्यास है और इसीसे दिल्ली दरबारमें ड्यूक आफ कनाटके होते हुए कर्जनका तख्तपर बैठना भारतवासी मात्रके हृदयमें खटका है। प्रजाको विश्वास है कि कर्जनने अपने दंभको प्रकाशित करनेके लिये ही इच्छापूर्वक दरबारमें ड्यूक आफ कनाटके उपस्थित रहनेका प्रयत्न किया था। हम लोग विलायती कायदे नहीं जानते, और फिर जब 'दरबार' चीज ही खासकर प्राच्य देशोंकी है, तब इसके उपलक्ष्यमें राजवंशका प्रकाश्य अपमान हमारी समझमें कमसे कम पालिसी-संगत तो नहीं कहा जा सकता।

जान पड़ता है कि ऐसा परामर्श दिया गया होगा कि कुछ भी हो पर भारतवर्षकी राजभक्तिको गति देनेके लिये एक बार राजकुमारको बुलाकर समस्त देशको इनका साक्षात् करा देना चाहिए। पर भारतवर्षके अँगरेजोंने हृदयका कारबार कभी किया ही नहीं। वे इस देशको अपना हृदय देते भी नहीं और इस देशका हृदय चाहते भी नहीं; इस देशका हृदय कहाँ पर है, इसकी भी वे खबर नहीं रखते। राजकुमारके भारतवर्षमें आगमनको जितना स्वल्पफलप्रद ये कर सकते थे उतना इन्होंने किया। आज राजकुमार भारतवर्षसे बिदा होकर जहाजपर सवार हो रहे हैं और हमें जान पड़ रहा है कि एक स्वप्न था जो टूट गया; एक कहानी थी जिसकी इति हो गई। कुछ भी नहीं हुआ—मनमें रखने योग्य कुछ नहीं मिला; जो जैसा था वह वैसा ही रह गया।

यह सर्वथा सत्य है कि भारतवर्षकी राजभक्ति प्रकृतिगत है—उसके स्वभावमें समाई हुई है। हिन्दू भारतवर्षकी राजभक्तिमें एक विशेषता है। हिन्दू लोग राजाको देवतुल्य और राजभक्तिको धर्मस्वरूप मानते हैं। पाश्चात्य लोग उनकी इस विशेषताका तत्त्व समझनेमें

असमर्थ हैं । वे सोचते हैं कि शक्तिके सामने इस प्रकार सिर झुकाना हिन्दुओंकी स्वाभाविक दीनताका लक्षण है।

संसारके अधिकांश सम्बन्धोंको दैवसम्बन्ध न मानना हिंदुओंके लिये असंभव है । हिंदुओंके विचारसे प्राय: कोई भी सम्बन्ध आकस्मिक नहीं है । क्यों कि वे जानते हैं कि प्रकाश कितने ही विचित्र और विभिन्न क्यों न हों, उनको उत्पन्न करनेवाली मूलशक्ति एक ही है। भारतवर्षमें यह एक दार्शनिक सिद्धान्त मात्र नहीं है; यह धर्म्म है—पुस्तकमें लिखने या कालेजोंमें पढ़ानेका नहीं, बल्कि ज्ञानके साथ हृदयमें उपलब्ध या साक्षात् और जीवनके दैनिक व्यवहारोंमें प्रतिबिम्बित करनेका है। हम माता-पिताको देवता कहते हैं, स्वामीको देवता कहते हैं, सती स्त्रीको लक्ष्मी कहते हैं । गुरुजनोंकी पूजा करके हम धर्मको तृप्त करते हैं । कारण यह है कि जिस जिस सम्बन्धसे हम मंगल लाभ करते हैं उन सभी सम्बन्धोंमें हम आदि मंगल शक्तिको स्वीकार करना चाहते हैं । मंगलमयको मंगलदानके उक्त सम्पूर्ण निमित्तोंसे अलगकर और सुदूर स्वर्गमें स्थापित कर उनकी पूजा करना भारतवर्षका धर्म नहीं है। जिस समय हम माता-पिताको देवता कहते हैं उस समय हमारे मनमें यह मिथ्या भावना नहीं होती कि वे अखिल जगत्के ईश्वर और अलौकिक शक्तिसम्पन्न हैं । वे मनुष्य हैं, इस बातको हम निश्चयपूर्वक जानते हैं; पर इस बातको भी उतने ही निश्चयके साथ जानते हैं कि माता और पिताके रूपोंसे वे हमारा जो उपकार कर रहे हैं वह उपकार—वह मातृत्व और पितृत्व सृष्टिके मातापिताका ही प्रकाश है। इन्द्र, चन्द्र, अग्नि, वायु आदिको जो वेदोंमें देवता स्वीकार किया गया है उसका भी यही कारण है । शक्तिके प्रकाशमें शक्तिमान्की सत्ता अनुभव किए बिना भारतवर्षको कभी सन्तोष नहीं हुआ । यही कारण

है कि विश्वसंसारमें भिन्न भिन्न निमित्तोंमें और भिन्न भिन्न आकारोंमें भक्तिविनम्र भारतवर्षकी पूजा आयोजित हुई है। हमारे विश्वासमें संसार सदा ही दैवशक्ति द्वारा जीवित है।

यह कहना सर्वथा असत्य है कि हमारी दीनता ही हमसे प्रबलताकी पूजा कराती है। सभी जानते हैं कि भारतवर्ष गायकी भी पूजा करता है। गायका पशु होना उसे मालूम न हो, यह बात नहीं है। मनुष्य प्रबल है, गाय दुर्बल। परन्तु भारतवर्षके मनुष्य गायसे अनेक प्रकारके लाभ उठाते हैं। एक उद्धत समाज कह सकता है कि मनुष्य अपने बाहुबलकी बदौलत पशुसे लाभ उठाता है। परन्तु भारतवर्षमें ऐसी अविनीतता नहीं है। सम्पूर्ण मंगलोंके मूलमें ईश्वरानुग्रहको प्रणाम करके और सम्पूर्ण प्राणियोंके साथ आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करके ही वह सुखी होता है। कारीगर अपने औजारको प्रणाम करता है, योद्धा अपनी तलवारको प्रणाम करता है, गवैया अपनी वीणाको प्रणाम करता है। वे यंत्रको यंत्र न जानकर कुछ और जानते हों, यह बात नहीं है। परन्तु वे यह भी जानते हैं कि यंत्र निमित्त मात्र है—वह हमें जो आनन्द देता है, हमारा जो उपकार करता है वह लोहे या काठका दान नहीं है; क्यों कि आत्माको किसी आत्मशून्य पदार्थमें कोई पा ही नहीं सकता। इसलिये वे अपनी पूजा, अपनी कृतज्ञता इन यंत्रोंहीके द्वारा विश्वयंत्रके यंत्रीकी सेवामें अर्पित करते हैं।

भारतवर्ष यदि राजशासनके कार्य्यको पुरुष रूपसे नहीं, बल्कि निर्जीव यंत्र रूपसे अनुभव करता रहे तो उसके लिये इससे बढ़कर कष्टकी बात दूसरी नहीं हो सकती। जड़ पदार्थोंके अन्दर भी जिसको आत्माके सम्पर्कका पता लगाकर ही सन्तोष होता है वह राज्यतंत्र

जैसे महान् मानव-व्यापारमें हृदयके प्रत्यक्ष आविर्भावको मूर्तिमान न देखकर किस प्रकार जीवित रहेगा ? जहाँ आत्माका आत्मीयसे सम्बन्ध हो, केवल वहीं सिर झुकानेमें सुख मिलता है, जहाँ ऐसा सम्बन्ध न हो वहाँ नमस्कार करनेमें अपमान और कष्ट जान पड़ता है। अतएव राज्यव्यवस्थामें यदि हम देवताकी शक्तिको, मंगलके प्रत्यक्ष स्वरूपको राजरूपमें देख सकें तो शासनका भारी भार सहजमें वहन कर सकते हैं। यदि इसके प्रतिकूल हो तो हृदय प्रतिक्षण भग्न होता रहता है। हम पूजा करना चाहते हैं—राज्यव्यवस्थामें प्राणप्रतिष्ठा कर उसके साथ अपने प्राणोंका मिलाप अनुभव करना चाहते हैं—हम बलको निरा बल जानकर ही सहन नहीं कर सकते।

अतएव यह बात सत्य है कि भारतवर्षकी राजभक्ति प्रकृतिगत है। परन्तु इसी कारण राजा उसके लिये तमाशा भरका राजा नहीं है। वह राजाको एक अनावश्यक आडम्बरका अंग मानकर देखना नहीं चाहता। राजाके दर्शन पानेमें उसे जितनी ही देर लगेगी, उतनी ही उसकी पीड़ा बढ़ती जायगी। क्षणस्थायी अनेक राजाओंके दुस्सह भारसे यह बृहत् देश किस प्रकार मर्मपीड़ा अनुभव कर रहा है, किस प्रकार प्रतिदिन अपने आपको उपायहीन जानकर लम्बी साँसें भर रहा है, इसे एक उस अन्तर्यामीके सिवा और कौन देखता है ? जो पथिक मात्र हैं, जिनके मनमें सदा यही बना रहता है कि कब छुट्टी मिले, जो पेटके कारण निर्वासित बनकर दिन काट रहे हैं, जो उजरत लेकर इस शासन-कारखानेकी कल घुमाते रहते हैं, जिनके साथ हमारा कोई सामाजिक सम्बन्ध नहीं है, और जो निरन्तर बदलते रहते हैं उन उपेक्षापरायण शासकोंका हृदय-सम्पर्क-शून्य शासन वहन करना कितना दुस्सह है, इसे केवल भारतवर्ष ही

जानता है। राजभक्तिसे दीक्षित भारतवर्षका अन्तःकरण कातर-भावसे प्रार्थना करता है—"हे भारतकी ओरसे विमुख भगवन् ! मैं अब इन क्षणिक राजाओं, क्षुद्र राजाओं और अनेक राजाओंको एक क्षण भी सहन नहीं कर सकता, मुझे एक राजा दो ! ऐसा राजा दो जिसके मुखसे मैं सुन सकूँ—'भारतवर्ष हमारा राज्य है, वणिकोंका राज्य नहीं है, खानवालोंका राज्य नहीं है, चाकरोंका राज्य नहीं है, लंकाशायरका राज्य नहीं है, हमारा राज्य है।' भारतवर्षका अंतःकरण जिसको देखकर बोल उठे—'यही हमारे राजा हैं। हालिडे हमारे राजा नहीं हैं, फुलर हमारे राजा नहीं हैं, पायोनियर-सम्पादक हमारे राजा नहीं हैं'।" राजकुमार यहाँ आवें, यहीं उनका राज्याभिषेक और यहीं उनका स्थायी दरबार हो; फिर स्वभावतः ही उनकी दृष्टिमें भारत ही मुख्य और इंग्लैण्ड गौण हो जायगा। इससे भारतका मंगल और इंग्लैण्डका स्थायी लाभ होगा। क्योंकि मनुष्यसे हृदयका सम्पर्क या सामाजिक सम्बन्ध न रखकर केवल यंत्रोंकी सहायतासे उसका शासन करनेकी उच्चाकांक्षा धर्मराज्य कदापि अधिक दिनोंतक सहन नहीं कर सकता, इसका सहन करना स्वभावविरुद्ध है; विश्वविधानमें बाधा डालनेवाला है। अतएव सुशासन, शान्ति अथवा और कोई पदार्थ हृदयके इस दारुण अभावको पूर्ण नहीं कर सकता। हो सकता है कि यह बात कानूनके विरुद्ध समझ ली जाय; पुलीस-सर्प इसे सुनकर फन फैला दे और फुफकारें छोड़ने लगे; परन्तु जो क्षुधित सत्य तीस करोड़ प्रजाके मर्ममें हाहाकार कर रहा है उसको बलपूर्वक नष्ट कर देनेका उपाय मानव या दानव किसीके पास नहीं है।

भारतवर्षीय प्रजाके इस प्रतिक्षण पीड़ा बोध करनेवाले हृदयको थोड़ा बहुत ढारस बँधानेहीके लिये राजकुमारको बुलाया गया था;

हम सबको दिखाया गया था कि हम भी राजावाले हैं—हमारे भी राजा हैं। पर मरीचिकासे कहीं सच्ची प्यास जाती है ?

सच तो यह है कि हम राजशक्तिको नहीं, राजहृदयको प्रत्यक्ष अनुभव करना और प्रत्यक्ष राजाको अपना हृदय अर्पित करना चाहते हैं। प्रभुगण ! आप यह बात कभी मत सोचिए कि धन और प्राणोंका रक्षित रहना ही प्रजाकी चरम चरितार्थता है। इसीसे आप कहते हैं कि ये शान्तिमें तो शराबोर हो रहे हैं, अब इन्हें और क्या चाहिए ? आप समझें कि जब हृदयके द्वारा मनुष्यके हृदयपर अधिकार कर लिया जाता है तब वह मनुष्य खुशी खुशी अपने धन और प्राणको निछावर कर देता है। भारतवर्षका इतिहास इसका प्रमाण है। मनुष्य केवल शान्ति ही नहीं बल्कि तृप्ति भी चाहता है। दैव हमारे कितना ही प्रतिकूल क्यों न हो, हम भी मनुष्य हैं। हम लोगोंकी भूख मिटानेके लिये सच्चे अन्नकी ही आवश्यकता होगी—हमारा हृदय फुलर, प्यूनिटिव पुलीस और जोर-जुल्मोंके द्वारा वश नहीं किया जा सकता।

देव हो या मानव, लाट हो या जैक, जहाँ केवल प्रतापका प्रकाश है, केवल बलका बाहुल्य है, वहाँ डरकर सिर झुकानेके समान और कोई आत्मावमान, अन्तर्यामी ईश्वरका अपमान, नहीं हो सकता। भारतवर्ष, तुम वहाँ अपने चिर दिनके अर्जित और सञ्चित ब्रह्मज्ञानकी सहायतासे इन सारी लांछनाओंके सामने अपना मस्तक अविचलित रखना, इन बड़े बड़े नामवाले असत्योंको सर्वान्तःकरणसे अस्वीकार करना; जिसमें ये विभीषिकाओंका रूप धारण करके तुम्हारी अन्तरात्माको तनिक भी संकुचित न कर सकें। तुम्हारी आत्माकी दिव्यता, उज्ज्वलता और परमशक्तिमत्ताके आगे ये सारे तर्जन-गर्जन, यह सारा उच्च पदका घमंड, यह सारा शासन-शोषणका आयोजन, आडम्बर, तुच्छ बाललीला मात्र हैं; ये तुम्हें पीड़ा भले ही दे लें,

तुम्हें छोटा कदापि नहीं कर सकते। जहाँ प्रेमका सम्बन्ध है वहाँ ही नत होनेमें गौरव है; जहाँ यह सम्बन्ध न हो वहाँ चाहे कैसी ही घटना क्यों न हो जाय, तुम अपने अन्तःकरणको मुक्त रखना, सरल रखना, दीनताको पास न फटकने देना, भिक्षुकभावको दूर भगा देना, और अपने आपमें पूर्ण आस्था रखना। क्योंकि निश्चय ही संसारको तुम्हारी अत्यन्त आवश्यकता है—तुम्हारे विना उसका काम चल ही नहीं सकता। यही कारण है कि इतनी यातना-यंत्रणा सहकर भी तुम मरे नहीं, जीते हो। यह बात कदापि नहीं है कि दूसरोंकी बाहरी चाल ढालका अनुकरण करते हुए एक ऐतिहासिक प्रहसनका प्लाट तैयार करने मात्रके लिये तुम इतने दिनोंसे जीवित हो। तुम जो होगे, जो करोगे, दूसरे देशोंके इतिहासमें उसका दृष्टान्त नहीं है,—इसलिये उनके लिये वह अनूठी बात होगी। अपने निजके स्थानपर तुम विश्वब्रह्मांण्डमें सभीसे बड़े हो। हे हमारे स्वदेश! महापर्वतमालाके पादमूलमें महा समुद्रोंसे घिरा तुम्हारा आसन तुम्हारी प्रतिक्षा कर रहा है। इस आसनके सामने विधाताके आह्वानसे आकृष्ट होकर हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध कितने ही दिनोंसे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। जिस समय तुम अपने इस आसनको फिर एक बार ग्रहण करोगे, हम निश्चयपूर्वक जानते हैं कि उस समय तुम्हारे मंत्रसे, ज्ञान, कर्म और धर्म्मके सेकड़ों विरोध क्षण मात्रमें मिट जायँगे और निष्ठुर, विश्वद्वेषी, आधुनिक पालिटिक्स (राजनीति) कालभुजंगका दर्प तुम्हारे चरणोंमें चूर्ण हो जायगा। तुम चञ्चल न होना, लुब्ध न होना, "आत्मानं विद्धि"—अपने आपको पहचानना और—"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत, क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति"—उठो, जागो, जो श्रेष्ठ है उसको पाकर प्रबुद्ध होओ; कवि कहते हैं कि सच्चा मार्ग शानपर चढ़ाए हुए छुरेकी धारके समान दुर्गम और दुरतिक्रम्य होता है।

बहुराजकता ।

पूर्वकालके साथ प्रस्तुत कालकी तुलना करना हम नहीं छोड़ते हैं। पूर्वकाल जब उपस्थित नहीं है तब एकतर्फा विचारमें जो हो सकता है वही होता है; अर्थात् विचारककी मनःस्थितिके अनुसार कभी पूर्वकालका भाग्य यशःश्रीका अधिकारी होता है, कभी प्रस्तुत कालका। पर ऐसे विचारपर भरोसा नहीं किया जा सकता।

हम मुगलोंके राज्यमें अधिक सुखी थे या अँगरेजी राज्यमें अधिक सुखी हैं, बहुतसे बड़े बड़े गवाहोंके इजहार सुनकर भी इसका अन्तिम निर्णय नहीं किया जा सकता। मनुष्यका सुखदुःख अनेकानेक सूक्ष्म वस्तुओंपर निर्भर करता है, एक एक करके उन सबका अन्वेषण करना असम्भव कार्य्य है। विशेषतः इस कारण कि जो काल चला जाता है वह अपना सुबूत और शहादतें भी अपने साथ ही लिये जाता है।

परन्तु पूर्वकाल और प्रस्तुतकालका एक प्रभेद अन्य सब प्रभेदोंमें प्रधान है। जिस तरह यह प्रभेद अन्य सब प्रभेदोंसे बड़ा है उसी तरह इसका फलाफल भी हमारे देशके लिये सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अपने इस संक्षिप्त प्रबन्धमें हम उसी प्रभेदका संक्षेपमें विचार करना चाहते हैं।

पहले भारतवर्षके सिंहासनपर एक व्यक्ति—बादशाह—था, पीछे उसपर एक कम्पनी बैठी, आजकल एक जाति आसीन है। पहले उस-पर एक व्यक्ति था, अब अनेक हैं। यह बात इतनी सीधी है कि इसे सिद्ध करनेके लिये किसी सूक्ष्म तर्ककी आवश्यकता नहीं है।

बादशाह सोचते थे कि भारतवर्ष हमारा है; अँगरेज जाति जानती है कि भारतवर्ष हम सबका है। एक राजपरिवार मात्र नहीं, सारी अँगरेज जाति ही भारतवर्षको पाकर धनी हो गई है। सम्भव ही नहीं, बहुत सम्भव है कि बादशाह बहुत अधिक अत्याचार करता रहा हो। अब अत्या-चार नहीं है, पर भार है। पीठपर बैठे हुए महावतका अंकुश थोड़ी थोड़ी देरपर मस्तकमें चुभाया जाना हाथीके लिये सुखकी बात नहीं हो सकती। पर महावतके बदले यदि एक मनुष्य-समूहको सदा ढोए फिरना पड़े तो केवल अंकुशके अभावको हाथी अपना सौभाग्य नहीं समझेगा।

यदि एक ही देवताके पूजापात्रमें फूल सजाये जायँ तो वे देखनेमें स्तूपाकार हो सकते हैं और चुननेवालेका परिश्रम भी सब लोग प्रत्यक्ष देख सकते हैं। परन्तु तेतीस करोड़ देवताओंको एक एक पँखड़ी भी भेंट करना देखनेमें चाहे जितना छोटा काम मालूम हो, पर वास्तवमें वह उतना छोटा नहीं है। परन्तु यह एक एक पँखड़ीका हिसाब एक जगह संग्रह करना कठिन है, इसीसे केवल अपने अदृष्टके सिवा और किसीको दोषी बनानेकी बात हमारे मनमें उठती ही नहीं।

यहाँ किसी एकको विशेष रूपसे दोषी सिद्ध करनेकी चर्चा नहीं है। मुगलोंकी अपेक्षा अँगरेज अच्छे हैं या बुरे, इसकी मीमांसा कर-नेमें कोई विशेष लाभ नहीं है। तौ भी अवस्थाको समझ लेनेकी

आवश्यकता है। इसे जान लेनेसे अनेक वृथा आशाओं और निष्फल चेष्टाओंसे छुटकारा हो सकता है; और यह भी एक लाभ ही होगा।

हम यह चिल्लाते चिल्लाते मरे जा रहे हैं कि हमारे देशकी प्रायः सभी बड़ी बड़ी नौकरियाँ अँगरेजोंके ही बाँटेमें आती हैं। पर इसके रोकनेका उपाय कहाँसे हो सकता है? हम सोचते हैं कि यदि इंग्लैण्ड जाकर वहाँ वालोंके दरवाजे दरवाजे अपना दुखड़ा रोएँ तो हमारे दुःख कुछ घटा दिए जायँगे। पर यह बात याद रखनी होगी कि हमें जिनके विरुद्ध नालिश करना है उन्हींके पास हम नालिश करने जा रहे हैं।

बादशाहके जमानेमें हम वजीर हुए हैं, सेनापति हुए हैं, देशके शासनकी जिम्मेदारी हमें सौंपी गई है। पर इस समय जो ये बातें हमारी आशाके बाहर हो रहीं हैं इसका क्या कारण है? दूसरे गुप्त या प्रकाश्य कारणोंको जाने दीजिए, पर एक स्थूलसा कारण स्पष्ट रूपसे हमारे आपके सामने है। इंग्लैण्ड सारे अँगरेजोंको अन्न देनेमें असमर्थ है; इसलिये भारतवर्षमें उनके लिये अन्नसत्र खोल रखना आवश्यक है। एक समग्र जातिके अन्नका भार अनेकांशमें हमारे ऊपर है, और वही अन्न हमें सैकड़ों आकारों और सैकड़ों रूपके पात्रोंमें परोसकर भेजना पड़ता है।

यदि सप्तम एडवर्ड यथार्थमें हमारे दिल्लीके सिंहासनपर राजाकी भाँति आसीन होते तो हम उनके निकट जाकर पूछ सकते थे कि "राजाधिराज, यदि बड़े बड़े कौर—सभी मुख्य मुख्य भोग्य वस्तुएँ—विदेशियोंकी ही पत्तलोंमें परोसी जाती रहेंगी तो यह आपका राज्य क्या खाकर रहेगा—यह किस प्रकार जीता बचेगा?"

उस समय सम्राट् भी कहते—" बेशक, अपने साम्राज्यसे खास अपने भोगके लिये हम जो कुछ लें वह तो ठीक है, पर यह देखकर यदि सभी ऐरे गैरे पत्तलें बिछा बिछाकर बैठ जायँ तो कैसे काम चलेगा ? "

उस समय वे भारतको अपना राज्य समझकर उसके दुःखसे दुःखी होते और पराए मनुष्योंके लोभ-प्रेरित हाथोंको उधर ही पकड़कर रोक रखते। पर आज प्रत्येक अँगरेज भारतवर्षको अपना राज्य समझता है। इस राज्यसे उन्हें मिलनेवाली भोग-वस्तुओंकी मात्रामें जब जरा भी कमी होती है तब वे सब मिलकर ऐसा शोर मचाते हैं कि उनके देशका कोई कानून बनानेवाला इस व्यवस्थामें कोई परिवर्त्तन करने ही नहीं पाता।

यह बात जरा सा सोचनेसे ही समझ ली जा सकती है कि अपने इस हजारों मुखवाले राजाकी पत्तलमेंसे कुछ पानेके लिये उसीके दरबारमें फरियाद करना व्यर्थ है।

सारांश यह है कि एक समस्त जातिका अपने ही देशमें रहते हुए दूसरे देशका शासन करना अभूतपूर्व घटना है। राजा कितना ही उत्तम क्यों न हो, इस परिस्थितिमें उसका बोझ उठाए रहना देशके लिये अत्यन्त कठिन है। जिस देशको मुख्य रूपसे दूसरे देशके लाभालाभका और गौण रूपसे अपने देशके लाभालाभका एक ही साथ विचार रखना पड़े उसकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय होती है। जिस देशका भारकेन्द्र उसके अपने शरीरसे इतना विलग हो, वह क्यों कर खड़ा रह सकता है ? यह सच है कि इस देशसे चोरी डकैतियाँ उठ गईं, यह भी सच है कि अदालतें विचार करनेमें बालकी खाल उतार डालती हैं, पर बोझ उतारनेकी भी कोई जगह है ?

अतएव कांग्रेसकी कोई प्रार्थना यदि सुसंगत हो सकती है तो यही कि चाहे सम्राट् एडवर्डके पुत्रको, चाहे लार्ड कर्जन या लार्ड किचनरको, चाहे इंग्लिशमैन, और पायोनियरमेंसे किसी एकके सम्पादकको, गरज यह कि उत्तम, मध्यम या नीच किसी भी एक अँगरेजको पार्लिमेन्ट चुनकर दिल्लीके सिंहासनपर बैठा दे। एक देश हजार समृद्धिशाली होनेपर भी केवल एक राजाका ही पालन कर सकता है, देशभर-राजाका पालन उससे नहीं हो सकता।

पथ और पाथेय ।

आरब्योपन्यासमें एक कहानी है कि एक मछुआ प्रतिदिन नदीमें जाल फेंकता था और उसमें मछलियाँ फँस जाती थीं। एक दिन मछलीकी जगह एक घड़ा उसके जालमें फँस आया। उसका ज्यों ही मुँह खोला गया त्यों ही उसमेंसे खम्भेके आकारका काला धूआँ निकला, जो शीघ्र ही एक विशालकाय दैत्यके रूपमें बदल गया।

हमारे समाचारपत्र प्रतिदिन खबरें खींच लाते हैं। पर हमने कभी यह नहीं सोचा था कि कभी उनके जालमें कोई ऐसा घड़ा भी आ अटकेगा और उस घड़ेमेंसे इतनी बड़ी भयंकर बात बाहर निकलेगी।

बिलकुल अपने पड़ोसहीमें अचानक क्षण मात्रमें इतने बड़े रहस्यका उद्घाटन होनेके कारण समस्त देशके लोगोंके अन्तःकरणमें जिस समय आन्दोलन उपस्थित होता है उस समय, उस सुदूरव्यापी चञ्चलताके समय वाक्य और कर्म्ममें सत्यकी रक्षा करना कठिन हो जाता है। जलमें जिस समय लहरें उठती रहती हैं उस समय उसमें अपनी परछाहीं आपसे आप विकृत हो जाती है और इसके लिये किसीको दोष नहीं दिया जा सकता। अत्यन्त भय और चिन्ताके समय हमारे विचारों और वाक्योंमें स्वभावतः ही विकलता आ जाती है और यही वह समय है जब कि अविचलित और विकाररहित सत्य सबसे

अधिक आवश्यक होता है। असत्य और अर्द्धसत्य और समयोंमें हमारा उतना भारी अनिष्ट नहीं करते. पर संकटके समयमें इनके समान हमारा शत्रु और कोई नहीं होता।

अतएव ईश्वर करे कि आज हम भयसे, क्रोधसे, आकस्मिक आपत्तिसे, अथवा दुर्बल चित्तके अतिशय विक्षेपसे आत्मविस्मृत होकर अपने आपको या दूसरोंको भुलानेके लिये कतिपय निरर्थक वाक्योंका बवंडर उत्पन्न करके चारों ओरके अस्वच्छ वातावरणको और भी गँदला न कर डालें। तीव्र वाक्योंसे चञ्चलताकी वृद्धि होती है, और भयसे सत्यको किसी प्रकार दबा रखनेकी प्रवृत्ति पैदा होती है। अतएव यदि आजकेसे समयमें हम मनोवेगोंको प्रकट करनेकी उत्तेजना रोककर यथासम्भव शान्त भावसे प्रस्तुत घटनापर विचार नहीं करेंगे, सत्यका आविष्कार और प्रचार नहीं करेंगे तो हमारी आलोचना केवल व्यर्थ ही न होगी बल्कि अनिष्टकर भी होगी।

हम दीनावस्थामें हैं इसीसे प्रस्तुत घटनाको देखकर आवश्यकतासे अधिक व्यग्रता और आतुरताके साथ आगे बढ़कर कहने लगते हैं, "हम इसमें सम्मिलित नहीं हैं, यह केवल अमुक दलकी कीर्ति है; यह अमुक दलवालोंका अन्याय है। हम तो पहलेहीसे कहते आ रहे हैं कि यह सब अच्छा नहीं हो रहा है; हम तो जानते ही थे कि कोई ऐसी घटना घटेगी।" आदि आदि।

किसी आतंकजनक दुर्घटनाके पश्चात् ऐसी अप्रशस्त उत्सुकताके साथ दूसरोंपर दोषारोपण या अपनी सुबुद्धिपर अभिमान प्रकट करना हमारी दुर्बलताकी सूचना है, यही नहीं बल्कि यह हमारे लिये लज्जाका भी कारण है। खास कर अपनी पराधीनताके कारण राजपुरुषोंके रोषकालमें दूसरोंको गालियाँ देकर अपने आपको भला मानस सिद्ध

करनेकी चेष्टा करनेसे और भी एक प्रकारकी हीनता आ जाती है। अतएव दुर्बल पक्ष यदि ऐसे कार्य्यके विषयमें अधिक उत्साह न प्रकट करे तो ही अच्छा है।

इसके सिवा जिन्होंने अपराध किया है, जो पकड़े गए हैं, निष्ठुर राजदण्डकी तलवार जिनके सिरपर झूल रही है और कुछ विचार न करके केवल इस विचारसे कि उन्होंने संकट उपस्थित किया था—उपद्रव किया था—उनके प्रति तीखे भाव प्रकट करना कायरपन है। उनके विचारका भार ऐसे हाथोंमें है, जिन्हें अनुग्रह या ममता किञ्चिन्मात्र भी दण्ड-लाघवकी ओर नहीं बढ़ा सकती। इसपर यदि हम भी आगे बढ़कर उनके दण्डदानमें योग देना चाहें तो हम अपने भीरु-स्वभावकी निर्दयता ही प्रकट करेंगे। उनके कार्य्यको हम चाहे जितना दूषित क्यों न मानें, उसपर मत प्रकट करनेके आवेशमें हमारा आत्मसम्मानकी मर्य्यादाका उल्लंघन करना किसी प्रकार उचित नहीं है। जिस समय समस्त देशको अपने सिरके ऊपरवाले आकाशमें रुद्रके समान रोषवाली एक वज्रहस्ता मूर्त्ति क्रोधसे काँपती हुई देख पड़ रही है, उस समय हमारी दायित्वहीन चुलबुलाहट अनावश्यक ही नहीं बल्कि अनुचित भी है।

कोई अपने आपको कितना ही दूरदर्शी क्यों न जानता हो, हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि देशके अधिकांश लोगोंने नहीं सोचा था कि बात यहाँतक बढ़ जायगी। बुद्धि हम सभीमें न्यूनाधिक परिमाणमें है, पर चोरके चले जानेपर इस बुद्धिका जितना विकास होता है, चोरके रहते हुए उसके उतने विकासकी आशा नहीं की जा सकती।

निस्सन्देह घटना हो जानेके पीछे यह कहना सहज होता है कि ऐसा होनेकी सम्भावना थी, इसीसे ऐसा हुआ। ऐसे सुयोगमें हममेंसे

जो स्वभावसे जरा अधिक उत्तेजनाशील होते हैं उनकी भर्त्सना करना भी हमारे लिये सहज हो जाता है। हम कहते हैं, तुम एकदम इतना छलाँग मारनेका हौसला न करते तो अच्छा होता।

हम हिन्दू विशेषतः बंगाली, बातोंमें चाहे जितना जोश प्रकट कर डालें, पर किसी साहसपूर्ण कार्यके करनेमें कदापि प्रवृत्त नहीं हो सकते—यह लज्जाजनक बात देशविदेश सभी जगह प्रसिद्ध हो चुकी है। इसके फलस्वरूप बाबूमण्डलीको खास तौरपर अँगरेजोंके निकट नित्य दुस्सह शब्दोंकी ठोकरें खानी पड़ती हैं। सब प्रकारके उत्तेजनापूर्ण वाक्य कमसे कम बंगालमें तो सब प्रकारसे निरापद हैं—उन्हें कहीं बाधा या विरोधका सामना नहीं करना पड़ता, इस सम्बन्धमें हमारे शत्रु या मित्र किसीको किसी तरहका सन्देह नहीं है। यही कारण है कि अबतक बातचीतमें, भावभंगीमें हमें कुछ भी ज्यादती प्रकट करते देखकर कभी दूसरोंने और कभी स्वयं हमारे आत्मीयोंने बराबर नाराजगी या खफगी प्रकट की है और हमारे असंयमकी दिल्लगी उड़ाना भी बुरा नहीं समझा है। वस्तुतः किसी बँगला अखबारमें या किसी बंगाली वक्ताके मुखसे जब हम अपरिमित उच्चाकांक्षामय वाक्योंको निकलते हुए देखते हैं तब खासकर अपनी जातिके लिये यह सोचकर हमें पानी पानी हो जाना पड़ता है कि जो दुःसाहसपूर्ण कामोंको करनेके लिये विख्यात नहीं हैं, उनके वाक्योंकी तीक्ष्णता उनकी दीनताका केवल मोर्चा साफ करती है—उसे और भी प्रकाशित कर देती है। वास्तवमें बंगाली जाति बहुत दिनोंसे भीरुताकी बदनामीको सिर झुकाकर सहती चली आ रही है। इसीसे प्रस्तुत घटनाके सम्बन्धमें न्याय-अन्याय, इष्ट-अनिष्ट, सभी विचारोंको तिलाञ्जलि देकर इस अपमानमोचनके उपलक्ष्यमें बंगालीको आनन्द हुए बिना नहीं रह सकता।

अतः यह बात सर्वथा सत्य है कि स्वदेश या विदेशके किसी ज्ञानी पुरुषने दावेके साथ यह भविष्यद्वाणी नहीं की थी कि बंगालके मनमें दबी हुई चिनगारी क्रमशः ऐसी प्रचण्ड अग्निके रूपमें प्रज्वलित होगी। ऐसी दशामें हमारे इस अकस्मात् बुद्धिविकासके कालमें जिनके विचारों और कार्य्योंको हम पसन्द न करते हों उनको असावधानताका दोषी ठहराते फिरना अच्छी बात नहीं है। मैं भी इस गड़-बड़ीके समय किसी पक्षके विरुद्ध कोई बात नहीं कहना चाहता। पर किस प्रकार क्या हुआ और उसका क्या फलाफल होगा, इसका निरपेक्ष भावसे विवेचन करके हमें अपना मार्ग निश्चित करनाही होगा। ऐसी चेष्टा करते समय यदि हमारा मत किसी एक अथवा कतिपय सज्जनोंके मतसे भिन्न जान पड़े तो वे दया करके इस बातका विश्वास रक्खें कि हमारी बुद्धि कमजोर हो सकती है, हमारी दृष्टिमें दुर्बलता होना सम्भव है; परन्तु यह कदापि सम्भव नहीं है कि स्वदेशके हितके विषयमें उदासीनता या हितैषियोंके प्रति बुरे भाव होनेके कारण हम जान-बूझकर विचारनेमें भूल करें। अतएव हमारे विचारोंको आप भले ही स्वीकार न करें, पर हमारे मतोंके प्रति श्रद्धा और उनके सुन लेनेका धैर्य्य आप अवश्य रक्खें।

कुछ दिनोंसे बंगालमें जो कुछ हो रहा है, हममेंसे कौन कौन बंगाली उसके संघटनमें कितने कारणीभूत हैं, इसकी सूक्ष्म विवेचना न करके भी यह बात निश्चयके साथ कही जा सकती है कि तन, मन या वाणीमेंसे किसी एक न एकके द्वारा हममेंसे प्रत्येकने उसका पोषण किया है। अतएव जो चित्तदाह परिमित स्वभावमें ही बद्ध नहीं रहा है, प्रकृतिभेदके अनुसार जिसकी उत्तेजना हम सभीने थोड़ी बहुत अनुभूत और प्रकाशित की है, यदि उसीका कोई केन्द्रक्षिप्त

परिणाम इस प्रकारके गुप्त विप्लवका विलक्षण आयोजन हो, तो उसका उत्तरदायित्व और दुःख बंगाली मात्रको स्वीकृत करना पड़ेगा। जिस समय मेरे शरीरमें भस्माभूत ज्वर चढ़ा हो उस समय हाथकी हथेली केवल यह कहकर ही मृत्युके अवसरपर अपने आपको साधु और सिरको सारे अनर्थोंकी जड़ बतलाकर छुटकारा नहीं पा सकती कि हम तो सिरकी अपेक्षा अधिक ठंढे थे। हमने इस बातको अच्छी तरह नहीं सोचा कि हम क्या करेंगे और क्या करना चाहते हैं। हम यही जानते हैं कि हमारे कलेजेमें आग लगी हुई थी। उस आगके गिर पड़नेसे स्वभावतः *गीली लकड़ी धुआँ देने लगी*, *सूखी लकड़ी जलने लगी* और घरमें जहाँ कहीं मिट्टीका तेल था वह अपनेको न सँभाल सकनेके कारण टीनका शासन हटाकर भयंकर रूपसे भड़क उठा।

जो हो, कार्य्य और कारणका पारस्परिक योग अथवा व्याप्ति चाहे जिस प्रकार हुई हो, पर जब आग भड़क उठी तब सब तर्क छोड़ कर उस आगको बुझाना पड़ेगा। इस सम्बन्धमें मतभेदसे काम न निकलेगा।

मुख्य बात यह है कि कारण अभी देशसे दूर नहीं हुआ। लोगोंका चित्त उत्तेजित हो गया है और यह उत्तेजना इतनी अधिक बढ़ गई है कि पहले जो सांघातिक व्यापार हमारे देशके लिये बिलकुल ही असम्भव मालूम होते थे वे ही अब सम्भव हो गए हैं। विरोध-बुद्धि इतनी गम्भीर और बहुत दूर तक व्याप्त हो गई है कि हमारे शासक बलपूर्वक इसे केवल यहाँ वहाँसे उखाड़नेकी चेष्टा करके ही कभी उसका अन्त न कर सकेंगे, बल्कि इसे और भी प्रबल कर डालेंगे।

यदि हम इस बातकी आलोचना करने लगें कि वर्त्तमान संकटके समय हमारे शासकोंका क्या कर्त्तव्य है, तो हमें इस बातकी आशा

नहीं है कि वे शासक हमारी आलोचनाको श्रद्धापूर्वक सुनेंगे। हम उनकी दण्डशालाके द्वारपर बैठकर उन्हें राजनीतिक प्राज्ञताकी शिक्षा देनेकी दुराशा नहीं करते। जो कुछ हम कहेंगे वह बात भी बहुत पुरानी है और उसे सुनकर वे यह भी सोचेंगे कि ये डरकर ऐसी बातें कह रहे हैं। लेकिन सत्य पुराना होनेपर भी सत्य ही है और यदि वे उसे भ्रम समझें तो भी वह सत्य ही है। वह बात यह है कि "शक्तस्य भूषणं क्षमा।" एक बात और है, क्षमा केवल शक्तका या बलवानका भूषण ही नहीं है, वह विशिष्ट समयपर शक्तका ब्रह्मास्त्र भी है। लेकिन ऐसे अवसरपर जब कि हम शक्तके दलमें नहीं हैं, इस प्रकारके सात्विक उपदेशको लेकर अधिक आलोचना करना हमारे लिये शोभाकी बात नहीं है।

यह विषय दोनों पक्षोंसे सम्बन्ध रखता है, परन्तु दोनों पक्षोंमें परस्पर एक दूसरेके भाव समझनेका जो सम्बन्ध है वह बहुत ही क्षीण हो गया है। एक ओर प्रजाकी वेदनाकी उपेक्षा कर बल अत्यन्त प्रबल रूप धारण कर रहा है, और दूसरी ओर दुर्बलका निराश मनोरथ सफलताका कोई मार्ग न पाकर प्रतिदिन मृत्युभयरहित होता जा रहा है। ऐसी दशामें समस्या सहज नहीं है। क्योंकि इस दो पक्षोंके काममें केवल एक पक्षको लेकर जितनी चेष्टा हो सकती हो उतनेहीके लिये हमारा सम्बल है—उतना ही हमारे पास राहखर्च है। तूफानके समय मल्लाह अपनी धुनमें मस्त है; डाँड़ोंकी सहायतासे किश्तीको जहाँतक बचाना सम्भव होगा वहाँतक हम उसको अवश्य बचावेंगे। यदि मल्लाह सहायक हो तो अच्छा ही है, यदि न हो तो भी इस दुस्साध्य साधनमें प्रवृत्त होना ही पड़ेगा। डूबते समय दूसरेको गाली देनेसे कोई सान्त्वना नहीं मिल सकती।

ऐसे दुस्समयमें सत्यको दबा रखनेकी चेष्टा करना प्रलयके क्षेत्रमें बैठकर बालक्रीड़ा करनेके समान है। हम गवर्नमेण्टको बताना चाहते हैं कि यह सब कुछ नहीं, मुट्ठीभर लड़कोंके मनोविकारका प्रकाशमात्र है। पर हमें तो ऐसे शून्यगर्भ सान्त्वना वाक्योंमें कुछ भी अर्थ नहीं देख पड़ता। पहले तो इस प्रकार केवल फूँक मारकर सरकारकी पालिसी-पालको एक इंच भी घुमाया नहीं जा सकता। दूसरे देशकी वर्त्तमान अवस्था कुछ ऐसी है कि इसमें कहाँ क्या हो रहा है, इसको चाहे जितना समझ-बूझकर और निश्चित करके कहिए; वह बिलकुल ही अन्यथा प्रमाणित हो जाता है। अतः विपत्तिकी सम्भावना स्वीकार करके ही हम लोगोंको काम करना होगा। जिम्मेदारीका ख्याल न रखते हुए जो मुँहमें आवे वह बकझककर कोई यथार्थ संकटका सामना नहीं कर सकता। इस समय सत्य——केवल सत्यका प्रयोजन है।

देशवासियोंके हितके खयालसे यह बात यहाँ खोलकर कह देनी होगी कि सरकारकी शासननीति चाहे जिस मार्गका अवलम्बन करे और भारतमें रहनेवाले अँगरेजोंका व्यक्तिगत व्यवहार हमारे चित्तपर चाहे जैसी गहरी चोट पहुँचाता हो, आत्मविस्मृत होकर आत्महत्या करनेसे हम इसका प्रतिकार किसी प्रकार न कर सकेंगे।

जो काल उपस्थित है उसमें धर्मकी दुहाई देना व्यर्थ है। क्योंकि राजनीतिमें धर्मनीतिके भी स्थित होनेके सिद्धान्तपर जो विश्वास करता है, लोग उसे व्यवहारज्ञानहीन और नीतिवायुग्रस्त कहकर उसका अनादर करते हैं। प्रयोजनके समय प्रबल पक्ष धर्मशासन स्वीकार करनेको कार्य्यका हनन करनेवाली दीनता समझता है। पश्चिमीय महादेशके इतिहासमें इसके उदाहरणोंकी प्रचुरता है। पर ऐसा होते हुए भी यदि प्रयोजनकी सिद्धिके लिये दुर्बलको धर्मशासन स्वीकार करनेका

उपदेश दिया जाय तो वह उत्तेजित दशामें उत्तर देता है कि यह तो धर्मका आदर करना नहीं है, भयके सामने सिर झुकाना है।

अभी थोड़े दिन पहले जो बोअर-युद्ध हुआ था उसमें विजय-लक्ष्मीके धर्मबुद्धिके पीछे पीछे न चलनेकी बात किसी किसी धर्मभीरु अँगरेजके मुँहसे सुनी गई थी। युद्धके समय शत्रुपक्षके मनमें भयका उद्रेक कर देनेके निमित्त उसके नगरों और ग्रामोंको उजाड़ कर, घर-बारको भस्म कर, खानेपीनेकी चीजें लूट-पाटकर हजारों निरपराधोंको आश्रयहीन कर देना युद्ध-कर्त्तव्यका एक अंग ही मान लिया गया है। मार्शल ला (फौजी शासन)का अर्थ ही जरूरतके समय न्यायविचार-बुद्धिको परम विघ्न जानकर निर्वासित कर देनेकी विधि और उसके सहारे प्रतिहिंसापरायण मानव प्रकृतिकी बाधायुक्त पाशविकताको ही प्रयोजनसाधनका सर्वप्रधान सहायक घोषित करना है। प्युनिटिव पुलिसके* द्वारा समस्त निरुपाय ग्रामवासियोंको बलपूर्वक दबा देनेकी विवेकहीन बर्बरता भी इसी श्रेणीकी है। इन सब विधियोंके द्वारा इस बातकी घोषणा की जाती है कि राजकार्य्यमें विशुद्ध न्यायधर्म ही अपना उद्देश्य सिद्ध करनेके लिये पर्याप्त नहीं है।

युरोपकी इस धर्महीन राजनीतिने आज संसारमें सर्वत्र ही धर्म-बुद्धिको विपाक्त कर डाला है। ऐसी दशामें जिस समय कोई विशेष घटना घटने और कोई विशेष कारण उपस्थित होनेपर कोई पराधीन राष्ट्र सहसा अपनी पराधीनताकी वज्रमूर्ति देखकर समष्टिरूपसे पीड़ित हो उठता है, अपने आपको जब सब प्रकारसे उपायहीन देखकर

* किसी ग्राम या नगरके समस्त निवासियोंको अप्रत्यक्ष दण्ड देनेके लिये जो विशेष पुलिस तैनात की जाती है उसे प्युनिटिव पुलिस कहते हैं।—अनु०।

उसका हृदय दग्ध होने लगता है, उस समय यदि उसके कतिपय अधीर और असहिष्णु व्यक्तियोंका एक समुदाय केवल धर्मबुद्धिको ही नहीं, कर्मबुद्धिको भी तिलाञ्जलि दे दे, तो देशके आन्दोलनकारी वक्ता-ओंको ही उसके अपराधका जिम्मेदार ठहराना दर्पान्ध पशुबलकी मूढ़ता मात्र है।

अतएव जिन लोगोंने स्थिर कर लिया है कि गुप्त मण्डलियाँ बनाकर और छिपकर काम करनेमें ही राष्ट्रके कल्याणका एक मात्र उपाय है उनको गा-लियाँ देनेसे कोई फल न होगा; और यदि हम उन्हें धर्मोपदेश देकर सुधारना चाहें तो वे उसे भी हँसीमें उड़ा देंगे। हम जिस युगमें वर्त्तमान हैं उसमें जब राष्ट्रीय स्वार्थके सामने धर्म सभी प्रकारसे बेबस है, तब इस धर्म-भ्रंशताका परिणामरूप दुःख सम्पूर्ण मनुष्योंको विविध रूपोंमें भोगना ही पड़ेगा। राजा हो या प्रजा, प्रबल हो या निर्बल, धनी हो या निर्धन, कोई उसके पंजेसे छुटकारा नहीं पा सकता। राजा भी प्रयोजनके समय प्रजापर दुर्नीतिके द्वारा आघात करेगा, प्रजा भी अपने कामके लिये दुर्नीतिहीको आगेकर राजापर आक्रमण करनेकी चेष्टा करेगी और जो तीसरे पक्षके लोग इन दोनोंके कामोंसे निर्लिप्त होंगे उन्हें भी इस अधर्म संघर्षका उत्ताप सहन करना ही पड़ेगा। वास्तवमें संकटमें पड़कर जब लोग यह समझ लेते हैं कि यदि अधर्मको वेतन देकर अपने पक्षमें किया जाय तो वह फिर हमारे ही पक्षमें, हमारा ही गुलाम होकर नहीं रहता बल्कि दोनों पक्षोंका नमक खाकर दोनों ही पक्षोंके लिये समानरूपसे भयंकर हो जाता है। तब दोनों पक्ष उसकी सहाय-ताका अविश्वास करके उससे अपना पीछा छुड़ानेके प्रयत्नमें लग जाते हैं। ऐसा करके ही धर्मराज भीषण संघातमेंसे धर्मको विजयी करके उसका उद्धार करते हैं। जब तक इस प्रकार धर्मका उद्धार सम्पूर्ण नहीं होता

तब तक सन्देहके साथ सन्देहका, विद्वेषके साथ विद्वेषका और कपट-नीतिके साथ कपटनीतिका संग्राम होता रहता है जिससे सारा मानव-समाज उत्तप्त रहता है।

अतएव वर्तमान अवस्थामें देशके उत्तेजित व्यक्तियोंसे यदि कुछ कहनेकी आवश्यकता हो तो वह कामकी बातके सम्बन्धमें ही हो सकती है। उन्हें यह बात अच्छी तरह समझा देनी होगी कि प्रयोजन चाहे जितना महत्त्वपूर्ण हो, चौड़े मार्गसे जाकर ही उसका साधन करना होगा; शीघ्र सिद्धिलाभके लिये संकीर्ण मार्गका अवलम्बन करनेसे किसी न किसी दिन रास्ता भूल जाना निश्चित है—रास्ता भी भूल जायगा और कार्य्य भी नष्ट हो जायगा। हमें अपना काम कर डाल-नेकी बहुत जल्दी है; यह सोचकर न तो रास्ता ही छोटा होने जायगा और न समय ही अपना शरीर संकुचित करना स्वीकार करेगा।

देशका हितानुष्ठान कितना व्यापक पदार्थ है और कितनी दिशा-ओंमें उसकी कितनी सहस्र शाखा-प्रशाखाएँ फैली हुई हैं, यह बात हमें किसी सामयिक आक्षेपके फेरमें पड़कर भूल न जानी चाहिए। भारतवर्ष सरीखे विविध वैचित्र्य और विरोधोंसे पूर्ण देशमें यह समस्या अत्यन्त ही जटिल है। ईश्वरने हम लोगोंपर एक ऐसे महान् कार्य्यका भार डाल रक्खा है, हम लोग मानव समाजके इतने बड़े जटिलजालकी हजारों लाखों गुत्थियाँ सुलझानेका आदेश लेकर आए हुए हैं कि हमें एक पलके लिये भी अपने कर्त्तव्यके गुरुत्वको भूलकर किसी प्रका-रकी चंचलता प्रकट करना उचित नहीं है। आदिकालसे जगतमें जितनी बड़ी बड़ी शक्ति-धाराएँ उद्गत और प्रवाहित हुई हैं उनकी किसी न किसी शाखाने भारतवर्षसे अवश्य सङ्गम किया है। ऐति-हासिक स्मृतिके अतीतकालमें किसी गूढ़ प्रयोजनकी अनिवार्य प्रेरणासे

जिस दिन आर्य जाति गिरिगुफाके बन्धनसे मुक्ति पानेवाली स्रोतस्विनीकी तरह अकस्मात् बाहर होकर विश्वपथपर आ पड़ी थी और उसकी एक शाखाने वेदमंत्रोंका उच्चारण करते हुए भारतवर्षके बनोंमें यज्ञाग्नि प्रज्व-लित की थी, उस दिन भारतके आर्य्य-अनार्य्य-सम्मिलन क्षेत्रमें जो विपुल इतिहासकी उपक्रमणिकाका गायन आरम्भ हुआ था आज क्या वह समाप्त होनेके पहले ही शान्त हो गया है? बच्चोंके मिट्टीके घरकी तरह क्या विधाताने अनादरके साथ आज उसे हटात् गिरा डाला है? उसके पश्चात् इसी भारतवर्षसे बौद्ध धर्मके मिलन-मंत्रने, करुणाजलसे भरे हुए गम्भीर मेघके समान गरजते हुए, एशियाके पूर्व सागरतीरकी निवासिनी समस्त मंगोलियन जातिको जाग्रत कर दिया और ब्रह्मदेशसे लेकर बहुत दूर जपानतकके भिन्न भिन्न भाषाभाषी अनात्मीयोंको भी धर्मसम्बन्धमें बाँधकर भारतके साथ एकात्म बना दिया। भारतके क्षेत्रमें उस महत् शक्तिका अभ्युदय क्या केवल भारतके भाग्यमें ही, भारत-वर्षके लिये ही परिणामहीन निष्फलताके रूपमें पर्यवसित हुआ है? इसके अनन्तर एशियाके पश्चिमीय प्रान्तसे दैवबलकी प्रेरणासे एक और मानव महाशक्ति प्रसुतिसे जाग्रत होकर और ऐक्यका सन्देश लेकर प्रवल वेगसे पृथिवीपर फैलती हुई बाहर निकली। इस महाशक्तिको विधा-ताने भारतमें केवल बुला ही नहीं लिया, चिरकालके लिये उसे आश्रय भी दिया। हमारे इतिहासमें यह घटना भी क्या कोई आकस्मिक उत्पात मात्र है? क्या इसमें किसी नित्य सत्यका प्रभाव दिखलाई नहीं पड़ता? इसके पश्चात् युरोपके महाक्षेत्रसे मानवशक्ति जीवनशक्तिकी प्रबलता, विज्ञानके कौतूहल और पुण्यसंग्रहकी आकांक्षासे जब विश्वाभि-मुखी होकर बाहर निकली, उस समय उसकी भी एक बड़ी धारा विधाताके आह्वानपर यहाँ आई और अब अपने आघात द्वारा

हमें जगानेका प्रयत्न कर रही है। इस भारतवर्षमें बौद्ध धर्मकी बाढ़ हट जाने पर जब खण्ड खण्ड देशके खण्ड खण्ड धर्म्म-सम्प्रदायोंने विरोध और विच्छिन्नताके काँटे सब ओर बिछा रक्खे थे उस समय शंकराचार्य्यने उस सारी खण्डता और क्षुद्रताको एक मात्र अखण्ड बृहत्त्वमें ऐक्यबद्ध करनेकी चेष्टा कर भारतहीकी प्रतिभाका परिचय दिया था। अन्तिम कालमें दार्शनिक ज्ञानप्रधान साधना जब भारतमें ज्ञानी अज्ञानी; अधिकारी अनधिकारीका भेदभाव उत्पन्न करने लगी तब चैतन्य, नानक, दादू, कबीर आदिने भारतके भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें जाति और शास्त्रके अनैक्यको भक्तिके परम ऐक्यमें एक करनेवाले अमृतकी वर्षा की थी। केवल प्रादेशिक धर्म्मोंके विभिन्नतारूपी घावको प्रेमके मलहमसे भर देनेहीका उन्होंने उद्योग नहीं किया बल्कि, हिन्दू और मुसलमान प्रकृतिके बीच धर्मका पुल बाँधनेका काम भी वे करते थे। इस समय भी भारत निश्चेष्ट नहीं हो गया है—राममोहनराय, स्वामी दयानन्द, केशवचन्द्रसेन, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, शिवनारायणस्वामी आदिने भी अनैक्यके बीचमें ऐक्यको, क्षुद्रताके बीचमें महत्त्वको प्रतिष्ठित करनेके लिये अपने जीवनकी साधनाओंको भारतके चरणोंमें भेंट कर दिया है। अतीत कालसे आजतक भारतवर्षके एक एक अध्याय इतिहासके विच्छिन्न विक्षिप्त प्रलाप मात्र नहीं हैं, ये परस्पर बँधे हुए हैं, इनमेंसे एक भी स्वप्नकी तरह अन्तर्द्धान नहीं हुए, ये सभी विद्यमान हैं। चाहे सन्धिसे हो या संग्रामसे, घातप्रतिघात द्वारा ये विधाताके अभिप्रायकी अपूर्व रूपसे रचना कर रहे हैं—उसकी पूर्त्तिके साधन बना रहे हैं। पृथ्वीपर विद्यमान और किसी देशमें इतनी बड़ी रचनाका आयोजन नहीं हुआ—इतनी जातियाँ, इतने धर्म, इतनी शक्तियाँ किसी भी तीर्थस्थलमें एकत्र नहीं हुईं। अत्यन्त

विभिन्नता और वैचित्र्यको बहुत बड़े समन्वयके द्वारा बाँधकर विरोधमें ही मिलनके आदर्शको विजय दिलानेका इतना सुस्पष्ट आदेश जगतमें और कहीं ध्वनित नहीं हुआ। अन्य सब देशोंके लोग राज्यविस्तार करें, पण्यविस्तार करें, प्रतापविस्तार करें और भारतवर्षके मनुष्य दुस्सह तपस्या द्वारा ज्ञान, प्रेम और कर्मसे समस्त अनैक्य और सम्पूर्ण विरोधमें उसी एक ब्रह्मको स्वीकारकर मानवकर्मशालाकी कठोर संकीर्णतामें मुक्तिकी उदार, निर्मल ज्योति फैलाते रहें—बस भारतके इतिहासमें आरम्भसे ही हम लोगोंके लिये यही अनुशासन मिल रहा है। गोरे और काले, मुसलमान और ईसाई, पूर्व और पश्चिम कोई हमारे विरुद्ध नहीं हैं—भारतके पुण्यक्षेत्रमें ही सम्पूर्ण विरोध एक होनेके लिये सैकड़ों शताब्दियोंतक अति कठोर साधना करेंगे। इसीलिए अति प्राचीन कालमें यहाँके तपोवनोंमें उपनिषदोंने एकका तत्त्व इस प्रकार आश्चर्यजनक सरल ज्ञानके साथ समझाया था कि इतिहास अनेक रीतियोंसे उसकी व्याख्या करते करते थक गया और आज भी उसका अन्त नहीं मिला।

इसीसे हम अनुरोध करते हैं कि अन्य देशोंके मनुष्यत्वके आंशिक विकाशके दृष्टान्तोंको सामने रखकर भारतवर्षके इतिहासको संकीर्ण करके मत देखिए—इसमें जो बहुतसे तात्कालिक विरोध दिखाई पड़ रहे हैं उन्हें देख हताश होकर किसी क्षुद्र चेष्टामें अन्ध भावसे अपने आपको मत लगाइए। ऐसी चेष्टामें किसी प्रकार कृतकार्यता न होगी, इसको निश्चित जानिए। विधाताकी इच्छाके साथ अपनी इच्छा भी सम्मिलित कर देना ही सफलताका एक मात्र उपाय है। यदि उसके साथ विद्रोह किया जायगा तो क्षणिक कार्य्यसिद्धि हमें भुलावा देकर भयंकर विफलताकी खाड़ीमें डुबा मारेगी।

जिस भारतवर्षने सम्पूर्ण मानव महाशक्तियोंके द्वारा स्वयं क्रमशः ऐसा विराट् रूप धारण किया है, समस्त आघात, अपमान, समस्त वेदनाएँ जिस भारतवर्षको इस परम प्रकाशकी ओर अग्रसर कर रही हैं उस महा भारतवर्षकी सेवा बुद्धि और अन्तःकरणके योगसे हममेंसे कौन करेगा? एकरस और अविचलित भक्तिके साथ सम्पूर्ण क्षोभ, अधैर्य्य और अहंकारको इस महासाधनामें विलीनकर भारतविधाताके पदतलमें पूजाके अर्घ्यकी भाँति अपने निर्मल जीवनको कौन निवेदन करेगा? भारतके महा जातीय उद्बोधनके वे हमारे पुरोहित आज कहाँ हैं? वे चाहे जहाँ हों, इस बातको आप ध्रुव सत्य समझिए कि वे चञ्चल नहीं हैं, उन्मत्त नहीं हैं, वे कर्मनिर्देशशून्य महत्त्वाकाङ्क्षाके वाक्यों द्वारा देशके व्यक्तियोंके मनोवेगको उत्तरोत्तर संक्रामक वायु-रोगमें परिणत नहीं करा रहे हैं। निश्चय जानिए कि उनमें बुद्धि, हृदय और कर्मनिष्ठाका अत्यन्त असामान्य समावेश हुआ है, उनमें गम्भीर शान्ति और धैर्य्य तथा इच्छाशक्तिका अपराजित वेग और अध्यवसाय इन दोनोंका महत्त्वपूर्ण सामञ्जस्य है।

परन्तु जब हम देखते हैं कि किसी विशेष घटना द्वारा उत्पन्न उत्तेजनाकी ताड़नासे, किसी सामयिक विरोधसे क्षुब्ध होकर देशके अनेक व्यक्ति क्षणभर भी विचार न कर देशहितके लिये सरपट दौड़ने लगते हैं तब हमें कुछ भी सन्देह नहीं रहता कि केवल मनोवेगका राहखर्च लेकर वे दुर्गम मार्ग ते करनेके लिये निकल पड़े हैं। वे देशके सुदूर और सुविस्तीर्ण मंगलको शान्त भाव और यथार्थ रीतिसे सोच ही नहीं सकते। उपस्थित कष्ट ही उन्हें इतना असह्य मालूम होता है, उसीके प्रतिकारकी चिन्ता उनके चित्तपर इस तरह चढ़ जाती है कि उनकी जब्तकी दीवार बिलकुल ही टूट जाती है और अपने तात्का-

लिक क्लेशकी प्रतिकारचेष्टामें देशके व्यापक हितको हानि पहुँचा देना उनके लिये असम्भव नहीं रह जाता।

इतिहासकी शिक्षाको जैसा चाहिए वैसा समझ लेना बड़ा कठिन काम है। सभी देशोंके इतिहासोंमें जिस समय कोई बड़ी घटना घटित होती है उसके कुछ ही पहले एक प्रबल आघात और आन्दोलनका अस्तित्व अवश्य पाया जाता है। राष्ट्र अथवा समाजपर असामञ्जस्यका भार बहुत दिनोंतक चुपचाप बढ़ता बढ़ता अधिक हो जाता है और तब वह अचानक एक दिन एक आघातसे विप्लवका रूप धारण कर लेता है। उस समय यदि देशमें अनुकूल उपकरण प्रस्तुत रहते हैं, यदि पहले हीसे उसके भाण्डारमें ज्ञान और शक्तिका सम्बल पूर्ण रूपसे संचित रहता है तो देश उस विप्लवके कठोर आघातका निवारण कर नए सामञ्जस्यके योगसे अपना नया जीवन निर्माण कर लेता है। देशका यह आभ्यन्तरिक प्राण सम्बल अन्तःपुरके भाण्डारमें प्रच्छन्न रूपसे सञ्चित होता है, इसलिये हम इसे देख नहीं सकते और इसीसे समझ बैठते हैं कि विप्लवहीके द्वारा देशने सफलता प्राप्त की है; विप्लव ही मंगलका मूल कारण और प्रधान उपाय है।

इतिहासको ऊपर ऊपरसे देखकर यह भूल जाना ठीक न होगा कि जिस देशके मर्मस्थानमें सृष्टि करनेकी शक्ति क्षीण हो गई है, प्रलयके आघातका उससे कदापि निवारण न हो सकेगा। गढ़ने या जोड़नेकी प्रवृत्ति जिसमें सजीव रूपमें विद्यमान है, भंग करनेकी प्रवृत्तिका आघात उसके जीवन-धर्मको ही, उसकी सृजनी शक्तिको ही सचेष्ट और सचेतन करता है। इस प्रकार प्रलय सदा सृष्टिको नवीन बल देकर उत्तेजित करता है; इसीलिये उसका इतना गौरव है। नहीं तो निरा तोड़-फोड़ या विवेकहीन विप्लव किसी प्रकार कल्याणकर नहीं हो सकता।

विरोधी वायुके प्रबलतम झोंकोंकी परवा न कर जो जहाज लंगर खुलने पर समुद्रके पानीको चीरता हुआ चल देता है, निश्चयपूर्वक जानना होगा कि उसके पेंदेके तख्तोंमें कोई दराज नहीं था; अथवा यदि रहा भी हो तो जहाजके मिस्त्रीने किसीको न जनाते हुए चुपचाप उसकी मरम्मत कर डाली है। पर जिस जीर्ण जहाजके तख्ते इतने ढीले हो गए हों कि जरासा हिला देनेहीसे एक दूसरेसे टक्करें लेने लगते हों, क्या उपर्युक्त तूफानी झोंके उसकी पालका सर्वनाश न कर डालेंगे ? हमारे देशमें भी तनिकसी गति दे देनेसे हिन्दूसे मुसलमान, उच्च वर्णसे निम्न वर्णकी टक्करबाजी होने लगती है या नहीं ? जब भीतर इतने छिद्र मौजूद हैं तब तूफानके समय, लहरें चीरकर, स्वराज्यके बन्दरगाह तक पहुँचनेके लिये उत्तेजनाको उन्मादमें बदल लेना ही क्या उत्कृष्ट उपाय है ?

जिस समय बाहरसे देशका अपमान किया जाता है, जिस समय अपने अधिकारोंकी सीमा तनिक विस्तीर्ण करानेकी इच्छा करते ही शासकवर्ग हमें 'नालायक' की उपाधि देने लगता है, उस समय अपने देशमें किसी प्रकारकी दुर्बलता, किसी प्रकारकी त्रुटि स्वीकार करना हमारे लिये अत्यन्त कठिन हो जाता है। उस समय हम दूसरोंसे अपना बचाव करनेके लिये ही अपना बड़प्पन नहीं गाते फिरते, अभिमानके आहत होनेसे अपनी अवस्थाके सम्बन्धमें हमारी बुद्धि भी अन्धी हो जाती है और हम तिरस्कार योग्य नहीं हैं, इसे निमेष मात्रमें सिद्ध कर दिखानेके लिये हम अत्यन्त व्यग्र हो उठते हैं। हम सब कुछ कर सकते हैं, हमारा सभी कुछ मौजूद है, केवल बाहरी रुकावटने हमें अयोग्य और असमर्थ बना रक्खा है—इस बातको गला फाड़ फाड़कर चिल्लानेहीसे हमें सन्तोष नहीं होता; इसी विश्वासके

साथ कार्यक्षेत्रमें कूद पड़नेके लिये भी हमारा लाञ्छित हृदय विह्वल हो उठता है। मनःक्षोभकी इस आत्यन्तिक अवस्थामें ही हम इतिहासका यथार्थ तात्पर्य समझनेमें भूल कर जाते हैं। हम निश्चय कर लेते हैं कि जिस जिस पराधीन देशको कभी स्वाधीनता मिली है, वह विप्लवहीकी कृपासे मिली है। स्वाधीन होने और बने रहनेके लिये और भी किसी गुणकी आवश्यकता है या नहीं, इसको हम स्पष्ट रूपसे समझना ही नहीं चाहते; अथवा विश्वास कर लेते हैं कि सारे गुण हमने सम्पादित कर लिए हैं और हममें विद्यमान हैं, या यही मान लेते हैं कि समय आनेपर वे गुण अपने आप ही किसी न किसी रीतिसे हममें आ जायँगे।

इस प्रकार मानवचित्त जिस समय अपमानकी चोट खाकर अपना बड़प्पन साबित करनेके लिये छटपटाने लगता है, जिस समय पागलकी तरह सारी कठिन बाधाओंका अस्तित्व एक बारगी अस्वीकार करके असाध्य चेष्टा करते हुए आत्महत्याका उपाय करता है, उस समय संसारमें उससे बढ़कर शोचनीय दशा और किसकी हो सकती है? ऐसी दुश्चेष्टा विफलताकी उस खाड़ीमें फेंक देती है जिससे कभी निकलना ही नहीं होता। तथापि हम इसका परिहास नहीं कर सकते। इस चेष्टाके अन्दर मानव प्रकृतिका जो परम दुःखकर अध्यवसाय है, वह सभी स्थानों और सभी समयोंमें नाना निमित्तोंसे, नाना असम्भव आशाओंमें, नाना असाध्य साधनोंमें बारम्बार पंख जले हुए पतंगकी तरह निश्चित पराभवकी अग्निशिखामें अन्धभावसे कूदा करता है।

जो हो, और चाहे जैसे हो, यह नहीं कहा जा सकता कि आघात पाकर शक्तिके अभिमानका जाग्रत होना राष्ट्रका अहित करना है। इसीसे तो हममेंसे कोई कोई यह मानकर कि विरोधके क्रुद्ध आवेगसे ही

हमारा यह उद्यम एकाएक आविर्भूत हुआ है, देशकी शक्तिको विरोधके स्वरूपहीमें प्रकट करनेकी दुर्बुद्धिका पोषण करते हैं। किन्तु जिन्होंने साधारण अवस्थामें स्वाभाविक अनुरागकी प्रेरणासे कभी देशके हित-साधनका नियमित रीतिसे अभ्यास नहीं किया है, जिन्होंने उच्च संकल्पोंको बहुदिनव्यापी धैर्य्य और अध्यवसायकी सहायतासे सैकड़ों विघ्न-बाधाओंके भीतर मूर्तस्वरूप गढ़ लेनेके लिये अपने आपको तैयार नहीं कर लिया है, जो दुर्भाग्यवश बहुत दिनोंसे देशकार्य्यके बृहत् कार्य्य-क्षेत्रसे बाहर रहकर क्षुद्र व्यक्तिगत स्वार्थके अनुसरणमें संकीर्ण रूपसे जीवनके कार्य्य करते रहे हैं, एकाएक विषम क्रोधमें भरकर वे एक पलमें देशका कोई व्यापक हित कर डालें, यह कदापि सम्भव नहीं है। साधारण ऋतुमें जो कभी नावके पास भी नहीं फटके वे ही तूफानके समय डाँड़ हाथमें लेकर असामान्य मल्लाह कहलाकर देश-विदेशोंमें वाहवाही लूटने लगें, ऐसी घटना केवल स्वप्नहीमें सम्भव हो सकती है। अतएव हम लोगोंको भी अपना काम नींवसे ही शुरू करना होगा। इसमें विलम्ब हो सकता है, पर विपरीत उपाय करनेसे और भी अधिक विलम्ब होगा।

मनुष्य व्यापक मंगलकी सृष्टि करता है तपस्या द्वारा। क्रोध और काम इस तपस्याको भंग और उसके फलको एक ही क्षणमें नष्ट कर देते हैं। निश्चय ही हमारे देशमें भी कल्याणमय चेष्टा एकान्त स्थानमें तपस्या कर रही है। जल्दी फल प्राप्त करनेका लोभ उसे नहीं है, तात्क्षणिक आशाभंगके क्रोधको उसने संयमसे जीत लिया है। ऐसे समयमें आज धैर्य्यहीन उन्मत्तता अकस्मात् यज्ञक्षेत्रमें रक्तवृष्टि करके उसके बहुदुःख-सञ्चित तपस्याफलको कलुषित करनेका उपाय कर रही है।

क्रोधके आवेगकी तपस्यापर श्रद्धा ही नहीं होती। वह उसको निश्चेष्टाका पर्य्याय समझता है, अपनी आशु-उद्देश्य-सिद्धिका प्रधान

विघ्न समझकर उससे घृणा करता है और उपद्रव द्वारा उसकी साधना चंचल अतएव निष्फल करनेके लिये उठ खड़ा होता है। फलको पकने देना ही उसकी समझमें उदासीनता है; फलको जबरदस्ती डालसे अलग कर लेनेहीको वह पुरुषार्थ समझता है। मालीके प्रतिदिन वृक्षकी जड़ सींचते रहनेका कारण उसकी समझसे केवल यही है कि उसपर चढ़ जानेका साहस उसमें नहीं है। मालीकी इस कापुरुषतापर उसे क्रोध होता है, उसके कामको वह छोटा काम समझता है। उत्तेजित दशामें मनुष्य उत्तेजनाको ही संसारमें सबसे बड़ा सत्य मानता है, जहाँ वह नहीं होती वहाँ उसको कोई सार्थकता ही नहीं दिखाई पड़ती।

परन्तु स्फुलिंग और शिखामें, चिनगारी और लौमें जो भेद है, उत्तेजना और शक्तिमें भी वही अन्तर है। चकमककी चिनगारियोंसे घरका अन्धकार दूर नहीं किया जा सकता। उसका आयोजन जिस प्रकार स्वल्प है, उसका प्रयोजन भी उसी प्रकार सामान्य है। चिरागका आयोजन अनेकविध है—उसके लिये आधार गढ़ना होता है, वत्ती बनानी पड़ती है, तेल डालना पड़ता है। जब यथार्थ मूल्य देकर ये सब खरीदे जाते हैं या परिश्रम करके स्वयं तैयार कर लिए जाते हैं, तभी आवश्यकता पड़ने पर स्फुलिङ्ग अपनेको स्थायी शिखामें परिणत करके घरको प्रकाशित कर सकता है। जहाँ यथेष्ट चेष्टा नहीं होती प्रदीपके उपयुक्त साधन निर्मित अथवा प्रस्तुत नहीं किए जाते, जहाँ लोग चकमकसे अनायास चिनगारियोंकी वर्षा होते देखकर आनन्दमें उन्मत्त हो जाते हैं, सत्यके अनुरोधसे स्वीकार करना पड़ेगा कि वहाँ घरमें रोशनी पैदा करनेकी इच्छा तो कभी सफल नहीं हो सकती, पर हाँ घरमें आग लग जाना सम्भव है।

पर शक्तिको सुलभ करनेके प्रयत्नमें मनुष्य उत्तेजनाका अवलम्बन करता है। उस समय वह यह भूल जाता है कि यह अस्वाभाविक

सुलभता एक ओर तो कुछ दाम लेकर राजी हो जाती है, पर दूसरी ओर इतना कसकर वसूल कर लेती है कि आरम्भसे ही उसको बहुमूल्य मान लेनेसे वह अपेक्षाकृत कम मूल्यमें पाई जा सकती है।

हमारे देशमें भी जब देशकी हितसाधनबुद्धि नामका दुर्लभ महा-मूल्य पदार्थ एक आकस्मिक उत्तेजनाकी कृपासे आबालवृद्धवनितामें इतनी प्रचुरतासे दिखाई पड़ने लगा जिसका हम कभी अनुमान भी न कर सकते थे, तब हमारी सरीखी दरिद्र जातिके आनन्दका पारावार नहीं रहा। उस समय हमने यह सोचना भी नहीं चाहा कि उत्तम पदार्थकी इतनी सुलभता अस्वाभाविक है। इस व्यापक पदा-र्थको कार्य्यनियमोंसे बाँधकर संयत संहत न करनेसे इसकी वास्त-विक उपयोगिता ही नहीं रह जाती। यदि सभी ऐरे गैरे पागलोंकी तरह यह कहने लगें कि हम युद्ध करनेके लिये तैयार हैं, और हम उन्हें अच्छे सैनिक समझकर इस बातपर आनन्द-मग्न होने लगें कि उनकी सहायतासे हम सहजमें सब काम कर लेंगे, तो प्रत्यक्ष युद्धके समय हम अपना सारा धन और प्राण देकर भी इस सस्तेपनके परन्तु सांघातिक उत्तरदायित्वसे बच न सकेंगे।

असल बात यह है कि मतवाला जिस प्रकार केवल यही चाहता है कि मेरे और मेरे साथियोंके नशेका रंग गहरा ही होता जाय, उसी प्रकार जिस समय हमने उत्तेजनाकी मादकताका अनुभव किया, उस समय उसके बढ़ाते ही जानेकी इच्छा हममें अनिवार्य हो उठी और अपनी इस इच्छाको नशेकी ताड़ना न मानकर हम कहने लगे कि—"शुरूमें भावकी उत्तेजना ही अधिक आवश्यक वस्तु है, यथारीति परिपक्व होकर वह अपने आप ही कार्य्यकी ओर अग्रसर होगी। अतः जो लोग रातदिन काम काम चिल्लाकर अपने गले सुखा रहे हैं वे छोटी

समझके लोग हैं—उनकी दृष्टि व्यापक नहीं है, वे भावुक नहीं हैं; हम केवल भावसे देशको मतवाला बना देंगे; समस्त देशको एकत्रकर भावका भैरवी चक्र बैठावेंगे जिसमें इस मंत्रका जाप किया जायगा—

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत् पतति भूतले।
उत्थाय च पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥

चेष्टाकी आवश्यकता नहीं, कर्मकी आवश्यकता नहीं, गढ़ने-जोड़नेकी आवश्यकता नहीं, केवल भावोच्छ्वास ही साधना है, मत्तता ही मुक्ति है।

हमने बहुतोंको आह्वान किया, बहुतोंको इकट्ठा किया, जनताका विस्तार देखकर हम आनन्दित हुए; पर ऐसे कार्य्यक्षेत्रमें हमनें उन्हें नहीं पहुँचाया जिसमें उद्बोधित शक्तिको सब लोग सार्थक कर सकते। उत्साह मात्र देने लगे, काम नहीं दिया। इससे बढ़कर मनुष्यके मनको अस्वस्थ करनेवाला काम दूसरा नहीं हो सकता। हम सोचते हैं कि उत्साह मनुष्यको निर्भीक बनाता है और निर्भीक हो जानेपर वह कर्म-मार्गकी बाधा-विपत्तियोंसे नहीं डरता। परन्तु बाधाओंके सिरपर पैर रखकर आगे बढ़नेकी उत्तेजना ही तो कर्मसाधनका सर्व प्रधान अङ्ग नहीं है—स्थिरबुद्धिसे युक्त होकर विचार करनेकी शक्ति, संयत होकर निर्माण करनेकी शक्ति, उससे बड़ी है। यही कारण है कि मतवाला मनुष्य हत्या कर सकता है पर युद्ध नहीं कर सकता। यह बात नहीं है कि युद्धमें मत्तताकी कुछ भी मात्रा न रहती हो, पर अप्रमत्तता ही प्रभु होकर उसका सञ्चालन करती है। इसी स्थिरबुद्धि दूरदर्शी कर्मोत्साही प्रभुको ही वर्त्तमान उत्तेजनाकालमें देश ढूँढ़ रहा है—पुकार रहा है, पर अभागे देशके दुर्भाग्यके कारण उसका पता नहीं मिलता। हम दौड़कर आनेवाले लोग केवल शराबके बरतनमें शराब ही भरते हैं, इंजिनमें

आपका बल ही बढ़ाते रहते हैं। जब पूछा जाता है कि रास्ता साफ करने और पटरियाँ बिछानेका काम कौन करेगा, तब हमारा जवाब होता है—इन फुटकर कामोंको लेकर दिमाग खराब करना फजूल है—समय आनेपर सब कुछ अपने आप ही हो जायगा। मजदूरका काम मजदूर ही करेगा; हम जब ड्राइवर हैं तब इंजिनमें स्टीम ही बढ़ाते रहना हमारा कर्त्तव्य है।

अब तक जो लोग सहिष्णुता रख सके हैं, संभव है कि वे हमसे पूछ बैठें कि—"तब क्या बंगालके सर्वसाधारण लोगोंमें जो उत्तेजनाका उद्रेक हुआ है, उससे किसी भी अच्छे फलकी आशा नहीं की जा सकती ?"

नहीं, हम ऐसा कभी नहीं समझते। अचेतन शक्तिको सचेष्ट या सचेतन करनेके लिये इस उत्तेजनाकी आवश्यकता थी। पर जगा कर उठा देनेके अनन्तर और क्या कर्त्तव्य है ? कार्यमें नियुक्त करना या शराबमें मस्त करके मतवाला कर देना ? शराबकी जितनी मात्रा क्षीण प्राणको कार्यक्षम बनाती है उससे अधिक मात्रा फिर उसकी कार्यक्षमता नष्ट कर देती है। सत्य कर्ममें जिस धैर्य और अध्यवसायका प्रयोजन होता है मतवालेकी शक्ति और रुचि उससे विमुख हो जाती है। धीरे धीरे उत्तेजना ही उसका लक्ष्य हो जाती है और वह विवश होकर कार्यके नामपर ऐसे अकार्योंकी सृष्टि करने लगता है जो उसकी मत्तताहीकी अनुकूलता करते हैं। इस सारे उत्पात कर्मको वस्तुतः वह मादकता बढ़ानेका निमित्त समझकर ही करता है और इनके द्वारा उत्तेजनाकी मात्राको घटने नहीं देता। मनोवेग जब कार्य्योंमें मार्गसे बाहर निकलनेका रास्ता नहीं पाता, और भीतर ही भीतर सञ्चित और वर्द्धित होता रहता है तब वह विषका काम करता है,

उसका अप्रयोजनीय व्यापार हमारे स्नायुमण्डलको विकृत करके कर्म-सभाको नृत्यसभामें बदल देता है।

नींदसे जागने और अपनी सचल शक्तिकी वास्तविकताका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये उत्तेजनाके जिस एक आघातकी आवश्यकता होती है उसीका हमें प्रयोजन था। हमने विश्वास कर लिया था कि अँग-रेज जाति हमारे जन्मान्तरके पुण्य और जन्मकालके शुभग्रहकी भाँति हमारे पैवन्द लगे टुकड़ोंमें हमारे समस्त मंगलोंको बाँध देगी। विधा-तानिर्दिष्ट इस अयत्नप्राप्त सौभाग्यकी हम कभी बन्दना करते और कभी उससे कलह करके कालयापन करते थे। इस प्रकार जब मध्या-ह्नकालमें सारा संसार जीवनयुद्धमें निरत होता था तब हमारी सुखनिद्रा और भी गाढ़ी होती थी।

ऐसे ही समय किसी अज्ञात दिशासे एक ठोकर लगी। नींद भी टूट गई और फिर आँखें मूँदकर स्वप्न देखनेकी इच्छा भी नहीं रह गई; पर आश्चर्य है कि हमारी उस स्वप्नावस्थासे जागरणका एक विषयमें मेल रह ही गया।

तब हम निश्चिन्त हो गये थे—हमें भरोसा हो गया था कि प्रयत्न न करके भी हम प्रयत्नका फल प्राप्त कर लेंगे। अब सोचते हैं कि फल प्राप्तिके लिये प्रयत्नकी जितनी मात्रा आवश्यक है उसको बहुत कुछ घटाकर भी हम वही फल प्राप्त कर सकते हैं। जब स्वप्न देखते थे तब भी असम्भवका आलिंगन किए हुए थे; जब जागे तब भी असम्भवको अपने बाहुजालके बाहर न कर सके। शक्तिकी उत्तेजना हममें बहुत अधिक हो जानेके कारण अत्यावश्यक विलम्ब हमें अना-वश्यक जान पड़ने लगा। बाहर वही पुराना दैन्य रह गया है, अन्दर

नवजाग्रत शक्तिका अभिमान जोर पकड़े हुए है। दोनोंका सामञ्जस्य कैसे होगा? धीरे धीरे? क्रम क्रमसे? बीचकी विशाल खाड़ीमें पत्थरका पुल बाँधकर? पर अभिमान विलम्ब नहीं सह सकता, मत्तता कहती है, हमें सीढ़ी न चाहिए, हम उड़ेंगे! सुसाध्यका साधन तो सभी कर लेते हैं, हम असाध्य कार्य्यका साधन कर जगत्‌को चमत्कृत कर देंगे— यही कल्पना हमें उत्तेजित किए रहती है। इसका एक कारण है। प्रेम जब जागता है तब वह शुरूसे ही सब कार्य्य करना चाहता है, छोटा हो या बड़ा, वह किसीका तिरस्कार नहीं करता। कहीं कोई कर्त्तव्य असमाप्त न रह जाय यह चिन्ता उसके चित्तसे कभी दूर नहीं होती। प्रेम अपने आपको सार्थक करना चाहता है, अपनेको प्रमाणित करनेके लिये वह परेशान नहीं होता। पर अपमानकी ठोकर खाकर जागनेवाला आत्माभिमान छाती फुलाकर कहता है—हम धीरे धीरे डगें रखते हुए नहीं चलेंगे, हम छलाँगें मारकर ही चलेंगे। अर्थात् जो वस्तु संसारभरके लिये उपयोगी है, उसके लिये उसका कोई प्रयोजन नहीं—धैर्य्यका प्रयोजन नहीं, अध्यवसायका प्रयोजन नहीं, दूरवर्त्ती उद्देश्यको लक्ष्यकर देरमें फल देनेवाले साधनोंका अवलम्बन करनेका प्रयोजन नहीं। फल यह होता है कि कल जिस प्रकार दूसरेके बलका अन्धभावसे भरोसा किए बैठे थे, आज उसी प्रकार अपने बलपर हवाई किले तयार कर रहे हैं। उस समय यथाविहित कर्मसे दूर भागनेकी चेष्टा थी, इस समय भी वही चेष्टा वर्त्तमान है। ईसपके किस्सेवाले किसानके आलसी बेटे, जबतक बाप जीवित था, भूलकर भी खेतके पास नहीं फटके। बाप हल जोतता था और वे उसकी कमाई निश्चिन्त होकर खाते थे। जब बाप मर गया तब वे खेतके समीप जानेको बाध्य हुए—पर हल चलानेके लिये नहीं।

उन्होंने निश्चय किया कि पिताजी जो खेतमें गड़ा हुआ धन बतला गये हैं, उसे फावड़ेसे खोदकर हम एक ही बारमें जड़से उखाड़ लेंगे। इस बातके सीखनेमें कि खजानेका गड़ा धन उस खेतसे प्रतिवर्ष पैदा होनेवाला अन्न ही है उनका बहुतसा समय व्यर्थ नष्ट हो गया। हम लोग भी यदि जल्दी इस बातको न समझ लेंगे कि कोई अद्भुत उपाय करके गड़ा खजाना हम केवल मनोराज्यहीमें प्राप्त कर सकते हैं, प्रत्यक्ष जगत्में और सब लोग उसको जिस प्रकार प्राप्त और भोग करते हैं, हमें भी यदि ठीक उसी रीतिसे उसे प्राप्त करना होगा, तो ठोकरों और दुःखोंकी संख्या और मात्रा बढ़ती ही जायगी और इस विषयमें हम जितना ही अग्रसर होते जायँगे, लौटनेका रास्ता भी उतना ही लम्बा और दुर्गम होता जायगा।

अधैर्य्य अथवा अज्ञानके कारण जब स्वाभाविक उपाय पर अश्रद्धा हो जाती है और कुछ असाधारण घटना घटित कर डालनेकी इच्छा अत्यन्त प्रबल हो उठती है उस समय धर्मबुद्धि नष्ट हो जाती है; उस समय उपकरण केवल उपकरण उपाय केवल उपाय समझ पड़ते हैं। उस समय छोटे छोटे बच्चोंतकको निर्दयतापूर्वक इस उन्मत्त इच्छाके आगे बलि कर देनेमें मनको आगा पीछा नहीं होता। महाभारतके सोमक राजाकी तरह असामान्य उपाय द्वारा सिद्धि प्राप्त करनेके लोभमें हम अपने अति सुकुमार छोटे बच्चेको भी यज्ञकी अग्निमें समर्पित कर बैठे हैं। इस विचारहीन निष्ठुरताका पाप चित्रगुप्तकी दृष्टि नहीं बचा सका, उसका प्रायश्चित्त आरम्भ हो चुका है —बालकोंकी वेदनासे सारे देशका हृदय विदीर्ण हो रहा है। हम नहीं जानते कि अभी और कितना दुःख सहना होगा।

दुःख सह लेना उतना कठिन नहीं है, पर दुर्मतिको रोकना या दबा लेना अत्यंत दुष्कर कार्य्य है। अन्याय या अनाचारको एक बार

भी कार्य्यसाधनमें सहायक मान लेनेपर अन्त:करणको विकृतिके अधीन होनेसे रोकनेकी सारी स्वाभाविक शक्ति चली जाती है,—न्याय-धर्मके ध्रुवकेन्द्रसे एक बार भी हट जानेपर बुद्धिका नाश हो जाता है, कर्ममें स्थिरता नहीं रह जाती। ऐसी दशामें विश्वव्यापिनी धर्म-व्यवस्थाके साथ अपने भ्रष्ट जीवनका सामञ्जस्य फिर स्थापित करनेके लिये प्रचंड संघात अनिवार्य हो जाता है।

कुछ कालसे हमारे देशमें यही प्रक्रिया चल रही है, यह बात हमें अवनतहृदय होकर दु:खके साथ स्वीकार करनी ही पड़ेगी। यह आलोचना हमें अत्यन्त अप्रिय है, केवल इसीलिये उसे चुपचाप दबा रखना या उसपर अतिशयोक्तिका परदा डाल देना और इस प्रकार व्याधिको घातक होनेका अवसर देना हमारा या आपका किसीका कर्त्तव्य नहीं है।

"हम यथासाध्य विलायती वस्तुओंका व्यवहार न कर देशी शिल्पकी रक्षा और उन्नतिका प्रयत्न करेंगे," ऐसी आशंका न कीजिए कि हम इसके विरुद्ध कुछ कहेंगे। आजसे बहुत दिनों पहले जब हमने लिखा था—

निज हाथहिं जो अन्न पकावै। अथवा मोटे वस्त्र बनावै॥
जदपि कदन्न कुवस्त्रहु होई। सुमधुर सुन्दर लागत दोई॥

उस समय लार्ड कर्जनपर हमारे क्रोध करनेका कोई कारण नहीं था और स्वदेशी भाण्डार स्थापित करके देशी वस्तुओंका प्रचार करनेकी चेष्टा करनेमें हमें समयकी धाराके विरुद्ध ही चलना पड़ा था।

तथापि, विदेशी वस्तुओंके स्थानपर स्वदेशी वस्तुओंका प्रचार करना कितना ही महत्त्वशाली कार्य्य क्यों न हो, पर हम यह किसी प्रकार

न मानेंगे कि उसके समर्थनके लिये लेशमात्र भी अन्याय उचित होगा। विलम्ब अच्छा है, विरोध भी अच्छा है, इनसे दीवार ठोस और कार्य्य परिपक्व होगा, पर वह इन्द्रजाल अच्छा नहीं है जो एक रातमें ही अट्टालिकाका निर्माण कर दे और तिसपर भी हमसे नकद उजरत लेनेसे इनकार करे। पर हाय न जाने क्यों मनमें इस भयका स्थान अटल हो गया है कि यदि एक क्षणमें ही हमने मेञ्चेस्टरके सारे कारखानोंपर ताले न चढ़वा दिये तो हमारे किये कुछ भी न हो सकेगा, क्योंकि दीर्घकालतक इस दुःसाध्य उद्देश्यको अटल निष्ठाके साथ सम्मुख रखनेकी शक्ति हममें नहीं है। यही कारण है कि हम हाथोंहाथ बंग-भंगका बदला चुका लेनेके लिये इतने व्यग्र हैं और इस व्यग्रतामें मार्ग अमार्गका विचार करना ही नहीं चाहते। अपने आप पर विश्वास न रखनेवाली हमारी दुर्बलता, चारों ओरसे उठनेवाली शीघ्रताकी कानोंको बहरा करनेवाली ध्वनिमें भूलकर स्वभावपर अश्रद्धा और शुभबुद्धिको अमान्य करती हुई तत्काल लाभ उठा लेना चाहती है और पीछे बरसों तक देनेका खाता खतियाती और भुकतान करती रहना चाहती है। मंगलको पीड़ित करके मंगल पाना असम्भव है, स्वाधीनताकी जड़ खोदकर स्वाधीनताका उपयोग करना त्रिकालमें न होनेवाली बात है—इसे क्षणमात्र भी सोचनेका कष्ट उससे सहा नहीं जाता।

हममेंसे बहुतोंको मालूम नहीं और बहुतेरे जानकर भी स्वीकार नहीं करना चाहते कि अनेक अवसरोंपर देशवासियोंपर अत्याचार करके बहिष्कारकी साधना कराई गई है, उनकी इच्छा न रहते हुए, उन्हें जबरदस्ती इस आन्दोलनमें सम्मिलित किया गया है। हम जिस बातको श्रेष्ठ समझते हैं दूसरोंको उपदेश और उदाहरण द्वारा उसकी श्रेष्ठता समझानेमें लगनेवाला विलम्ब यदि हमसे सहन न हो, दूसरोंके

अधिकारोंमें बलपूर्वक हस्तक्षेप करनेको अन्याय समझनेका अभ्यास यदि देशसे चला जाय, तो असम्भवको किसी सीमामें बाँध रखना असम्भव हो जायगा। जब कर्त्तव्यके नामसे अकर्त्तव्यकी प्रबलता होती है तब देखते देखते ही समस्त देश अप्रकृतिस्थ हो जाता है। इसीसे स्वाधीनताकी दुहाई देते हुए हम वास्तविक स्वाधीनता धर्मके साथ विद्रोह कर रहे हैं। देशमें जो मतकी अनेकता और इच्छाकी विषमता है उसे लट्ठकी सहायतासे एकाकार कर देनेको कर्त्तव्य समझनेवाली दुर्बुद्धि हममें उत्पन्न हो गई है। हम जो कहते और करते हैं दूसरोंको भी वही कहने और करनेके लिये बाध्य करके देशके समस्त मत, इच्छा और आचरणके विरोधको अपघात मृत्युद्वारा पञ्चत्व लाभ करा देनेहीको हम जातीय एकता निश्चित कर बैठे हैं। मतान्तरको हम समाजमें पीड़ा पहुँचाते हैं, समाचारपत्रोंमें उसको अत्यन्त तीखी गालियाँ सुनाते हैं, यहाँतक कि उसपर अपने मतकी सत्ता स्थापित करनेके लिये शारीरिक चोट पहुँचानेकी धमकी देने तकसे बाज नहीं आते। आप अच्छी तरह जानते हैं और हम और भी अच्छी तरह जानते हैं कि ऐसी गुमनाम धमकियाँ देनेवालोंकी संख्या उँगलियोंपर नहीं गिनी जा सकती। देशके विज्ञ और प्रतिष्ठित पुरुषतक इस अपमानसे नहीं बचे हैं। संसारके अनेक महापुरुषोंने विरुद्ध सम्प्रदायमें अपना मत प्रचार करनेके लिये अपने प्राणतक विसर्जन कर दिए हैं; हम भी मत प्रचार करना चाहते हैं—दूसरोंको अपने अनुकूल करना चाहते हैं, पर और सभी दृष्टान्तोंको एक ओर रखकर हमने केवल कालापहाड़ हीको * गुरु चुन लिया है।

---

* यह बंगालके प्रथम मुसलमान नवाब सुलेमान करआनीका सेनापति था। इसने आसाम उड़ीसा और काशीके बीचके प्रदेशमें ढूँढ़ ढूँढ़कर मूर्तियाँ और

हम पहले ही कह चुके हैं कि जिसमें जोड़नेकी शक्तिका अभाव है, तोड़नेका प्रयास उसके लिए मृत्युस्वरूप है। हम पूछते हैं, हमारे देशमें यह गठनतत्त्व कहाँ प्रकाशित हो रहा है? हमको संगठित और एक रखनेके लिये कौन सृजनी शक्ति हमारे अभ्यन्तरमें काम कर रही है? भेदके लक्षण ही तो चारों ओर दिखाई दे रहे हैं। जबतक हममें विच्छिन्नताकी ही प्रबलता है तबतक सब कुछ करके भी हम अपना प्रभुत्व प्रतिष्ठित न कर सकेंगे और तब दूसरे हमपर प्रभुता करेंगे ही, हम किसी प्रकार उनको इससे रोक नहीं सकेंगे। बहुतोंके विचारमें इस देशकी पराधीनता शिर:पीड़ाकी तरह भीतरकी बीमारी नहीं है, एक बोझ है जो अँगरेज सरकारके रूपमें बाहरसे हमारे सिरपर लाद दिया गया है,—यदि हम किसी उपायसे एक बार इसको कहीं पटक दे सकें, तो सदाके लिये हल्के हो जायँ। पर यह काम इतना सहज नहीं है। ब्रिटिश सरकार हमारी पराधीनता नहीं है, वह हमारी गम्भीरतर पराधीनताका प्रमाण है।

परन्तु गम्भीरतर कारणोंकी छानबीन करनेका अवकाश या इच्छा आजकल हमको नहीं है। इतनी भिन्न भिन्न जातियोंके रहते हुए भी किस प्रकार भारतमें एक महाजाति बनकर स्वराज्यकी स्थापना करेगी? जिस समय यह प्रश्न किया जाता है; उस समय हममेंसे कई एक जल्दबाज इस तिरछी पगडंडीसे झट मंजिलपर पहुँच जाते हैं कि स्विटजरलैण्डमें भी तो अनेक जातियाँ बसती हैं, पर क्या इससे वहाँ स्वराज्य-स्थापनामें बाधा पड़ी?

मन्दिर तोड़वाए। हिन्दुओंको इसने जितना सताया उतना शायद ही और किसी मुसलमानने सताया हो। बंगालमें लोगोंका विश्वास है कि यह जन्मसे ब्राह्मण था। नवाबकी कन्यापर आसक्त होकर मुसलमान हो गया था। पर फारसी इतिहासोंमें इसे पठान लिखा है।—अनु०।

ऐसी नजीर पेशकर हम अपने आपको भुला सकते हैं, पर विधाताकी आखोंमें धूल नहीं झोंक सकते। जातिभिन्नत्वके रहते हुए भी स्वराज्य चलाया जा सकता है या नहीं, वास्तवमें यही मुख्य प्रश्न नहीं है। विभिन्नता तो किसी न किसी रूपमें सभी जगह है, जिस परिवारमें दस आदमी हैं वहाँ दस विभिन्नताएँ हैं। मुख्य प्रश्न यह है कि विभिन्नताके भीतर एकताका तत्त्व काम कर रहा है या नहीं। सैकड़ों जातियोंके होते हुए भी यदि स्विटजरलैण्ड एक हो सका तो मानना पड़ेगा कि एकत्वने वहाँ भिन्नत्वपर विजय प्राप्त कर ली है। वहाँके समाजमें भिन्नत्वके रहते हुए प्रबल ऐक्य धर्म भी है। हमारे देशमें विभिन्नता तो वैसी ही है; पर ऐक्य धर्मके अभावसे वह विश्लिष्टतामें परिवर्त्तित हो गई है और भाषा, जाति, धर्म, समाज और लोकाचारमें नाना रूप और आकारोंमें प्रकट होकर इस बृहत् देशके उसने छोटे बड़े हजारों टुकड़े कर रक्खे हैं।

अतएव उक्त दृष्टान्त देखकर निश्चिन्त हो बैठनेका तो कोई कारण नहीं देख पड़ता। आँख मूँदकर यह मंत्र रटनेसे धर्म या न्यायके देवताके यहाँ हमारी सुनवाई न होगी कि हमारा और सब कुछ ठीक हो गया है, बस अब किसी प्रकार अँगरेजोंसे गला छुड़ाते ही बंगाली, पंजाबी, मराठे, मदरासी, हिन्दू, मुसलमान सब एक मन, एक प्राण, एक स्वार्थ हो स्वाधीन हो जायँगे।

वास्तवमें आज भारतवर्षमें जितनी एकता दिखाई पड़ती है और जिसे देखकर हम सिद्धिलाभको सामने खड़ा समझ रहे हैं वह यांत्रिक है, जैविक नहीं। भारतकी विभिन्न जातियोंमें यह एकता जीवनधर्मकी प्रेरणासे नहीं प्रकट हुई है, किन्तु एक ही विदेशी शासनरूपी रस्सीने हमें बाहरसे बाँधकर एकत्र कर दिया है।

सजीव पदार्थ बहुत समय तक यांत्रिक भावसे एकत्र रहते रहते जैविक भावसे संयुक्त हो जाते हैं। भिन्न भिन्न जातिके दो वृक्षोंकी डालियोंका इसी रीतिसे कलम लगाया जाता है। किन्तु जबतक उनका निर्जीव संयोग सजीव संयोगमें बदल नहीं जाता तबतक उन्हें बाहरी बन्धनसे मुक्त कर देना ठीक नहीं होता। इसमें सन्देह नहीं कि रस्सीका बन्धन वृक्षका अपना अंग नहीं है और इसलिये वह चाहे जैसे लगाया गया हो और चाहे जितना उपकार करता हो, वृक्षको उससे पीड़ा अवश्य पहुँचेगी। पर यदि विभिन्नताको एक कलेवरमें बद्ध देखनेकी इच्छा हो तो यह पीड़ा स्वीकार न करनेसे काम न चलेगा। बन्धन आवश्यकतासे अधिक कड़ा है, यह बात सत्य हो सकती है। पर इसका एक मात्र उपाय है अपनी सम्पूर्ण आभ्यन्तरिक शक्तियोंको लगाकर जोड़के मार्गसे एक दूसरेके रससे रस और प्राणसे प्राण मिलाकर जोड़को पक्का कर डालना। यह बात पूरे विश्वासके साथ कही जा सकती है कि जोड़ पक्का हो जानेपर, दोनों टहनियोंके एक जीव हो जानेपर, हमारा माली अवश्य ही हमारा बन्धन काट देगा। अँगरेजी शासन नामक बाहरी बन्धन स्वीकार करके, उसपर जड़ भावसे निर्भर न रहकर हमें सेवाद्वारा, प्रीतिद्वारा, सम्पूर्ण कृत्रिम व्यवधानोंके नाशद्वारा विच्छिन्न भारतवर्षको सजीव बन्धनमें बाँधकर एक कर लेना होगा। एकत्र संघटनमूलक हजारों प्रकारके सृजनके काममें भौगोलिक भूखण्डको स्वदेशके रूपमें गढ़ना पड़ेगा और छिन्न भिन्न जनसमूहको प्रयत्नद्वारा स्वजातिके आकारमें परिणत करना पड़ेगा।

सुनते हैं, किसी किसीका यह भी मत है कि अँगरेजोंके प्रति देशवासी सर्वसाधारणका विद्वेष ही हममें एकता उत्पन्न करेगा। प्राच्य जातियोंके प्रति अँगरेजोंकी स्वाभाविक निर्ममता, उदासीनता और

उद्धतता भारतवर्षके छोटे बड़े सभीको व्यथित कर रही है। जितना ही समय बीत रहा है इस वेदनाका तप्तशूल हमारे कलेजोंमें उतना ही अधिक विंधता जा रहा है। यह नित्य बढ़नेवाली वेदनाकी एकता ही भारतकी भिन्न भिन्न जातियोंके एक होनेका उपक्रम कर रही है। अतएव अँगरेज-विद्वेषको हमें अपना प्रधान सहायक अवश्य मानना पड़ेगा।

यदि यह बात सत्य है तो जब विद्वेषका कारण दूर हो जायगा, जब अँगरेज यह देश छोड़कर चले जायँगे—तब हमारी बनावटी एकताका सूत्र भी तो क्षण मात्रमें ही टूट जायगा। उस समय विद्वेषका दूसरा विषय हमें कहाँ मिलेगा? उसे ढूँढ़ने हमें दूर न जाना पड़ेगा, बाहर भी न जाना पड़ेगा। रक्तकी प्यासी हमारी विद्वेष-बुद्धि आपसमें ही एक दूसरेको क्षत-विक्षत करने लगेगी।

"उस समय तक किसी न किसी प्रकार कोई उपाय निकल ही आवेगा, इस समय इसी तरह चले चलो,"—जो लोग ऐसा कहते हैं वे इस बातको भूल जाते हैं कि देश केवल उन्हींकी सम्पत्ति नहीं है, व्यक्तिगत राग द्वेष, और इच्छा अनिच्छाको लेकर उनके चले जानेपर भी देश रह जायगा। ट्रस्टी जिस तरह सौंपे हुए धनको सर्वश्रेष्ठ और सर्वापेक्षा आवश्यक कार्य्यमें ही व्यय कर सकता है, मनमाने ऐसे वैसे कामोंमें उसे खर्च कर डालनेका अधिकार नहीं होता, उसी तरह देश जो अनेक व्यक्तियों और अनेक कालकी जायदाद है उसके कल्याणको भी किसी क्षणिक क्षोभके आवेगवश अदूरदर्शी तत्कालोत्पन्न बुद्धिकी संशयापन्न व्यवस्थाके हाथमें आँखें मूँदकर सौंप देनेका हममेंसे किसीको अधिकार नहीं है। स्वदेशका भविष्य जिससे संकटापन्न हो जाय, तात्कालिक उत्तेजनाके प्रभावमें आकर ऐसा विवेकहीन

काम कर डालना किसीका कभी कर्त्तव्य नहीं हो सकता। कर्मफल अकेले हमको ही नहीं मिलेगा। उसका दु:ख बहुतोंको उठाना पड़ेगा।

इसीसे कहते हैं और बारम्बार कहेंगे कि शत्रुताबुद्धिको आठोंपहर बाहरहीकी ओर उद्यत रखनेके लिये उत्तेजनाकी अग्निमें अपने सम्पूर्ण सञ्चित सम्बलकी आहुति मत दे डालो, परायेपर हर समय दाँत पीसनेवाली आदत रोककर रास्ता बदल दो। आषाढ़में आकाशचारी मेघ जिस प्रकार मुसलाधार वर्षा करनेके लिये तपी, सूखी, तृषातुर भूमिके समीप आ जाते हैं उसी प्रकार तुम भी अपने ऊँचे स्थानसे देशकी सारी जातियों सारे मनुष्योंके बीच आकर खड़े हो जाओ और अनेक दिङ्मुखी कल्याणचेष्टाके बृहत् जालमें स्वदेशको सब प्रकारसे बाँध लो, कर्मक्षेत्रको इतना उदार, इतना विस्तीर्ण करो जिसमें ऊँच, नीच, हिन्दू मुसलमान सभी वहाँ एकत्र होकर हृदयसे हृदय, चेष्टासे चेष्टाका सम्मिलन करा सकें। हमारे प्रति राजाका सन्देह और प्रतिकूलता पग पगपर हमारा प्रतिरोध करेगी; पर वह कभी हमें विजित या विनष्ट न कर सकेगी—हम जयी होंगे ही। पागलकी भाँति चट्टानपर सिर पटककर नहीं, अविचलित अध्यवसायके द्वारा धीरे धीरे उसको अतिक्रम करके ऐसे अध्यवसायकी कृपासे हम केवल जयी ही न होंगे बल्कि कार्य्यसिद्धिकी सच्ची साधनाको देशमें बहुत समयके लिये रक्षित कर जायँगे, आनेवाली पीढ़ियोंके लिये एक एक करके सम्पूर्ण कार्य्योंके द्वार खोल देंगे।

आज जो यह बन्दियोंकी हथकड़ियों और बेड़ियोंकी कठोर झंकार सुनाई पड़ती है—दण्डधारी पुरुषोंके पैरोंके प्रहारसे राजपथ काँपता हुआ चिल्ला रहा है, इसीको बड़ी भारी बात मत समझो। यदि कान लगाकर सुनोगे तो कालके महासंगीतमें यह क्रन्दन न जाने कहाँ विलीन

हो जायगा ! अनेक युगोंसे इस देशमें न जाने कितने विप्लव और कितने अत्याचार हुए और इस देशके सिंहद्वारपर न जाने कितने राज-प्रताप आए और चले गए, इन सब बातोंके बीचमेंसे भारतवर्षकी परिपूर्णता अभिव्यक्त होकर उठ रही है। आजके क्षुद्र दिनका जो क्षुद्र इतिहास उस पुराने बड़े इतिहासके साथ मिल रहा है, क्या कुछ दिनों बाद उस समग्र इतिहासमें यह क्षुद्र इतिहास कहीं दिखलाई भी पड़ेगा ! हम भय न करेंगे, क्षुब्ध न होंगे, भारतवर्षकी जो परम महिमा कठोर दुःखराशिमेंसे विश्वके सृजनानन्दको बहनकर व्यक्त हुआ करती है—भक्त-साधकके प्रशान्त ध्यान-नेत्रसे हम उसकी अखंड मूर्तिके दर्शन करेंगे, चारों ओरके कोलाहल और चित्त-विक्षेपके समय भी साधनाको उस उच्च लक्ष्यकी ओर निरन्तर बढ़ाए चलेंगे। विश्वास करेंगे कि इसी भारतवर्षमें युगयुगान्तरके मानवचित्तोंकी आकांक्षा-धाराओंका मिलाप हुआ है, यहाँ ही ज्ञानके साथ ज्ञानका मन्थन, जातिके साथ जातिका मिलन होगा। वैचित्र्य यहां अत्यन्त जटिल है, विच्छेद अत्यन्त प्रबल है, विपरीत वस्तुओंका समावेश अत्यन्त विरोधपूर्ण है। इतने बहुत्व, इतनी वेदना, इतने आघातको इतने दीर्घकाल तक बहन करके और कोई देश अब तक जीता न रह जाता। पर भारतमें एक अति वृहत्, अति महान् समन्वयका उद्देश्य ही इन सारे आत्यन्तिक विरोधोंको धारण किए हुए है, परस्परके आघात प्रतिघातमें किसीको नष्ट नहीं होने देता। ये सारे विविध, विचित्र उपकरण जो कालकालान्तर और देशदेशान्तरसे यहां ला रक्खे गए हैं, अपने निर्बल अँगूठों द्वारा उन्हें ठुकराकर फेंक देनेके प्रयत्नमें हमारा ही अँगूठा टूटेगा, वे अपनी जगहसे टससे मस भी नहीं होंगे। हम जानते हैं कि बाहरसे किए जानेवाले अन्याय और

अपमान हमारी ऐसी प्रवृत्तिको उत्तेजित करते हैं जो आघात करना ही जानती है, धैर्य्यके लिये जिसमें कोई स्थान ही नहीं है, और जो विनाश स्वीकार करके भी अपनी चरितार्थताको ही—अँगूठा तोड़ लेना मंजूर करके भी ठोकर मारनेको ही—सार्थक समझती है। पर इस आत्माभिमानजनित प्रमत्तताको दूर भगानेके लिये हमारे अन्त:-करणमें गम्भीर आत्मगौरव सञ्चार करनेकी भीतरी शक्ति क्या भारत-वर्ष हमको प्रदान न करेगा? जो निकट आकर हमको पहचाननेमें घृणा करती है, जो दूरसे हमारे लिये विद्वेषके उद्गार निकालती है, वही मुखकी वायुसे फुलाई हुई समाचारपत्रोंकी ध्वनि, इंग्लैण्डके टाइम्स और इस देशके टाइम्स आफ इंडियाकी वही विरोध करनेवाली तीक्ष्ण वाणी, ही क्या अंकुश बनकर हमें विरोधके पथमें अन्धवेगसे चालित करती रहेगी? क्या इसकी अपेक्षा अधिक सत्य, अधिक नित्य-वाणी हमारे पूर्वजोंके मुखसे कभी नहीं निकली है? वह वाणी जो दूरको समीप लानेको कहे, परायेको अपना बनानेका उपदेश दे? क्या वे शान्तिपूर्ण गम्भीर सनातन मंगल-वाक्य ही आज परास्त होनेवाले हैं? भारतवर्षमें हम मिलेंगे और मिलावेंगे, वही दुस्साध्य साधना करेंगे जिससे शत्रुमित्रका भेद मिट जाय। जो सबसे ऊँचा सत्य है, जो पवि-त्रताके तेजसे, क्षमाके वीर्य्यसे, प्रेमकी अपराजित और अपराजेय शक्तिसे परिपूर्ण है, हम उसको कदापि असाध्य नहीं मानेंगे, निश्चित कल्याण समझकर उसको सिरपर धारण करेंगे। दु:ख और वेदनाके काँटोंसे परिपूर्ण पथसे ही आज हम चलकर उदार और प्रसन्न मनसे सारे विद्रोहोंके भावोंको दूर भगा देंगे, जानमें अथवा अनजानमें अखिल विश्वके मनुष्य इस भारतक्षेत्रमें मनुष्यत्वके जिस परम आश्चर्यमय मन्दि-रको अनेक धर्मों, अनेक शास्त्रों और अनेक जातियोंके पत्थरोंसे निर्माण

करनेका प्रयत्न कर रहे हैं उन्हींके काममें हाथ बटावेंगे, अपने भीतरकी सारी शक्तियोंको परिणत कर इस रचनाकार्यमें नियुक्त करेंगे। यदि हम यह काम कर सके, यदि ज्ञानसे, प्रेमसे और कर्मसे भारतके इस उद्देश्यमें अपनी सभी शक्तियोंको नियुक्त कर सके, तभी मोहमुक्त पवित्र दृष्टिसे स्वदेशके इतिहासमें उस एक सत्य—नित्य सत्यके दर्शन पा सकेंगे—उस सत्यके दर्शन जिसके विषयमें ऋषियोंने कह रक्खा है—

स सेतुर्विधृतिरेषां लोकानाम्—

वही सारे लोकोंका आश्रय, सारे विच्छेदोंका सेतु है। उसीके लिये कहा है—

तस्य हवा एतस्य ब्रम्हणोनाम सत्यम्—

निखिल सृष्टिके समस्त प्रभेदोंके बीच जो ऐक्यकी रक्षाके लिये सेतुस्वरूप है वही ब्रह्म है, उसीका नाम सत्य है।

समस्या ।

'पथ और पाथेय' शीर्षक प्रबन्धमें हमने अपने कर्त्तव्य और उसकी साधन-प्रणालीके विषयमें आलोचना की थी। हम यह आशा नहीं करते कि उक्त प्रबन्धको सभी लोग अनुकूल दृष्टिसे देखेंगे।

कौनसी बात श्रेय है और उसके लाभका श्रेष्ट उपाय क्या है इसके निश्चय करनेके शास्त्रार्थोंका या तर्कोंका अन्त अबतक भी किसी देशमें नहीं हुआ। यह शास्त्रार्थ कितनी ही बार रक्तपातमें परिवर्त्तित हो चुका है और बार बार एक जगह विलुप्त और दूसरी जगह अंकुरित होता रहा है; मानव-इतिहास इसका प्रमाण है।

हमारे देशमें देशहितके सम्बन्धमें मतभेद अब तक केवल जबानी या समाचारपत्रोंमें, केवल छापेखानों या सभामण्डपोंमें वाक्युद्धकी भाँति ही संचार करता रहा है। वह धुएँकी तरह फैला रहा है आगकी तरह जलता बलता नहीं रहा।

पर आज सभी अपने मतामतको देशके हिताहितके साथ निकट भावसे जड़ित मान रहे हैं, उसे काव्यके अलंकारकी झंकार मात्र नहीं समझते। यही कारण है कि जिससे हमारा मत नहीं मिलता उसके प्रतिवाद वाक्योंमें यदि कभी कोई कटु और कठोर शब्द निकल जाता है तो हम उसे असंगत कहकर क्षोभ नहीं कर सकते। इस समय

कोई बात कहकर कोई आसानीसे छुट्टी नहीं पा सकता, निस्सन्देह यह समयका एक शुभ लक्षण है।

तथापि शास्त्रार्थका जोश हममें कितना ही अधिक क्यों न हो, जबतक हम यह माननेका कोई सबल कारण न देख लें कि हमसे विरुद्ध मत रखनेवाला देशके हितसाधनकी आन्तरिक निष्ठासे हीन है तब तक एक दूसरेके विचार तथा इच्छाका स्पष्ट ज्ञान हो जाना आवश्यक है। आरम्भहीसे क्रोध अथवा विरुद्ध पक्षके प्रति सन्देहको मनमें स्थान देकर हम अपनी ही बुद्धिको धोखा देंगे। बुद्धिका तारतम्य या कमीबेशी ही मतभिन्नताका कारण होती है, यह बात सब जगह ठीक नहीं उतरती। अधिकांश स्थानोंमें प्रकृति-भेद ही मत-भेदका कारण होता है। अतएव यह कथन कदापि सत्य नहीं हो सकता कि विरुद्ध पक्षके मतका सम्मान करना अपनी निजकी बुद्धिका असम्मान करना है।

इतनी भूमिकाके बाद हम 'पथ और पाथेय' की अधूरी आलोचनाकी ओर पुनः अग्रसर होते हैं।

संसारमें हमको कभी सत्यसे सन्धि करके और कभी लड़ाई करके चलना पड़ता है। अन्धता वा चतुराईके बलपर सत्यको उल्लंघन करके हम कोई छोटेसे छोटा काम भी नहीं कर सकते।

अतएव देशहितके संकल्पके सम्बन्धमें जब हम वाद-विवाद करते हैं तब उसमें एक प्रधान प्रश्न यह होता है कि कितने ही महान् और कितने ही श्रेष्ठ होनेके साथ साथ क्या इस संकल्पका सत्यके साथ सामञ्जस्य भी है? चेकबहीपर किसीके बड़े बड़े अङ्क लिख देनेसे प्रसन्न हो जाना ठीक नहीं। किसका चेक बैंक स्वीकार करेगा, यही देखनेकी असल बात है।

संकटके समय बिलकुल सामान्य उपदेश देनेसे किसीका उपकार नहीं हो सकता। एक आदमी खाली भोजनपात्र लिये माथेपर हाथ रख सोच रहा है कि क्या काम करनेसे क्षुधाकी ज्वाला शान्त होगी। उसे यह सामान्य उपदेश देकर आप उसके हितैषी नहीं बन सकते कि अच्छी तरह अन्न और जल पेटमें पहुँचा देनेसे क्षुधा निवृत्त होती है। सिरपर हाथ रखकर वह इस समय इसी उपदेशका इन्तजार नहीं कर रहा था। चिन्ताके असली विषयकी ओरसे आँख फेरकर कितनी ही बड़ी बड़ी बातें क्यों न कही जायँ, सब व्यर्थ होंगी।

भारतवर्षकी प्रधान आवश्यकता निश्चित करनेवाली आलोचनामें भी यदि उसके प्रस्तुत वास्तविक अभाव और वास्तविक अवस्थाको बलपूर्वक ध्यानसे हटाकर हम कोई अत्यन्त ऊँचे दरजेकी नीति सुनाने लगें तो उस व्यक्तिके चेककी तरह जिसका एक पैसा भी बैंकमें नहीं है, उसका कोई मूल्य न होगा। वह देनेके दावेसे जान छुड़ानेका एक कौशल मात्र हो सकता है, परन्तु परिणाममें वह कर्जदार और डिग-रीदार किसीको भी कुछ लाभ न पहुँचा सकेगा।

'पथ और पाथेय' में यदि हमने भी इसी प्रकार सत्यपर धूल डालनेका प्रयत्न किया हो तो न्यायासनसे क्षमा पानेकी आशा हमें नहीं करते। यदि हमने वास्तव बातपर पर्दा डालकर एक भाव मात्रके पोषणमें अमूलक दलीलें गढ़ डाली हैं तो सबके सामने उनको खण्ड खण्ड कर डालना ही कर्त्तव्य है। क्योंकि सत्यसे विलग रहनेवाला भाव गाँजे या शराबके समान मनुष्यको अकर्मण्य और उद्भ्रान्त बना देता है।

परन्तु विशेष अवस्थामें प्रकृत वास्तविक तत्त्वका निर्णय करना सहज नहीं होता। इसीसे अनेक अवसरोंपर मनुष्य सोच लेता है कि जो आँखसे दिखाई पड़ रहा है वही सबसे बड़ा वास्तविक तत्त्व है; जो मानव प्रकृतिकी

नीचे तलीमें पड़ा रहता है वही सच्चा तत्त्व है। एक अँगरेज समालोचकने रामायणकी अपेक्षा इलियडको श्रेष्ठ काव्य सिद्ध करते हुए लिखा है—"इलियड काव्य अधिकतर human है, अर्थात् उसमें मानव-चरित्रका वास्तवांश अधिक मात्रामें ग्रहण किया गया है। क्योंकि उसमेंका एकिलिस निहत शत्रुके शवको रथके पहियोंमें बाँधकर घसीटता फिरा है और रामायणके रामने पराजित शत्रुको क्षमा कर दिया है।" यदि क्षमाकी अपेक्षा प्रतिहिंसाके भावको मानव-चरित्रमें अधिक वास्तविक, अधिक स्वाभाविक माननेका अर्थ यह हो कि मनुष्यमें क्षमाकी अपेक्षा प्रतिहिंसाका भाव ही अधिक होता है, तब तो इन समालोचक साहबका निष्कर्ष अभ्रान्त ही मानना पड़ेगा। पर मानव-समाज इस बातको कभी न मानेगा कि स्थूल परिमाण ही सचाईके नापनेका एक मात्र साधन है; घर भरे अन्धकारकी अपेक्षा अंगुलभर स्थान भी न घेरनेवाली दीपशिखाको वह अधिक मानता है।

जो हो, यह निर्विवाद है कि एक बार आँखसे देखकर ही इसकी मीमांसा नहीं की जा सकती कि मानव इतिहासके हजारों लाखों उपकरणोंमेंसे कौन प्रधान है कौन अप्रधान, कौन उपस्थित कालमें परम सत्य है कौन नहीं। यह बात माननी ही पड़ेगी कि उत्तेजनाके समय उत्तेजना ही सबकी अपेक्षा बड़ा सत्य जान पड़ती है। क्रोधके समय ऐसी कोई बात सत्यमूलक नहीं जान पड़ती जो क्रोधकी निवृत्ति करनेवाली हो। उस समय मनुष्य स्वभावत: ही कह बैठता है—"अपने धार्मिक उपदेश रहने दो। हमें उनकी जरूरत नहीं।" इसका कारण यह नहीं है कि धर्मोपदेश उसके प्रयोजनकी सिद्धिमें उपयोगी नहीं है और रोष उसमें भारी सहायक है; बात यह है कि उस समय वह वास्तविक उपयोगिताकी ओर दृष्टिपात करना ही नहीं चाहता, प्रवृत्ति-

चरितार्थताको ही सबसे अधिक आदरणीय समझता और समझना चाहता है।

परन्तु प्रवृत्ति-चरितार्थतामें वास्तविकताका हिसाब बहुत ही थोड़ा करना पड़ता है, उपयोगितामें उसकी अपेक्षा बहुत अधिक हिसाब करनेकी आवश्यकता होती है। गदरके समय जिन अँगरेजोंने भारतको निर्दयतापूर्वक पीस डालनेकी सलाह दी थी उन्होंने मानवचरित्रकी वास्तविकताका हिसाब अत्यन्त संकीर्णरूपमें ही तैयार किया था। क्रोधके समय इस प्रकार संकीर्ण हिसाब करना ही स्वाभाविक है, अर्थात् मनुष्य-गणनाके हिसाबसे अधिकतर लोग ऐसा ही करते हैं। लार्ड केनिंगने क्षमाकी ओरसे वास्तविकताका जो लेखा तैयार किया था वह प्रतिहिंसाके हिसाबकी अपेक्षा वास्तविकताको बहुत कुछ बृहत् परिमाणमें और बहुत कुछ गम्भीर विस्तीर्ण भावसे गणना करके किया था।

पर जो क्रोधमें अन्धा हो रहा है वह लार्ड केनिंगकी क्षमानीतिको 'सेन्टिमेन्टलिज्म' अर्थात् वास्तववर्जित भावुकता कह डालनेमें तनिक भी संकोच न करेगा। सदासे यही होता आ रहा है। जो पक्ष अक्षौहिणी सेनाको ही गणना-गौरवसे बड़ी सत्ता मानता है वह नारायणको ही अवज्ञापूर्वक अपने पक्षमें न लेकर चिन्तारहित होता है। पर यदि जयलाभको ही वास्तविकताका अन्तिम प्रमाण माना जाय तो नारायण अकेले और छोटीसे छोटी मूर्तिमें भी जिस पक्षकी ओर होंगे उसकी जीत अवश्य ही होगी।

इतना सब कह जानेका तात्पर्य यही है कि क्षणिक उत्तेजनाकी प्रबलता और मनुष्य-संख्याकी प्रचुरता देखकर ही यथार्थ तत्त्वके किसी पक्षमें होनेका निश्चय नहीं किया जा सकता। इसे हम किसी प्रकार नहीं

मानेंगे कि शान्तरसाश्रित होनेके कारण ही एक वस्तुमें वास्तविकताकी न्यूनता है और जिसकी वेगपूर्ण ताड़ना रास्ता पहचानने तकका अवकाश नहीं देती है उसीमें वास्तविकताका निवास यथेष्ट है ।

'पथ और पाथेय' में हमने दो बातोंकी आलोचना की थी। पहली बात तो यह है कि भारतवर्षके विषयमें देशहितका कार्य्य कौन सा है—स्वदेशी कपड़े पहनना और अँगरेजोंको निकाल बाहर करना या और कुछ ? दूसरे यह कि इस हित-कार्य्यका साधन किस प्रकार होगा ?

भारतवर्षका चरम हित क्या है इसके समझनेमें केवल हमारी ही ओरसे बाधा नहीं की जाती, वस्तुतः इसमें सबसे बड़ी बाधा अँगरेजोंका हम लोगोंके साथ बर्त्ताव है । वे किसी प्रकार इस बातको मानना नहीं चाहते कि हमारा स्वभाव भी मानव-स्वभाव है। वे सोचते हैं कि जब हम राजा हैं तब किसी प्रकारकी जवाबदेही हमारे पास नहीं फटक सकती, उसके पात्र एक मात्र भारतवासी ही हैं । बंगालके एक भूतपूर्व हर्त्ताकर्त्ताको भारतवर्षकी चञ्चलता पर कड़ी टीका करनेकी आवश्यकता पड़ी थी । आपने सारे भारतवासियोंके लिये ही फतवा दे डाला, किसीको भी न छोड़ा । आपकी रायमें समस्त देशी अखबारोंके गले घोंट देना और सुरेन्द्र, बिपिन आदि समस्त नेताओंको पंगु और मूक कर देना ही इस रोगका एकमात्र उपचार जान पड़ा। देशमें शान्ति स्थापित करनेका यह नुस्खा जिनको अनायास ही सूझ सकता है और जो विना तनिक भी सोचे विचारे उसको रोगीके गले मढ़ सकते हैं, ऐसे व्यक्ति हमारे हर्त्ताकर्त्ता बनाए जा रहे हैं; क्या देशका खून खौलानेका यह एक प्रधान कारण नहीं है ? क्या केवल इसी लिये कि अँगरेजोंके हाथोंमें बल है, मानव-स्वभावको मान कर चलना

उनके लिये बिलकुल ही फजूल है? क्या भारतकी पेंशनपर जीनेवाले मि० इलियट भारतकी चञ्चलता दूर करनेके सम्बन्धमें अपने जातिभाइयोंको अब एक भी उपदेश न देंगे? जिनके हाथमें अजस्र शक्ति है उनके लिये आत्मसंवरणकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है और जो स्वभावसे ही अक्षम हैं उन्हींके लिये शम, दम, नियम, संयम सभीकी सारी व्यवस्था है! उपर्युक्त साहब बहादुरने लिखा है कि जो भारतवासी किसी अँगरेजकी गर्दनकी ओर हाथ बढ़ावे उसको चाहे जिस प्रकार हो, भरपूर प्रतिफल देना ही होगा; जिसमें उसको बच निकलनेका अवसर किसी प्रकार न मिले, इसके लिये पूर्ण सतर्क रहना होगा। और जो अँगरेज भारतवासियोंको परलोक भेज कर केवल राहखर्चके लिये थोड़ेसे रुपए मात्र दे देनेसे छुटकारा पाकर ब्रिटिश न्यायपर कभी न मिटनेवाली कलंककी रेखाको आगमें तपा तपा कर भारतके चित्तको बार बार दाग रहे हैं उनकी ओरसे होशियार रहनेकी आवश्यकता नहीं है? बलके अभिमानसे अन्धी और धर्म्मबुद्धिसे हीन स्पर्द्धा ही क्या भारतवर्षमें अँगरेजी शासन और प्रजा दोनोंको ही भ्रष्ट नहीं कर रही है? जिस समय असमर्थके हाड़-माँस आन्तरिक अग्निसे दग्ध हो रहे हैं, जब हाथों हाथ अपमानका बदला ले डालनेकी चिन्ताके सिवा और कोई ऊँची अभिलाषा उसके मनमें टिक ही न सकती हो उस समय अँगरेजोंका लाल लाल आँखोंवाला 'पिनलकोड' भारतवर्षमें शान्तिकी वर्षा कर सके—इतनी शक्ति भगवानने अँगरेजोंको नहीं प्रदान की है? वे जेलमें ठेल सकते हैं, फाँसीपर टँगवा सकते हैं, पर हाथसे आग लगाकर उसे पैरसे रौंदकर बुझा देनेकी सामर्थ्य उनमें नहीं है। जहाँ जलकी आवश्यकता है वहाँ जल देना ही पड़ेगा—राजाको भी जल ही देना पड़ेगा। यदि वह ऐसा नहीं करता है, यदि अपने

राजदण्डको विश्वविधानसे भी बढ़कर मानता है, तो इस भयंकर अन्ध-ताके कारण देशमें पापका पहाड़ अत्यन्त ऊँचा हो जायगा और एक न एक दिन यह घोरतर असामञ्जस्य भयंकर विप्लवमें परिणत हुए बिना न रहेगा। प्रतिदिन देशके अंतःकरणमें जो वेदना सञ्चित हो रही है, आत्मप्रसादसे फूले हुए अँगरेज उसकी अत्यन्त उपेक्षा कर सकते हैं, मोर्ले उसकी अवज्ञा करनेहीको राजनीतिक बुद्धिमत्ता मान सकते हैं, इलियट उसे पराधीन जातिकी स्पर्द्धा मात्र मानकर इस वृद्ध वयसमें भी दाँत पीसनेका प्रयास कर सकते हैं, पर क्या इसीसे यह मान लिया जायगा कि अशक्तकी वेदनाका हिसाब कोई न रखता होगा? जब बलिष्ठ सोचता है कि मैं अपने अन्याय करनेके अबाध अधिकारको संयत नहीं करूँगा; किन्तु ईश्वरके विधानसे उस अन्यायके विरुद्ध जो अनिवार्य प्रतिकार-चेष्टा मानव-हृदयमें धुँआ-धुँआकर जल उठा करती है उसीको एकमात्र अपराधी बनाकर कुचल डालूँगा और निश्चिन्त हो जाऊँगा, तब बलके द्वारा ही प्रबल अपने बलके मूलमें आघात करता है,—क्योंकि उस समय वह अशक्त पर चोट नहीं करता—विश्वब्रह्माण्डके मूलमें जो शक्ति है उसी वज्रशक्तिके विरुद्धमें अपना मुक्का उठाता है। यदि कोई कहे कि भारतवर्षमें आज दिन जो क्षोभ अस्त्रहीनको भी निष्ठुर बना रहा है, शक्ति सामर्थ्यहीनको भी धैर्य्य छुड़ा कर निश्चित आत्महत्याके आगे ढकेल रहा है, उसके हम किसी अँशमें भी कारणीभूत नहीं हैं,—हम न्यायको कहीं ठोकर नहीं लगाते, हम स्वभावसिद्ध तिरस्कार और औद्धत्यके द्वारा कभी अपने उपकारको उपकृतके निकट अरुचिकर नहीं बनाते; यदि कोई सारे दोषका ठीकरा हमीं पर फोड़ दे, असफलताजनित असन्तोषको भारतका अकारण अपराध और अपमानजनित दुःखदाहको उसकी घोरतर अकृतज्ञता

कहे तो इन मिथ्या शब्दोंका कहनेवाला चाहे राजसिंहासन पर हीं क्यों न बैठा हो, सुननेवालोंपर इनका कोई असर न होगा। तुम्हारे 'टाइम्स' के पत्रलेखक 'डेलीमेल' के संवादरचयिता और 'पायोनियर' तथा 'इंग्लिशमैन'के सम्पादक अपनी सम्मिलित ध्वनिसे उसे ब्रिटिश पशुराजके भीम गर्जनमें ही क्यों न परिणत कर डालें, इस असत्यके द्वारा हम लोगोंको किसी शुभ फलकी प्राप्ति कदापि न होगी। तुम बलवाले हो सकते हो, पर तुममें इतना बल नहीं हो सकता कि सत्यको आँखें दिखाओ। नए नए कानूनोंकी नई नई हथकड़ियाँ गढ़कर तुम विधाताके हाथ नहीं बाँध सकते।

अतः मानव-स्वभावके संघातसे विश्वके नियममें जो वेगपूर्ण भँवर उठ रही है उसकी भीषणताको यादकर अपने इस छोटेसे लेखके द्वारा उसको दमन करनेकी दुराशा हम नहीं करते। दुर्बुद्धि जब जाग्रत हो चुकी है तब यह बात माननी पड़ेगी कि उसका कारण बहुत दिनसे धीरे धीरे सञ्चित हो रहा था। यह बात याद रखनी होगी कि जहाँ एक पक्ष सब प्रकारसे अशक्त, असमर्थ और उपायहीन कर दिया जाता है अथवा होता है, वहाँ क्रमशः दूसरे प्रबल पक्षका बुद्धिभ्रंश और धर्मनाश अनिवार्य है। जिसका प्रतिक्षण निरादर और सम्मानभंग किया जाता हो उसके साथ व्यावहारिक सम्बन्ध रखकर आत्मसम्मानको किसी प्रकार उज्ज्वल नहीं रखा जा सकता। दुर्बलके समीप रहकर सबल हिंस्र हो जाता है, अधीनके सम्पर्कसे स्वाधीन असंयमी बनता है। स्वभावके इस नियमका प्रतिरोध करनेमें कौन समर्थ है? अन्तमें जब यह बात बहुत बढ़ जायगी तब क्या इसका कहीं कोई परिणाम न होगा? बाधाहीन कर्तृत्वमें चरित्रका असंयम जब बुद्धिको अन्धा कर देता है उस समय क्या वह बुद्धि केवल दरिद्रकी ही हानि

करेगी, दुर्बलको ही दुःख देगी—धनी और सबलको हानि और पीड़ा न पहुँचावेगी ?

इस प्रकार बाहरसे आघात पानेके कारण देशमें क्रमशः एक प्रकारकी उत्तेजना फैल रही है, इस अत्यन्त प्रत्यक्ष सत्यको अस्वीकार करनेकी सामर्थ्य किसीमें नहीं है। और अँगरेजोंकी दमन-व्यवस्था और सारी सतर्कताका लक्ष्य केवल एक ही ओर, दुर्बल पक्षकी छातीपर पत्थर रखने और मुँहमें वस्त्र ठूँसनेकी ओर है; इस कारण जिस असमताकी सृष्टि हुई है उसने भारतवासियोंकी सारी बुद्धि, समस्त कल्पना, सम्पूर्ण वेदना-बोधको निरन्तर बहुत अधिक परिमाणमें बाहरकी ओर ही, इस एक नैमित्तिक उत्पातकी ओर ही, प्रवाहित कर रक्खा है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

ऐसी अवस्थामें यदि हम देशके सबसे बड़े प्रयोजनकी खोज करना भूल जायँ तो इसपर आश्चर्य नहीं हो सकता। स्वाभाविक कर्त्तव्य—वह कर्त्तव्य जिसके लिये प्रकृति स्वयं ही उकसाती है—दुर्निवार्य्य हो सकता है, पर सभी समयोंमें वह श्रेयस्कर नहीं हो सकता। मनोवेगकी तीव्रताको भूमण्डलमें सब वास्तविक तत्त्वोंकी अपेक्षा बड़ा वास्तविक तत्त्व माननेसे अनेक अवसरोंपर हम भयंकर भ्रमके शिकार हो जाते हैं, सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवनमें इस बातका हमें अनेक बार अनुभव हो चुका है। जातिके इतिहासमें यह बात और भी अधिक मात्रामें लागू होती है, इसपर स्थिर चित्त होकर विचार करना हमारा कर्त्तव्य है।

हम जानते हैं कि हमारी उपर्युक्त बात सुनकर बहुतेरे लोग बड़ी खा ईसे कहेंगे—“ बहुत अच्छी बात है, फिर आप ही बताइए कि

देशकी सबसे बड़ी आवश्यकता क्या है ?" इस विरक्तिको सहन करके भी हमें उत्तर देनेके लिये तैयार होना पड़ेगा ।

भारतवर्षके सामने विधाताने जो समस्या रक्खी है, वह अत्यन्त दुरूह हो सकती है पर उसको ढूँढ़ निकालना कठिन नहीं है । वह बिलकुल हमारे सामने है, उसके ढूँढ़नेके लिये दूसरे दूरके देशोंके इतिहासमें भटकनेसे उसका पता नहीं मिल सकता ।

भारतवर्षके पर्वतप्रान्तसे समुद्रसीमातक, काश्मीरसे रासकुमारी-तक कौन सी बात सबकी अपेक्षा अधिक स्पष्टतासे दिखाई पड़ रही है ? यही कि इतनी भिन्न भिन्न जातियाँ, इतनी विविध भाषाएँ, इतने विषम आचार संसारके और किसी भी एक देशमें एकत्र नहीं हैं ।

पाश्चात्य देशोंके जितने इतिहास हम लोगोंने स्कूलमें पढ़े हैं, उनमें ऐसी समस्याका कहीं अस्तित्व नहीं पाया । जिन प्रभेदोंके रहते हुए युरोपमें एकताका सूत पिरोया गया है वे एक दूसरेके अत्यन्त विरोधी थे । लेकिन फिर भी उनमें मिलनका एक ऐसा स्वाभाविक तत्त्व मौ-जूद था कि मिल जानेपर उसके जोड़के चिह्न तकको ढूंढ़ निकालना असम्भव हो गया । प्राचीन ग्रीक, रोमन, गथ आदि जातियोंकी शिक्षा दीक्षामें चाहे जितनी भिन्नता रही हो, पर वस्तुतः वे एक जाति थीं । परस्परकी भाषा, विद्या और रक्तको मिलाकर एक होनेका उनमें स्वाभा-विक झुकाव था । विरोधकी आँचमें पिघलकर जिस समय वे एक हो गईं उस समय जान पड़ा कि सब एक ही धातुसे ही गढ़ी हुई थीं । इंग्लैण्डमें भी किसी समय सैक्सन, नार्मन और केल्टिक जातियोंका एकत्र जमाव हुआ था । पर इनमें एक ऐसा स्वाभाविक और बलवान् ऐक्य तत्त्व विद्यमान था जिससे विजयी जाति विजयीके रूपमें अपना

स्वातन्त्र्य रख ही न सकी। विरोध करते करते ही वह कब गलकर एक हो गई, इसका किसीको पता तक नहीं चला।

अतएव युरोपने भिन्न भिन्न जातियोंको जो ऐक्य दान किया है वह स्वाभाविक ऐक्य है। अब भी वह इस स्वाभाविक ऐक्यका ही आदर करता है। वह अपने समाजोंमें किसी गुरुतर प्रभेदको स्थान देना ही नहीं चाहता, या तो वह उसे नष्ट कर डालता है या खदेड़ देता है। युरोपकी चाहे कोई जाति क्यों न हो, अँगरेजी उपनिवेशोंके प्रवेश द्वार उसके लिये आठों पहर खुले रहते हैं, पर एशियाका एक भी आदमी ऐसा भाग्यवान् नहीं हो सकता जिसके उक्त द्वार तक पहुँचनेपर वहाँ अँगरेजोंका सतर्कतारूपी सर्प फन फुलाए और फुफकारता न मिले।

युरोपके साथ भारतकी इसी जगहसे, मूलसे ही विषमता देख पड़ती है। भारतका इतिहास जब शुरू हुआ, उसी समय, उसी मुहूर्तमें वर्णके साथ वर्णके विरोधका और आर्य्योंके साथ अनार्योंके विरोधका जन्म हुआ। तबसे इस विरोधको मिटानेके दुस्साध्य साधनमें भारतका मन बराबर लगा हुआ है। जो आर्यसमुदायमें अवतार माने जाते हैं उन रामचन्द्रने दाक्षिणात्यमें आर्य उपनिवेश बढ़ानेके लिये जिस दिन निषादराजगुहकके साथ मित्रताका सम्बन्ध जोड़ा था; जिस दिन उन्होंने किष्किन्धाके अनार्योंको नष्ट न करके अपनी सहायताके लिये सन्नद्ध किया था और लंकाके परास्त राक्षसराज्यको निर्मूल करनेके बदले विभीषणसे भाईचारा करके शत्रुपक्षकी शत्रुताका दमन किया था, उसी दिन इन महापुरुषका अवलम्बन कर भारतवर्षके उद्देश्यने अपने आपको व्यक्त किया था। उस दिनके बादसे आजतक इस देशमें मनुष्योंका जो जमाव हुआ है उसमें विचित्रता और विभिन्नताका

कोई हिसाब ही नहीं रह गया। जो उपकरण किसी प्रकार मिलना नहीं चाहते थे उनको एकत्र रहना पड़ा। ऐसे उपकरणोंसे केवल बोझ तैयार हो सकता है, पर उनसे शरीर कदापि नहीं गढ़ा जा सकता। इसीसे इस बोझको पीठपर लेकर ही भारतवर्षको सैकड़ों वर्षों तक निरन्तर यह चेष्टा करनी पड़ी है कि जो एक दूसरेसे अत्यन्त विच्छिन्न हैं वे किस प्रकार परस्पर सहयोगी हो सकते हैं? जो एक दूसरेके परम विरुद्ध हैं उनमें सामञ्जस्य किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है? जिनके भीतरी प्रभेदको मानव प्रकृति किसी प्रकार अस्वीकार नहीं कर सकती, किस प्रकारकी व्यवस्थासे वे प्रभेद एक दूसरेको कष्ट न पहुँचा सकेंगे? अर्थात् वह कौनसा उपाय है जिसके करनेसे स्वाभाविक भेदकी सत्ता स्वीकार करते हुए भी सामाजिक एकताका यथासम्भव आदर किया जा सके?

जहाँपर सैकड़ों विभिन्न स्वभावों और रुचियोंके लोगोंका जमाव हो वहाँ जो समस्या प्रतिमुहूर्त्त ही उपस्थित रहती है, वह यह होती है कि इस पृथक्तासे उत्पन्न कष्ट, इस विभेदसे उत्पन्न दुर्बलताको दूर करनेका क्या उपाय है? एकत्र रहना भी अनिवार्य हो और परस्पर मिलकर एक हो जाना भी पूर्णतया असम्भव हो—इससे बढ़कर अमंगल बात दूसरी नहीं हो सकती। ऐसी अवस्थामें प्रथम प्रयत्न होता है प्रत्येक प्रभेदको निश्चित परिधि द्वारा पृथक् कर देनेका, परस्पर एक दूसरेको चोट न पहुँचावें इस बातकी सावधानी रखने और परस्परकी अधिकारसीमा इस प्रकार बाँध देनेका जिसमें वे उस सीमाको किसी ओरसे लाँघ न सकें।

पर ये निषेधकारक परिधियाँ जो आरम्भिक अवस्थामें सहस्रों विभिन्नताओंके एकत्र रखनेमें सहायक होती हैं, धीरे धीरे कुछ कालमें अने-

कके एक होनेमें बाधा भी करने लगती हैं। जिस प्रकार ये आघात-से बचाती हैं उसी प्रकार मिलनसे भी बाज रखती हैं। अशान्तिको दूर खदेड़ रखना ही शान्तिकी प्रतिष्ठा करना नहीं है, वस्तुतः यह अशान्तिको कहीं न कहीं, सर्वदा जीवित रखना ही है। विरोधको यदि हम अपनेसे कुछ दूरपर रक्खें तो भी उसका पोषण ही करते रहेंगे; बन्धन जरा सा ढीला होते ही उसकी प्रलय मूर्त्ति हमारे सामने आ चमकेगी। यही नहीं, इस प्रकार एकत्र रहनेवालोंका मिलन, जिन-मेंसे प्रत्येक एक निश्चित घेरेके अन्दर रहनेके लिये बाध्य हो, मिल-नकी नेतिवाचक अवस्था है, इतिवाचक नहीं। इससे मनुष्य आराम पा सकता है; पर शक्ति नहीं पा सकता। शृंखला केवल काम चला-नेका साधन है, प्राण जाग्रत होता है एकताके द्वारा।

भारतवर्ष भी इतने दिनों तक अपनी बहुशः अनेकताओं और विरोधोंको अलग अलग घेरोंमें बन्द रखनेका प्रयत्न करता रहा है। इतने वास्तविक विरोध और किसी देशमें नहीं हुए हैं, इसलिये उनको ऐसे दुस्साध्य साधनमें अपनी शक्ति खपानेकी कभी आवश्यकता भी नहीं पड़ी है।

बहुशः विशृंखल और विच्छिन्न सत्य जिस समय स्तूपाकार होकर ज्ञानका रास्ता रोकने लगते हैं उस समय विज्ञानका पहला काम होता है उनको गुणकर्मके अनुसार श्रेणीबद्ध कर देना। किन्तु क्या विज्ञा-नमें और क्या समाजमें श्रेणीबद्ध करना आरम्भका कार्य है, कलेवरबद्ध करना ही अन्तिम कार्य्य है। ईंट, सुर्खी, चूना, लकड़ी जिसमें मिल-कर एक दूसरेको नष्ट न कर डालें इसलिये उनमेंसे हर एकको अलग अलग स्थानमें रख देना ही इमारत बना डालना नहीं है।

हमारे देशमें श्रेणी-विभागका कार्य्य हुआ है पर निर्माणका कार्य्य या तो आरम्भ ही नहीं हुआ या हुआ तो अधिक दूरतक अग्रसर नहीं

हो सका है। एक ही वेदनाकी अनुभूतिके द्वारा आदिसे अन्ततक आविष्ट, प्राणमय, रसरक्तमय, स्नायु पेशी और मांसके द्वारा जिस प्रकार शरीरकी हड्डियाँ ढकी रहती हैं उसी प्रकार विधि-निषेधकी शुष्क और कठिन व्यवस्थाको बिलकुल ही ढँककर और छुपाकर जिस समय एक ही सरस अनुभूतिकी नाड़ियाँ समग्रके बीच प्राणोंकी चेतनता व्याप्त कर देंगी उसी समय हम समझेंगे कि महाजातिने देहधारण किया है।

हमने जिन सब देशोंके इतिहास पढ़े हैं वे इतिहास बताते हैं कि प्रत्येक देश किसी न किसी खास रास्तेसे अपनी मंजिलको पहुँचा है। उनके परिपूर्ण विकाशमें जो विशेष अमंगल विघ्नस्वरूप था उसीके साथ उन्हें युद्ध करना पड़ा है। एक दिन अमेरिकाके सामने भी यही समस्या थी कि उसके उपनिवेशोंके समुद्रके एक ओर और उनकी सञ्चालिका शक्तिके उसके दूसरी ओर रहते हुए उनका शासन कैसे किया जा सकेगा—शरीर और मस्तिष्ककी इतनी दूरी उनसे किस प्रकार सहन होगी? भूमिष्ठ शिशुका जिस प्रकार माताके गर्भके साथ किसी तरहका सम्बन्ध नहीं रह सकता—नाल काट देनी पड़ती है—उसी प्रकार अमेरिकाके सामने जिस समय यह नाल काट देनेकी आवश्यकता उपस्थित हुई उस समय उसने छुरी लेकर उसे काट फेंका। फ्रान्सके सामने भी एक दिन यह समस्या थी कि वहाँके शासक और शासित दोनों एक ही जातिके होनेपर भी उनकी जीवनयात्रा और स्वार्थ एक दूसरेसे इतने विरुद्ध हो गए थे कि इस असामञ्जस्यकी पीड़ा सहन करना मनुष्यकी सामर्थ्यके बाहर हो गया था। इस आत्म-विच्छेदको दूर करनेके लिये फ्रान्सको रक्तकी नदियाँ बहानी पड़ीं थीं।

ऊपरसे देखनेमें अमेरिका और फ्रान्सकी इस समस्यासे भारतवर्षकी समस्यामें समानता है। भारतवर्षमें भी शासक और शासित एक दूसरेसे

असंलग्न हैं। ऐसा कोई अवसर ही नहीं आता जब दोनोंकी एक अवस्था हो, दोनोंके मनमें एक प्रकारकी अनुभूति हो। हो सकता है कि ऐसी शासनप्रणालीमें सुव्यवस्थाका अभाव न हो, पर व्यवस्था मात्र ही मनुष्यकी आवश्यकता नहीं है, उसकी आवश्यकता इसकी अपेक्षा कहीं ऊँची है। जिस आनन्दमें मनुष्य जीवित रहता है, जिस आनन्दसे उसका विकास होता है वह केवल आइन-अदालतोंका सुप्रतिष्ठित होना और धन प्राणोंका सुरक्षित होना नहीं है। सारांश यह कि मनुष्य आध्यात्मिक जीव है—उसके शरीर है, मन है, हृदय है। उसको यदि तृप्त करना हो तो इन सभीको तृप्त करना पड़ेगा। जिस पदार्थमें सजीव सर्वाङ्गीणताका अभाव हो उससे उसे क्लेश पहुँचेगा ही। उसको कुछ देते समय यही नहीं सोचना पड़ेगा कि क्या दें, यह भी सोचना होगा कि किस प्रकार दें। यदि उसके साथ साथ आत्मशक्तिकी उपलब्धि उसे न होगी तो उपकार उसके लिये भार हो जायगा, अत्यन्त कठोर शासनको भी वह बिलकुल मौन भावसे सह लेगा, यही नहीं स्वयं आगे बढ़कर उसका वरण भी कर लेगा, यदि उसमें स्वाधीनताका रस भी मिश्रित हो। इसीसे कहा है कि, खाली रूखी सुव्यवस्था ही मनुष्यको परितृप्त नहीं कर सकती।

जहाँ शासक और शासित एक दूसरेसे बहुत दूर रहते हों, जहाँ प्रयोजनके सिवा और कोई उच्चतर, आत्मीयतर सम्पर्क दोनोंमें स्थापित होना असम्भव हो, वहाँकी राज्यव्यवस्था उत्कृष्टसे उत्कृष्ट होनेपर भी इजलास अदालत आईन कानूनके अतिरिक्त और कुछ न होगी। उत्कृष्ट राज्यव्यवस्था होते हुए भी मनुष्य क्यों दिनपर दिन केवल छीजता जा रहा है, उसके भीतर और बाहरके आनन्दके स्रोत दिनपर दिन क्यों सूखते जा रहे हैं, शासक इसको समझना ही नहीं चाहता, वह

केवल क्रोध करता है। यही नहीं, स्वयं भोक्ता भी अपने रोगको समझनेके अयोग्य हो जाता है। अतएव इस बातको किसी प्रकार अस्वीकार न किया जा सकेगा कि शासन और शासितमें सम्बन्धका एकदम अभाव होनेकी स्थितिमें जो जीवनहीन शुष्क शासनप्रणाली अनिवार्य्य होती है, भारतके भाग्यमें वही शासनप्रणाली आ पड़ी है।

इसके बाद अठारहवीं शताब्दीके फ्रान्सके साथ भी भारतका एक विषयमें मेल मानना पड़ेगा। हमारे शासकोंकी जीवनयात्रा और रहन-सहन भी हमसे बहुत अधिक व्ययसाध्य है। उनका खाना पहनना, उनका विलास-विहार, समुद्रके इस पार और उसपार दोनों जगहकी उनको रसद जुटाना, उनका यहाँका काम समाप्त हो रहनेपर विलायती छुट्टियोंके आरामकी तैयारी, यह सभी हमारे सिर है। कौन नहीं जानता कि देखते देखते उनकी विलासिता कहाँसे कहाँ जा पहुँची है। वह केवल ऊपर चढ़ना ही जानती है। इस विलासिताकी सारी सामग्री जुटानेका भार उस भारतवर्षपर है, जिसे अपने लिये दोनों समय भर पेट अन्न भी नहीं मिलता। ऐसी अवस्थामें विलासी प्रबल पक्षका हृदय निर्मम और पत्थर हो जानेके लिये बाध्य होता है। यदि उनसे कोई कहे कि इस अभागेको कभी भरपेट भोजन नहीं मिला, तो वे साबित करना चाहेंगे कि उसका पेट इतना ही भोजन पचा सकता है और उसके पोषणके लिये उतना ही यथेष्ट भी है। जो बेचारे क्लार्क नित्य आठ आठ नौ नौ घंटे तक सिर ऊपर करनेकी कसम खाकर बैठते हैं, हजारों रुपए वेतन पाकर एलेक्ट्रिक फैन (बिजलीके पंखे)के नीचे आराम कुर्सीपर लेटे रहनेवाले बड़े साहब कभी भूलकर भी यह नहीं सोचना चाहते कि १५–२० रुपए मासिकमें किस प्रकार वे अपने समस्त परिवारको भोजन देकर अपना पेट भर सकते होंगे।

क्या करें, यदि वे इन चिन्ताओंमें पड़कर अपनी मनःशान्ति और सुचित्तता बिगाड़ लें तो पाचन-क्रियामें फर्क आजाय, यकृत अपने कामसे इस्तेफा दे दे। जब यह बात निश्चित है कि थोड़ी आमदनीसे उनका गुजारा नहीं हो सकता और न भारतवर्षके जेबके अतिरिक्त और कहींसे कुछ पानेकी वे आशा ही कर सकते हैं, तब उनके आस-पासके और लोग क्या खाते, क्या पहनते और किस प्रकार दिन काटते हैं, इस बातको वे निस्स्वार्थ होकर सोच ही नहीं सकते। विशेष कर उस दशामें जब कि एक दोको नहीं–एक राजा या सम्राट् मात्रको नहीं—सारी जातिकी जातिको अमीरीका सामान भारतवर्षको ही देना है। जो लोग बहुत दूर रहकर हद दर्जेके सुखमें रहना चाहते हैं उनके लिये सब प्रकारके आत्मीयता सम्पर्कसे शून्य जातिको अन्न वस्त्रकी गाड़ियाँ भर भरकर पहुँचानी पड़ती हैं। यह निष्ठुर असामञ्जस्य प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, इस बातको केवल वे ही लोग न मानेंगे जिनके लिये आराम अत्यन्त आवश्यक हो गया है।

अतः एक तरफ बड़ी बड़ी तनख्वाहें, भारी पेन्शनें, ऊँची रहन-सहन और दूसरी तरफ पराकाष्ठाका क्लेश, आधे पेट खाकर संसार-यात्राका निर्वाह–ये दोनों असंगत अवस्थाएँ बिलकुल साथ ही साथ लगी हुई हैं। अन्न वस्त्रकी कमी ही एक बात नहीं है, मानमर्यादामें भी हम उनसे इतने हेठे हैं, हमारे और उनके मूल्यमें इतना भारी भेद है कि कानून भी पक्षपातका स्पर्श बचाकर चलनेमें असमर्थ हो गया है। ऐसी दशामें जितने दिन बीत रहे हैं, भारतकी छातीपर विदेशियोंका भार उतना ही गुरुतर होता जा रहा है, उभयपक्षके बीच असमानताकी खाई पातालपर विराम करने जा रही है—इसको न समझनेवाला आज कोई न मिलेगा। इस दशामें एक ओर वेदना जितनी दुस्सह होती है

दूसरी ओर बेपरवाई और अवज्ञाका राज्य उतना ही अटल होता जाता है। यदि दुर्भाग्यवश यही अवस्था स्थायी हो गई तो निश्चित है कि एक न एक दिन अन्धड़को अवश्य बुला लावेगी।

इस प्रकार इन कई एक समानताओंके रहते हुए भी हमें यह कहना पड़ेगा कि विप्लवके पहले अमेरिका और फ्रान्सके सामने जो समस्या उपस्थित थी और फलतः जिसकी मीमांसापर ही उनकी मुक्ति पूर्ण रूपसे निर्भर करती थी; हमारे सामने वैसी समस्या नहीं है। अर्थात् विनयानुनय करके या लड़-भिड़कर जबरदस्ती यदि हम अँगरेजोंको भारतसे बोरिया-विस्तरा समेटनेके लिये राजी या बाध्य करनेमें सफल हो जायँ, तो भी हमारी समस्याकी मीमांसा न होगी—या तो अँगरेज ही फिर आ धमकेंगे या ऐसे दूसरे पधारेंगे जिनके पेटकी परिधि और मुँहका ग्रास अँगरेजोंकी अपेक्षा छोटा न होगा।

यह कहना निष्प्रयोजन होगा कि जो देश महाजातिका निर्माण नहीं कर सकता वह स्वाधीन होनेका अनधिकारी है—स्वाधीन हो ही नहीं सकता। क्योंकि उसके पास स्वाधीनतामेंका 'स्व' पदार्थ कहाँ है? स्वाधीनता, किसकी स्वाधीनता? बंगालियोंके स्वाधीन हो जानेसे दक्षिणकी नायर जाति अपने आपको स्वाधीन नहीं समझेगी; जाटों की स्वाधीनताका फल आसामी पानेकी आशा नहीं करेगा। दो भिन्न भिन्न प्रान्तोंकी बात जाने दीजिए। एक बंगालमें ही हिन्दूके साथ मुसलमान अपना भाग्य एक करनेके लिये तैयार हैं, ऐसा कोई लक्षण नहीं दिखलाई देता। तब स्वाधीन होगा कौन? हाथके साथ पैर, और पैरके साथ सिर यदि अपना हिसाब बिलगाने लग जायँ तो लाभ नामक वस्तुका अधिकारी कौन रह जायगा?

ऐसी दलील भी सुनी है कि जितने दिन हम दूसरोंके कड़े शासनके अधीन रहेंगे उतने दिनतक हम राष्ट्राकारमें संगठित न हो सकेंगे—पद पदपर बाधा होगी, एकत्र होकर जिन बड़े बड़े कामोंको करते रहनेसे परस्पर एक प्रकारकी एकता उत्पन्न हो सकती है वैसे काम करनेका—जिस प्रकार एकत्र होनेसे पूरा पूरा संयोग होना सम्भव है उस प्रकार एकत्र होनेका—अवसर ही न पावेंगे। यदि यह बात सत्य है तो फिर हमारी समस्याकी कोई मीमांसा ही नहीं है। क्योंकि विच्छिन्न कभी मिलितसे विरोध करके जयकी आशा नहीं कर सकता। विच्छिन्नकी शक्ति विच्छिन्न, उद्देश्य विच्छिन्न, अध्यवसाय विच्छिन्न—सभी कुछ विच्छिन्न होगा। विच्छिन्न पदार्थ जबतक जड़की भाँति पड़े रहेंगे तभीतक उनका कुशल है, जरासी हवा देकर उन्हें सचल करते ही उनका संगठन हवा हो जायगा, वे तितर बितर हो जायँगे और एक दूसरेसे टकराकर टूट जायँगे; उनके भीतरकी सारी कमजोरियाँ अनेक रूप धारण करके उनका विनाश करने लगेंगी। जबतक हम स्वयं एक न बन लेंगे तबतक किसी ऐसेको भी परास्त न कर सकेंगे जिसकी एकता असली न होकर बनावटी ही हो।

केवल यही नहीं कि हम उनको परास्त न कर सकेंगे बल्कि बिलकुल आकस्मिक कारण भी उस एक बाहरी बन्धनको तोड़ फेंकेंगे जिसके द्वारा हम एक दिखाई पड़ रहे हैं। फिर जिस समय हम आपसमें एक दूसरेके शत्रु बन जायँगे उस समय यह भी सम्भव न होगा कि थोड़ी देरतक घरेलू मारकाट करनेके अनन्तर हम अपने विरोधकी मीमांसा कर सकें। मीमांसा करनेका हमें मौका ही कोई न देगा। संयोगसे लाभ उठानेका ख्याल केवल हमींको नहीं है, संसारके जिन प्रबल राष्ट्रोंके घोड़े आठों पहर कसे कसाए तैयार रहते हैं वे हमारे

गृहयुद्धका नाटकके दर्शककी भाँति दूर हीसे आनन्द नहीं लेते रहेंगे। भारतवर्ष ऐसा मांसखण्ड नहीं है जिसपरसे लोभीकी आँख एक क्षणके लिये भी बहक सके।

अतः जिस देशमें अनेक विच्छिन्न जातियोंसे एक महाजाति—एक राष्ट्रका निर्माण नहीं हो सकता उस देशकी आलोचनाका यह विषय नहीं है कि अँगरेजोंका शासन रहेगा या न रहेगा। महाजातिका निर्माण ही उसका एक मात्र उद्देश्य होना चाहिए। यह उद्देश्य ऐसा है जिसके आगे सारे उद्देश्योंको सिर झुका देना पड़ेगा—यहाँतक कि यदि अँगरेजोंका राजत्व भी इस उद्देश्यकी सिद्धिमें किसी प्रकार सहायक हो सके तो उसे भी हमें भारतवर्षकी ही सामग्री मानकर ग्रहण करना पड़ेगा। आन्तरिक प्रीतिके साथ उसे ग्रहण करनेमें अनेक बाधाएँ हैं। ये बाधाएँ कैसे दूर होंगी और किस प्रकार अँगरेजोंका राजत्व हमारे आत्मसम्मानको क्लेश न पहुँचा सकेगा, कौनसा काम करनेसे उसके साथ हम लोगोंका गौरवप्रद आत्मीय बन्धन स्थापित हो सकेगा इस अति कठिन प्रश्नकी मीमांसा करनेका भार भी हमें अपने ऊपर लेना पड़ेगा। " हम उसे (अँगरेजी राज्यको) नहीं चाहते " रोषके साथ इस प्रकारका उत्तर देनेसे भी कुछ नहीं होगा। हमें उसे चाहना ही पड़ेगा; जबतक हम महाजाति बननेमें समर्थ नहीं हुए हैं तबतक अँगरेजी राज्यका जो प्रयोजन है वह कभी पूर्ण न होगा।

थोड़े दिन हुए विधाताने हमारी समस्त चेतनाको इस ओर आकृष्ट किया था कि हमारे देशकी सबसे बड़ी समस्या क्या है। उस दिन मनमें आया था कि बंग-भंगसे हमारे हृदयोंपर बहुत गहरा घाव बैठा है। यह हम अँगरेजोंको अच्छी तरह दिखा देंगे हम विलायती नमकसे सम्बन्ध तोड़ देंगे और देशके तनसे विलायती वस्त्र छीने बिना जल तक

न ग्रहण करेंगे। उधर बाहरी लोगोंके साथ यह घोषणा करते ही इधर घरमें ही एक ऐसा झगड़ा खड़ा हो गया जैसा आजतक कभी नहीं हुआ था। हिन्दू-मुसलमानका विरोध एकाएक अत्यन्त भयंकर मूर्ति धारण कर सामने आ गया।

हमें चाहे इस व्यापारसे कितना ही कष्ट क्यों न पहुँचा हो, पर वह हमारी शिक्षाके लिये नितान्त आवश्यक था। हम सबको यह बात अच्छी तरह जान लेनेकी आवश्यकता थी कि हम हजार चेष्टा करके भी इस सत्यको नहीं भूल सकते कि हमारे देशमें हिन्दू और मुसलमान एक नहीं हैं, पृथक् पृथक् हैं। यह सत्य प्रत्येक कार्य्यमें ही हमें बलात् याद पड़ा करेगा। यह कहकर मनको धोखा देनेसे काम न चलेगा कि हिन्दू मुसलमानोंके सम्बन्धमें कभी कोई खराबी न थी, इनमें विरोध करानेके कारण केवल अँगरेज ही हैं।

यदि सचमुच यही बात है, अँगरेजोंने ही मुसलमानोंको हमारे विरुद्ध खड़ा होनेका पाठ पढ़ाया है तो उन्होंने हमारा महत् उपकार किया है। जिस प्रकाण्ड सत्यकी नितान्त उपेक्षा कर हम बड़े बड़े राष्ट्रीय कार्य्योंकी योजनाएँ तैयार कर रहे थे उसकी ओर आरम्भमें ही उन्होंने हमारी निगाह फिरा दी है। यदि हम इससे कुछ भी शिक्षा न ग्रहण कर उलटे शिक्षक ही पर क्रोध करना कर्त्तव्य समझेंगे तो हमको फिर ठोकर खानी पड़ेगी। जो सच्ची बाधा है उसका सामना हमें करना ही पड़ेगा, चाहे जैसे करें, उसकी निगाह बचाकर निकल जानेका कोई रास्ता ही नहीं है।

यहाँपर यह बात भी अच्छी तरह समझ लेनी होगी कि हिन्दू और मुसलमान वा हिन्दुओंहीमें उच्च और नीच वर्णोंके परस्पर असंयुक्त और अलग रहनेसे हमारे कार्यमें विघ्न उपस्थित हो रहा है। इसलिये

किसी न किसी उपायसे संयुक्त होकर बलवान् बननेका प्रश्न ही हमारे लिये सबसे बड़ा प्रश्न नहीं है, और इसीलिये यही सबकी अपेक्षा अधिक सत्य भी नहीं है।

हम पहले ही कह चुके हैं कि निरा प्रयोजनसिद्धिका सुयोग, निरी सुव्यवस्था ही मनुष्यकी सब आवश्यकताएँ पूरी नहीं कर सकती; केवल इन्हींको लेकर वह जीवित नहीं रह सकता। ईसाने कहा है, मनुष्य केवल रोटीहीके सहारे नहीं जीता। कारण यह कि उसका केवल शारीरिक जीवन ही नहीं, आध्यात्मिक जीवन भी है। इसी बृहत् जीवनके लिये खाद्यका अभाव होनेके कारण अँगरेजी राज्यमें सब प्रकारका सुशासन रहते हुए भी हमारे आनन्दका सोता सूखता जा रहा है।

पर यदि इस अवस्थाकी सारी जिम्मेदारी केवल बाहरी कारणपर ही होती, यदि अँगरेजी राज्य ही उपर्युक्त खाद्याभावका एक मात्र कारण होता तो कोई बाहरी उपचार करके ही हम अपना काम बना ले सकते। हम तो घरमें भी बरसोंसे उपवास करनेके आदी हो रहे हैं। हम हिन्दू और मुसलमान, हम भारतके भिन्न भिन्न प्रान्तोंके हिन्दू, एक जगह बसते हैं सही, पर मनुष्य एक दूसरेको रोटीकी अपेक्षा जो उच्चतर भोजन देकर परस्परके प्राण, शक्ति और आनन्दको परिपुष्ट करते हैं, हम एक दूसरेको उसी खाद्यसे वंचित रखनेका उपाय करते आ रहे हैं। हमारी सारी हृदयवृत्ति, सारी हितचेष्टा, परिवार और वंशमें एवं एक एक संकीर्ण समाजमें इस प्रकार जकड़ गई है कि साधारण मनुष्यके साथ साधारण आत्मीयताका जो विशाल सम्बन्ध है उसको स्वीकार करनेके लिये हमारे पास कोई सामान ही नहीं रह गया है— उसको बैठानेके लिये हमारे घरमें एक चटाईतक नहीं है। यही कारण

है कि द्वीपपुंजकी भाँति हम खण्ड खण्ड हो गए हैं, पर महादेशकी तरह व्याप्त, विस्तृत और एक नहीं हो सके।

प्रत्येक छोटा मनुष्य बड़े मनुष्यके साथ अपनी एकताको विविध मंगलोंके द्वारा विविध आकारोंमें उपलब्ध करना चाहता है। इस उपलब्धिकी बड़ाई इसलिये नहीं है कि इससे उसका कोई विशेष प्रयोजन सिद्ध हो जाता है। बल्कि यही उसका प्राण है। यह उसका मनुष्यत्व अथवा धर्म है। इस उपलब्धिसे उसको जितना ही वंचित रक्खा जायगा उतना ही वह सूखता जायगा—उतना ही प्राणरहित होता जायगा। दुर्भाग्यवश बहुत दिनोंसे हमने इस शुष्कताको ही आश्रय दे रक्खा है। हमारे ज्ञान, कर्म, आचार और व्यवहारके, हमारे सब प्रकारके लेनदेनके बड़े बड़े राजमार्ग एक एक छोटी मण्डलीके सामने पहुँचकर खण्डित हो गए हैं। हमारा हृदय और चेष्टा मुख्यतः हमारे निजके घर, निजके ग्राममें ही चक्कर काटती रहती है। विश्व-मानवके सामने जाकर खड़ी होनेका कभी अवसर ही नहीं पाती। फलतः हम पारिवारिक सुख पाते हैं, छोटे संकीर्ण समाजकी सहायता पाते हैं, पर वृहत् मानवी शक्ति और सम्पूर्णतासे बहुत दिनोंसे वंचित हैं जिससे हमें दीन हीन होकर दिन काटना पड़ रहा है।

इस भारी अभावकी पूर्त्तिका साधन यदि हम स्वयं ही—घरमें ही निर्माण न कर सके तो बाहरसे वह हमें क्यों मिलने जायगा? हम यह क्यों मान लेते हैं कि अँगरेजोंके चले जानेसे हमारा यह छिद्र भर जायगा? हममें परस्पर श्रद्धाका अभाव है, हम एक दूसरेको पहचानने तकका प्रयत्न नहीं करते, सैकड़ों और हजारों वर्षोंसे हम घरसे आँगनको विदेश मानते आ रहे हैं। इस सारी पारस्परिक उदासीनता अवज्ञा और विरोधको दूर भगानेकी आवश्यकता क्या केवल इसलिये

है कि हमें विदेशी कपड़ेके बहिष्कारका सुयोग मिल जाय। क्या केवल इसलिये हम इनके नाशका उपाय करें कि इससे हमारे विदेशी शासक हमारे पुरुषार्थका पता पावेंगे? इनके रहनेके कारण हमारे धर्मको क्लेश हो रहा है, हमारा मनुष्यत्व संकुचित हो रहा है, इनके रहनेसे हमारी बुद्धि संकीर्ण रहेगी, हमारे ज्ञानका विकास न होगा, हमारा दुर्बल चित्त सैकड़ों अन्ध संस्कारोंसे लिपटा रहेगा, भीतर और बाहरकी अधीनताके बन्धनोंको काटकर हम निर्भय और निस्संकोच होकर विश्वसमाजके सामने सीधे खड़े न हो सकेंगे। इसी भयरहित, बाधारहित विशाल मनुष्यताके अधिकारी बननेके लिये हमें पर-परके साथ परस्परको धर्मबन्धनमें बाँधनेकी आवश्यकता है। इसके बिना मनुष्य न किसी प्रकार बड़ा हो सकता है, न किसी प्रकार सत्य। भारतमें जो लोग आए हैं अथवा आते हैं वे सभी हमारी पूर्णताके अंश होंगे, सभीको लेकर हम पूर्ण बनेंगे। भारतमें विश्व-मानवकी एक अति महान् समस्याकी मीमांसा होगी। वह समस्या यह है कि मानवसमाजमें वर्णकी, भाषाकी, स्वभावकी, आचरणकी और धर्मकी विचित्रता है—नरदेवता इस विचित्रताकी बदौलत ही विराट् हुए हैं—भारतके मन्दिरमें हम इसी विचित्रताको एकाकारमें परिणत करके उसके दर्शन करेंगे। पृथक्ताको निर्वासित वा लुप्त करके नहीं किन्तु सर्वत्र ब्रह्मकी व्यापक उपलब्धि द्वारा मनुष्योंके प्रति सर्वसहिष्णु परम प्रेमके द्वारा, उच्च और नीच, अपने और पराए सबकी सेवाको भगवान्की सेवा माननेके द्वारा। और कुछ नहीं; केवल शुभ चेष्टासे, केवल सत्प्रयत्नसे देशको जीत लो, जो तुमपर सन्देह करते हों उनके सन्देहको जीत लो, जो तुमसे द्वेष रखते हों उनके विद्वेषको परास्त कर दो। बन्द दरवाजेको धक्का दो, बार बार

धक्का दो, खुलनेसे निराश होकर घरवालेकी बेपरवाईसे क्षुब्ध होकर कदापि लौट न आओ। एक मानवहृदय दूसरे मानवहृदयकी पुकारको अधिक समय तक कदापि अनसुनी नहीं कर सकता।

भारतका आह्वान हमारे अन्तःकरणोंतक पहुँचा है। लेकिन यह बात हम कभी न मानेंगे कि यह आह्वान समाचारपत्रोंकी क्रोधपूर्ण गर्जनामें ही ध्वनित हुआ है अथवा हिंसाशील उत्तेजनाकी चिल्लाहटमें ही उसका सच्चा प्रकाश हुआ है। पर इस बातको कि यह आह्वान हमारी अन्तरात्माको उद्बोधित कर रहा है, हम तब मानेंगे जब देखेंगे कि किसी विशेष जाति या किसी विशेष वर्णके ही नहीं दुर्भिक्ष-पीड़ित मात्रके द्वारपर हम रोटियाँ लिए खड़े हैं, जब देखेंगे कि भद्र अभद्रका भेद न कर हम तीर्थस्थलोंमें एकत्र यात्री मात्रकी सहायताके लिये बद्धपरिकर हैं, जब देखेंगे कि राजपुरुषोंके निर्दय सन्देह और प्रतिकूलताका सामना होते हुए भी अत्याचारके प्रतिरोधकी आवश्यकताके समय हमारे युवक विपत्तिके भयसे कुण्ठित नहीं होते। सेवाके समय संकोचका अभाव, दूसरोंकी सहायताके समय ऊँच नीचके विचारका अभाव—ये सुलक्षण जब देख पड़ने लगेंगे तब हम समझेंगे कि इस बार जो आह्वान या जो पुकार हमारे कानोंमें पड़ी है वह हमारी सारी संकीर्णताओंके तहखानोंको तोड़कर हमें बाहर निकाल लेगी, तब हम समझेंगे कि अबके भारतमें मनुष्यकी ओर मनुष्यका आकर्षण हुआ है। तब समझेंगे कि इस बार प्रत्येक व्यक्तिका प्रत्येक प्रकारका अभाव पूर्ण करनेके लिये हमें जाना होगा, अन्न, स्वास्थ्य और शिक्षाका दान और विस्तार करनेके लिये; हमें संसारसे पूर्णतया अलग दूर दूरतकके गाँवोंको अपना जीवन भेंट करना होगा, तब हम समझेंगे कि अब कोई हमको अपने निजके स्वार्थ और सुख स्वच्छन्दताकी चहार दीवारीमें

रोक नहीं सकेगा । आठ महीनेकी अनावृष्टिके बाद वर्षा जब पहले पहल आती है तब अन्धड़ लेकर ही आती है, पर नववर्षाके आरम्भिक कालका यह अन्धड़ ही नूतन आविर्भावका सर्व प्रधान अंग नहीं होता, यही नहीं, वह स्थायी भी नहीं होता । बिजलीकी कड़क, बादलोंकी गरज और वायुकी उन्मत्तता अपने आप ही जैसे आई वैसे चली जायगी । उस समय बादल दल बाँधकर आकाशको एक सिरेसे दूसरे सिरेतक स्निग्धतासे ढक देंगे । चारों ओर धाराएँ बरसकर तृषित पात्रोंको जलपूर्ण कर देंगी, क्षुधितोंके खेतोंमें अन्नकी आशाका अंकुर उगा देंगी । उस मंगल परिपूर्ण अद्भुत सफलताके दिनने बहुत दिनोंकी प्रतीक्षाके बाद भारतमें पदार्पण किया है, इसको निश्चित रूपसे जानकर हम सानन्द तैयार होंगे । किस बातके लिये ? घरसे निकलकर खेततक पहुँचनेके लिये, भूमि जोतनेके लिये, बीज बोनेके लिये—तदुपरान्त सोनेकी फसलमें लक्ष्मीका आविर्भाव होनेपर उसे घर लाकर सार्वकालिक उत्सवकी प्रतिष्ठा करनेके लिये ।

समाप्त ।

श्रवणबेल्गोल

और

दक्षिण के अन्य जैन-तीर्थ

●

राजकृष्ण जैन

वीरसेवामन्दिर

१, दरियागंज,

दिल्ली ।

श्रवणबेल्गोल

और

दक्षिण के अन्य जैनतीर्थ

●

लेखक

श्री राजकृष्ण जैन

●

भूमिका

श्री टी० एन० रामचन्द्रन, एम० ए०
डिप्टी डाइरेक्टर-जनरल, पुरातत्त्व विभाग, नई दिल्ली

वीरसेवामन्दिर
१, दरियागंज
दिल्ली

प्रकाशक
वीरसेवामंदिर
१, दरियागंज, दिल्ली

प्रथम संस्करण १९५३
मूल्य
एक रुपया

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली

तपोनिधि पूज्य आचार्यश्री १०८ नमिसागरजी
महाराज के कर-कमलों में

राजकृष्ण जैन

प्रकाशकीय

यह पुस्तक अपने नामानुकूल श्रवणबेल्गोल तथा दक्षिण के *अन्य जैन-तीर्थों* का अच्छा पथप्रदर्शन करनेवाली है—संक्षेप में उनके परिचय तथा इतिहास को लिये हुए है और अच्छे रोचक ढंग से लिखी गई है। इसके लिखने में लेखक महानुभाव ला० राजकृष्णजी ने काफी श्रम उठाया है और तभी यह इतने थोड़े समय में तैयार हो सकी है। आप अपने इस प्रथम प्रयास में सफल हुए हैं। आशा है वीरसेवामन्दिर के निमित्त को पाकर आप भविष्य में अच्छी साहित्यिक-प्रगति कर सकेंगे। महान् रिसर्च-स्कॉलर एवं पुरातत्त्व विभाग के डिप्टी डाइरेक्टर जनरल श्री टी० एन० रामचन्द्रन्‌जी की भूमिका ने पुस्तक पर कलश का काम किया है और उसकी उपयोगिता को बहुत कुछ बढ़ा दिया है। यह पुस्तक हर यात्री को एक मार्ग-प्रदर्शक साथी का काम देगी और इसलिए सभी को अपने साथ रखनी चाहिए। जो लोग यात्रा में नहीं हैं वे घर बैठे इससे यात्रा का कितना ही आनन्द ले सकेंगे। यही सब सोचकर आज, गोम्मटस्वामी के महामस्तकाभिषेक के अवसर पर, इसे पाठकों के हाथों में देते हुए बड़ी प्रसन्नता होती है।

जुगलकिशोर मुख्तार

अधिष्ठाता 'वीरसेवामन्दिर'

दो शब्द

इसी वर्ष कार्तिकी मेले पर कलकत्ता गया था। साथ में श्रद्धेय श्री पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार भी थे। रात्रि में श्री बाबू छोटेलालजी से परामर्श हुआ कि गोम्मटेश्वर के महामस्तकाभिषेक के अवसर पर यदि श्रवणबेल्गोल पर कोई पुस्तक तैयार हो जाय तो उपयोगी होगी। बाबूजी ने इस सुझाव का स्वागत ही नहीं किया, अपितु रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की लायब्रेरी से प्राक्तन-विमर्ष-विचक्षण रावबहादुर श्री आर. नरसिंहाचार की अंग्रेजी की पुस्तक 'श्रवणबेल्गोल' लाकर मुझे प्रोत्साहित किया। उन्हींकी प्रेरणा पर उनके परम मित्र श्री टी. एन. रामचन्द्रनजी, एम. ए. डिप्टी डाइरेक्टर-जनरल पुरातत्त्व विभाग ने भूमिका लिखने की कृपा की। उनकी भूमिका ने इस पुस्तक में चार चांद लगा दिए। इस पुस्तक का सारा श्रेय बाबू छोटेलालजी को है।

पुस्तक लिखने का मेरा यह प्रथम प्रयास है। अतः इसमें त्रुटियां रह जाना स्वाभाविक है। यदि पाठक उन त्रुटियों से मुझे सूचित करेंगे तो द्वितीय संस्करण में उन्हें ठीक कर दिया जायगा।

पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार वीरसेवामन्दिर के संस्थापक एवं अधिष्ठाता हैं। उनके नाम से जैन-समाज का प्रत्येक मनुष्य परिचित है। यह पुस्तक वीरसेवामन्दिर की ओर से प्रकाशित हो रही है। अतः इस अवसर पर मैं मुख्तार साहब का आभार स्वीकार करता हूँ।

भाई माईदयालजी ने समय-समय पर कई सुझाव दिये। बाहुबली की कुण्डली श्री पं० नेमीचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य की बनाई हुई है। एक कविता श्री कल्याणकुमारजी जैन 'शशि' की है और दूसरी कविता स्वर्गीय श्री भगवत की। अतः मैं इन सबका भी आभारी हूँ।

इनके अतिरिक्त मैं अपने अन्य सहयोगी बन्धुओं का भी ऋणी हूं जिन्होंने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इस पुस्तक की तैयारी में योग दिया।

२३, दरियागंज,
दिल्ली
माघशुक्ल ५
वीर निर्वाण २४७६

—राजकृष्ण जैन

PREFACE

On the Occasion of the Mahamastakabhisheka ceremony of Gommatesvara I am happy to be associated with the function by being called upon by Shri Raj Krishen Jain, the author of this guide on Sravana Belgola, to write a preface to it. The colossal statue of Gommatesvara on the top of the Vindhyagiri hill at Sravana Belgola, Mysore, represents Bahubali, son of Rishabhadeva, the first Jaina Tirthankara, through his wife Sunanda. The golden age of Jainism in South India in general and in Karnataka in particular was under the Ganga Kings who made Jainism their state religion. The great Jaina Acharya Simhanandi was not only instrumental in laying the foundation of the Ganga kingdom but acted also as an adviser to Konguni varman I, who was the first Ganga King. While Madhava II (540-565 A.D.) made grants to the Digambara Jainas, Durvinita (605-650 A.D.) sat at the feet of the venerable Pujyapada and Durvinita's son, Mushkara (650 A.D.) made Jainism the state religion. Ganga kings who followed, were zealous patrons of Jainism. Chamunda Raja who was a General of the army of the Ganga king Marasimha III (961-974 A.D.) erected the colossal statue of Bahubali at Sravana Belgola. It is said of Marasimha III that he crowned his life with the highest sacrifice a Jaina may offer to his faith, *viz.* death by *sallekhana.* Rajamalla I

(817-828 A.D.) founded Jaina caves at Vallimallai in North Arcot District of Madras state and his son Nitimarga I was a great Jaina.

The story of Bahubali's renunciation and deep penance has received adequate emphasis at the hands of a very appreciative Jaina world which has given him and his ideas immortality by fashioning out of living rock a colossal statue of him in the manner that he stood out for the cause of renunciation, devotion, nonviolence and supreme bliss. The statue is silhoutted against a background of vastness, achievement and mystic ecstacy and a foreground of time, distance, devotion and eternity. Though similar colossal statues of Bahubali are also hewn out of the living rock at two other places, Karkal and Venur in South India, the one in Sravan Belgola is easily the best being the most attractive.

The history of Bahubali's statue takes us to the very interesting history of Jainism in South India. According to a Jaina tradition duly recorded in the inscriptions at Sravana Belgola, Bhadrabhu I, who was the last *Sruta-kevali*, led the Northern Jainas, 12000 in number to South India in the time of the Maurya Emperor Chandragupta. Chandragupta is said to have joined the migrating party. The date of this migration is, as Prof. Jacobi has estimated, probably a few years before 297 B.C. Bhadrabahu I died on the way at Chandragiri hill before he could complete the migration. The importance of this migration is due to the

fact that it is really the starting point for an account of South Indian Jainism. The initial fact of Digambara tradition is the division of Jainas into Svetambara and Digambara, which starts from here. Bhadrabahu's migration in the company of Chandragupta Maurya was followed by other missions to the south such as that of Kalakacharya and of Visakhacharya. The latter was an eminent Digambara preacher who penetrated Chola and Pandya countries in South India. The spread of Jainism in the Tamil country received impetus on the advent of another great Acharya called Kundakunda who was evidently a Dravidian and in fact the first in almost all the genealogies of the Southern Jainas. The Imperial Courts of Kanchipura and Madura gave sufficient patronage to the spread of Jainism in the Tamil country. When the Chinese pilgrim Yuan Chwang visited these two cities in the 7th century A.D., he found in Kanchipuram a majority of Digambara temples and at Madura a number of Digambaras.

It is accepted by historians that from the beginning of the Christian era down to the epoch-making conversion of the Hoysala King Vishnuvardhana by the Vaishnava Acharya Ramanuja in the 12th century A.D., Jainism was the most powerful religion in the South, and the most attractive and acceptable too.

One of the Pallava Kings of Kanchipuram, Mahendravarman I (600-630 A.D.), a few Pandya, Western Chalukya, Ganga, Rashtrakuta, Kalachuri and Hoysala Kings were Jainas.

Regarding Mahendravarman I, there is a tradition that he was originally a Jaina and later on converted to Saivism by the Saiva Saint Appar, himself a Jaina in the earlier part of his life when he was called Dharmasena.

Nedumaran *alias* Kun-Pandya, a Pandya King of the 8th century A.D. was a Jaina and according to Saiva literature in Tamil he is said to have been retrieved from the " clutches " of Jainism by the great Saiva Saint Sambandha.

Kakusthavarman (430-450 A.D.), Mrigesavarman (475-490 A.D.), Ravivarman (497-537 A.D.) and Harivarman (537-547 A.D.) are a few among the many *Kadamba Kings* of Banavasi in Karnataka, who, though themselves Hindus, were systematically eclectic and favoured Jainism as the religion of many of their subjects. Kakusthavarman ends one of his inscriptions by reverencing Rishabhadeva, the first Tirthankara. His grandson Mrigesavarma gave some fields at Vaijayanti " to the divine supreme Arhats '.. upon another occasion divided the village of Kalavanga into three parts and distributed them as follows: the first he gave ' to the great god Jinendra ', the second for ' the enjoyment of the sect........ called Svetapatha ...... (Svetambaras) ', and the third 'to........ the Nirgranthas' (Digambaras). Ravivarma granted a village so ' that the glory of Jinendra.. should be celebrated regularly every year' at Palasika (Halsi). Harivarma also made several grants to the Jainas ".

The Early Chalukyas or the *Western Chalu-*

kyas as they are better known, were noted for their patronage of Jainism. Three great Jaina Acharyas, Gunachandra, Vasuchandra and Vadiraja came under the patronising hand of Jayasimha I. Pulakesi I (550 A.D.) and his son Kirtivarman I (566-97 A.D.) gave grants to temples of Jinendra. Kirtivarman's son Pulakesi II (609-642 AD.)was the great patron of the renowned Jaina poet Ravikirti who composed the Aihole record wherein Ravikirti is compared to Kalidasa and Bharavi for poetic skill. The Aihole record also tells us that a stone temple of Jinendra was built by Ravikirti, "who had acquired the greatest favour of Satyasraya (Pulakesi) whose commands were restrained by the three oceans." Pujyapada's pupil, Niravadya Pandita (Udayadeva) was a Raja-guru or spiritual adviser of Jayasimha II and of Vinayaditya (680-697 A.D.). Vijayaditya (696-733 A.D.) son of Vinayaditya gave Niravadya Pandita a village for the upkeep of a temple of the Jina. And his son, Vikramaditya II (733-747 A.D.) made extensive repairs to a temple of Jina and gave a grant in connection with it to another Jaina ascetic, Vijaya Pandita. But the real *Golden Age of Jainism* was under the Gangas and it was already remarked that it was Chamunda Raja, the General of Marsihma III, who gave us the immortal statue of Bahubali at Sravana Belgola. The Gangas in short were staunch Jainas.

The Rashtrakutas were great patrons of Jainism. Govinda III (798-815 A.D.) was a

patron of a great Jaina teacher called Arikirti. His son Amoghavarsha I (814-878 A.D.) sat at the feet of a great Jaina Acharya called Jinasena, who was the preceptor of Gunabhadra and wrote the Jaina Harivamsa, the first recension of which was completed in 783-4 A.D. in the time of Govinda III, and a portion of the Adi-purana, which was part of the Jaina Maha Purana while Gunabhadra completed Adi Purana by writing the second part of the Maha-purana in 897 A.D., in the reign of Amoghavarsha's successor, Krishna II (880-911-12 A.D.). Among Jaina works that were written at the Rashtrakuta capital, mostly under the patronage of Amoghavarsha I, mention may be made, besides *Harivamsa, Adi-purana* and *Uttara-purana* of *Akalanka Charita, Jayadhavalatika,* a work on Digambara philosophy by Virasenacharya, a mathematical work called *Sarasamgraha* or *Ganitasarasamgraha* by Viracharya, and a treatise on moral subjects entitled *Prasnottara-ratnamalika,* the authorship of which is attributed to Amoghavarsha himself. In short it is said of Amoghavarsha I that he was the greatest patron of Digambara Jainism and that he adopted the Jaina faith. In the reign of Krishna II his subjects and tributary chiefs either built or made grants to Jaina temples already built, doubtless under his patronage, and the Jaina *purana* (*Maha-purana*) was consecrated in Saka 820 by Lokasena, the pupil of Gunabhadra.

Though the Chalukyas of Kalyani did not take favourably to Jainism, we have the noble

example of Somesvara I (1042-1068 A.D.) who according to an inscription of Sravana Belgola is described as conferring the title of *Sabda-chaturmukha* on a great Jaina teacher, Swami. This Somesavara is called in the inscription Ahavamalla.

The Chola Kings of the Tamil country have often been supposed to have opposed Jainism. This is not true as many of the Chola inscriptions such as at Jina-Kanchi will go to show. The learning of the Jaina Acharyas was appreciated and great Acharyas like Chandrakirti and Anavtviryavaman, were patronised. The Jaina temples at Jina-Kanchi received lavish endowments and grants at the hands of the Chola Kings.

Tribhuvanamalla Bijjala (1156-67 A.D.) the founder of the Kalachuri Dynasty, had the figure of a Tirthankara in all his grants and was a Jaina himself. Later on he came under the evil influence of his minister Basava, the founder of the Lingayata sect. When Basava found that Bijjala did not agree with him to persecute Jainas, he had the king murdered stealthily.

The Hoysalas of Mysore were great Jainas. Vinayaditya II (1047-1100 A.D.) the first historical person of this dynasty, owed his rise to power to a Jaina ascetic named Santideva. Santaladevi, the wife of Vishnuvardhana *alias* Bitti (1111-1141 A.D.) was a lay disciple of a Jaina teacher, Prabhachandra, while Vishnuvardhana's minister Gangaraja and Hulla, a minister of Narasimha I (1143-73 A.D.) are specifically

cited as " two out of three very special promoters of the Jaina faith ". Thus there seems to be no doubt that the early Hoysalas were Jainas and that the later Hoysalas from Bitti ownards were converted to Vaishnavism mainly because of Ramanuja's personality. Bitti, who was perhaps the greatest ruler of the dynasty, was " a fervent militant Jaina down to the time when he was converted to Vaishnavism by Ramanuja ", an event which came to happen by a miracle as Vaishnava literature has it. Much reliance cannot be placed on the traditional account that the new convert persecuted the Jainas, being directed to do so by Ramanuja, for we learn that his wife Santaladevi remained a Jaina and continued to make grants to the Jainas with the king's consent, and that Gangaraja, his minister, whose services for Jainism are well known, continued to enjoy the king's favour. Moreover he himself is said to have endowed and repaired Jaina temples and to have afforded protection to Jaina images and priests. It is claimed for Vishnuvardhana—the name adopted by him after his conversion—that his reign was one of great toleration that continued even during the reigns of his successors. His successors, though themselves Vaishnavites, are said to have built Jaina temples (*bastis*) and to have protected Jaina Acharyas. Such are for instance Narasimha I (1143-73 A.D.), Vira-Ballala II (1173-1220 A.D.) and Narasimha III (1254-91 A.D.).

The Vijayanagara kings were always noted

for their highly tolerant attitude towards religions and were therefore patrons of Jainism too. Bukka I (1357-1377-8 A.D.), is spoken off for the Jaina-Vaishnava compact that he was able to effect during his reign. This by itself speaks for the patronage that Jainism received at the hands of the early kings of Vijayanagara. Bhimadevi, the queen of Deva Raya I, is said to have been a disciple of a Jaina teacher Abhinava-Charukirti-Panditacharya and to have installed an image of Santinatha at Sravana Belgola.

Irugappa, the general of Bukka II (1385-1406 A.D.) is referred to in an inscription at Hampi as having built a temple for the 17th Tirthankara Kunthunatha in 1385 A.D., and a Music-Hall in the Jaina temple at Jina-Kanchipuram in 1387-88 A.D. Inscriptions in the latter temple of the Vijayanagara King Krishnadeva Raya (1510-29 A.D.) refer to the king's tolerant spirit and endowments to Jaina temples. Almost all the rulers down to Rama Raya made grants to Jaina temples and were tolerant enough.

Such has also been the attitude of the feudatory and minor rulers under the Vijayanagara kings and of the ruling house of Mysore towards Jainism, an attitude which luckily continued down to the present day. It is said that some of the minor powers like the rulers of Gersoppa and the Bhairavas of Karkal "professed the Jaina faith and left monuments of importance in the history of Jaina art".

What is the message of Jainism or for the matter of that what do the colossal statue of Bahubali at Sravana Belgola and elsewhere and of the figures of the 24 Tirthankaras reveal? Jainism, so called because its founder was a Jina or 'Victor', attempts to raise man to godhood and to inspire him to reach it by *steady faith*, *right perception*, *perfect knowledge* and above all by a *spotless life*. Jainism believes in godhood and speaks of innumerable gods. The story of the religion founded by Lord Mahavira is a story of 25 centuries, spreading over the whole of India, with its centres of activity still maintained in Gujrat, Mathura, Rajasthan, Bihar, Bengal, Orissa, Deccan, . Mysore and South India. While saints and scholars ennobled the religion, the Jaina merchants vied with each other in erecting myriad temples, some of which are the glories of the religious architecture of India.

Vardhamana or Mahavira and the earlier Tirthankaras spread, like Lord Buddha, in India a gospel of *Mòksha* or liberation free from ritual and based on *love* and reason. The advent of these teachers synchronised with a mighty political revolution that shook entire India, that replaced *clans* by *states*, and prepared the way for an Empire transcending States. Mahavira, founded an ascetic order or brotherhood, governed by a system of rules and standing on the sheet-rock of an edifying doctrine of absolute sanctity of life, called *Ahimsa*. His *Ahimsa* doctrine—*Ahimsa paramo dharamah*—

reverberated in the entire Universe and spread like wild fire through an age of 25 centuries till it fascinated Mahatma Gandhi, the Father of Modern India. It is no exaggeration to say that on this famous doctrine of *Ahimsa* or Non-violence, the Mahatma built a *New India*, the *Young India* of to-day. I am sure this book on Sravan Belgola by Shri Raj Krishen Jain will interest all visitors to the celebrated monument, as it contains all the details necessary for correct understanding of the spirit of this colossal statue.

NEW DELHI. **T. N. RAMACHANDRAN**
15th January, 1953. *Deputy Director-General of Archaeology in India*

भूमिका

गोम्मटेश्वर के महामस्तकाभिषेक के अवसर पर श्री राजकृष्ण जैन ने श्रवणबेल्गोल पर जो प्रस्तुत पुस्तक लिखी है और उसकी भूमिका लिखने के लिए मुझे प्रेरित किया है, मुझे हर्ष है कि मैं भी इस भूमिका को लिखकर उस उत्सव में योग दे रहा हूं। मैसूर में श्रवणबेल्गोल नगर में विंध्यगिरि पर्वत पर जो गोम्मटेश्वर की विशाल मूर्ति है वह प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की महारानी सुनन्दा के पुत्र बाहुबली की है। दक्षिण भारत में जैनधर्म का स्वर्णयुग साधारणतया और कर्नाटक में विशेषतया गंगवंश के शासकों के समय में था, जिन्होंने जैन धर्म को राष्ट्र-धर्म के रूप में अंगीकार किया था। महान् जैनाचार्य सिंहनन्दी गंगराष्ट्र की नीव डालने के ही निमित्त न थे, बल्कि गंगराष्ट्र के प्रथम नरेश कोंगुणिवर्मन के परामर्शदाता भी थे। माधव (द्वितीय) ने दिगम्बर जैनों को दानपत्र दिये। इनका राज्यकाल ईसा के ५४०-५६५ रहा है। दुर्विनीत को वन्दनीय पूज्यपादाचार्य के चरणों में बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इनका राज्यकाल ई. ६०५ से ६५० रहा है। ई. ६५० में दुर्विनीत के पुत्र मुशकारा ने जैनधर्म को राष्ट्रधर्म घोषित किया। बाद के गंग-शासक जैनधर्म के कट्टर संरक्षक रहे हैं। गंगनरेश मारसिंह (तृतीय) के समय में उनके सेनापति चामुण्डराय ने श्रवणबेल्गोल में गोम्मटेश्वर की विशाल मूर्ति का निर्माण कराया। मारसिंह का राज्यकाल ईसा की ९६१-९७४ रहा है। जैनधर्म में जो अपूर्व त्याग कहा जाता है, मारसिंह ने उस सल्लेखना द्वारा देहोत्सर्ग करके अपने जीवन को अमर किया। राजमल्ल (प्रथम) ने मद्रास राज्यान्तर्गत उत्तरी आरकोट जिले में जैन गुफाएं बनवाई। इनका राज्यकाल ई. ८१७-८२८ रहा है। इनका पुत्र नीतिमार्ग एक अच्छा जैन था।

बाहुबली के त्याग और गहन तपश्चर्या की कथा को गुणग्राही जैनों

ने बड़ा महत्व दिया है और एक महान् प्रस्तर खंड की विशाल मूर्ति बना कर उनके सिद्धांतों का प्रचार किया है, जो इस बात का द्योतक है कि बाहुबली की उक्त मूर्ति त्याग, भक्ति, अहिंसा और परम आनन्द की प्रतीक है। उस मूर्ति की पृष्ठभूमि विस्तीर्णता, पूर्णता और अव्यक्त आनन्द की जनक है और मूर्ति की अग्रभूमि काल, अन्तर, भक्ति और नित्यता की उद्बोधक है। यद्यपि दक्षिण भारत में कारकल और बेणूर में भी बाहुबली की विशाल मूर्तियां एक ही पाषाण में उत्कीर्ण की हुई हैं तथापि श्रवणबेल्गोल की यह मूर्ति सबसे अधिक आकर्षक होने के कारण सर्वश्रेष्ठ है।

बाहुबली की मूर्ति का इतिवृत्त हमें दक्षिण भारत के जैनधर्म के रोचक इतिहास की ओर ले जाता है। श्रवणबेल्गोल में उत्कीर्ण शिलालेखों के आधार पर इस बात का पता लगता है कि मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के समय में अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु १२००० जैन श्रमणों का संघ लेकर उत्तरापथ से दक्षिणापथ को गये थे। उनके साथ चन्द्रगुप्त भी थे। प्रोफेसर जेकोबी का अनुमान है कि यह देशाटन ईसा से २९७ वर्ष से कुछ पूर्व हुआ था। भद्रबाहु ने अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचने से पूर्व ही मार्ग में चन्द्रगिरि पर्वत पर समाधिमरण-पूर्वक देह का विसर्जन किया। इस देशाटन की महत्ता इस बात की सूचक है कि दक्षिण भारत में जैन धर्म का प्रारम्भ इसी समय से हुआ है। इसी देशाटन के समय से जैन श्रमण-संघ दिगम्बर और श्वेताम्बर दो भागों में विभक्त हुआ है। भद्रबाहु के संघ गमन को देखकर कालिकाचार्य और विशाखाचार्य के संघ ने भी उन्हींका अनुसरण किया। विशाखाचार्य दिगम्बर सम्प्रदाय के महान् आचार्य थे जो दक्षिण भारत के चोल और पांड्य देश में गये। महान् आचार्य कुन्दकुन्द के समय में तामिल देश में जैनधर्म की ख्याति में और भी वृद्धि हुई। कुन्दकुन्दाचार्य द्राविड़ थे और स्पष्टतया दक्षिण भारत के जैनाचार्यों में प्रथम थे। कांचीपुर और मदुरा के राज-दरबार तामिल देश में जैनधर्म के प्रचार में विशेष सहायक थे। जब चीनी यात्री युवान चुवांग ईसा की ७वीं शताब्दी में इन दोनों नगरों में गया तो उसने कांची में अधिकतर दिगम्बर जैन मंदिर पाये और मदुरा में दिगम्बर

जैन धर्मावलम्बी।

इतिहासज्ञ इस बात को स्वीकार करते हैं कि ईसा से १२वीं शताब्दी तक दक्षिण भारत में जैनधर्म सबसे अधिक शक्तिशाली, आकर्षक और स्वीकार्य धर्म था। उसी समय वैष्णव आचार्य रामानुज ने विष्णुवर्द्धन को जैनधर्म का परित्याग कराकर वैष्णव बनाया था।

कांचीपुर के एक पल्लवनरेश महेन्द्रवर्मन (प्रथम) राज्यकाल ६०० से ६३० ई., पांडच, पश्चिमी चालुक्य, गंग, राष्ट्रकूट, कलचूरी और होयसल वंश के बहुत से राजा जैन थे। महेन्द्रवर्मन के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि वह पहले जैन थे, किन्तु धरमसेन मुनि जब जैनधर्म को त्याग कर शैव हो गए तो उनके साथ महेन्द्रवर्मन भी शैव हो गया। शैव होने पर धरमसेन ने अपना नाम अप्पड़ रखा।

आठवीं शताब्दी का एक पांडच नरेश नेदुमारन अपरनाम कुणपांड्या जैनधर्मावलम्बी था और तामिल भाषा के शैव ग्रंथों के अनुसार शैवाचार्य सम्बन्ध ने उससे जैनधर्म छुड़वाया।

कर्नाटक में बनवासी के कादम्ब शासकों में कुकुस्थवर्मन (४३० से ४५० ई.) मृगेशवर्मन (४७५ से ४९० ई.), रविवर्मन (४९७ से ५३७) और हरीवर्मन (५३७ से ५४७) यद्यपि हिंदू थे तथापि उनकी बहुत-सी प्रजा के जैन होने के कारण वे भी यथाक्रम जैनधर्म के अनुकूल थे। कुकुस्थवर्मन ने अपने एक लेख के अन्त में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव को नमस्कार किया है। उसके पोते मृगेशवर्मन ने वैजयन्ति में अर्हतों के अर्थ बहुत-सी भूमि प्रदान की। अन्य और समय में कालवंग ग्राम को तीन भागों में विभक्त किया। पहला भाग उसने जिनेन्द्र भगवान को अर्पण किया, दूसरा भाग श्वेतपथवालों और तीसरा भाग निर्ग्रन्थों को। पालासिका (हालसी) में रविवर्मन ने एक ग्राम इसलिए दान में दिया कि उसकी आमदनी से हर वर्ष जिनेन्द्र भगवान् का उत्सव मनाया जाय। हरिवर्मन ने भी जैनियों को बहुत दानपत्र दिये।

पश्चिमी चालुक्य वंश के शासक जैनधर्म की संरक्षकता के लिए

प्रख्यात थे। महाराज जयसिंह (प्रथम) ने दिगम्बर जैनाचार्य गुणचन्द्र, वासुचन्द्र और वादिराज को अपनाया। पुलकेशी (प्रथम) ५५० ई. और उसके पुत्र कीर्तिवर्मन (प्रथम) राज्यकाल ५६६ से ९७ ई. ने जैन मंदिरों को कई दानपत्र दिये। कीर्तिवर्मन का पुत्र पुलकेशी (द्वितीय) (राज्यकाल ६०९ से ६४२ ई.) प्रख्यात जैन कवि रविकीर्ति का उपासक था, जिन्होंने ऐहोल नामक ग्रंथ रचा। इसमें रविकीर्ति को कविताचातुरी के लिए कालिदास और भैरवि से उपमा दी। ऐहोल ग्रंथ के कथनानुसार रविकीर्ति ने जिनेंद्र भगवान् का एक पाषाण का मंदिर भी बनवाया। रविकीर्ति को सत्याश्रय (पुलकेशी) का बहुत संरक्षण था और सत्याश्रय के राज्य की सीमा तीन समुद्रों तक थी। पूज्यपाद के शिष्य निरवद्य पंडित (उदयदेव) जयसिंह (द्वितीय) के राज्य-गुरु थे और विनयादित्य (६८० से ६९७ ई.) और उनके पुत्र विजयादित्य (६९६ से ७३३ ई.) ने निरवद्य पंडित को जैन-मंदिर की रक्षा के लिए एक ग्राम दिया। उसके पुत्र विक्रमादित्य (द्वितीय) ने (राज्यकाल ७३३ से ७४७ ई.) एक जैन मंदिर की भली प्रकार मरम्मत कराई और एक दूसरे जैन साधु विजय पंडित को इस मंदिर की रक्षा के लिए कुछ दान दिया। किंतु वास्तव में जैनधर्म का स्वर्णयुग गंग-राष्ट्र के शासकों के समय में था और यह पहले ही बताया जा चुका है कि श्रवणबेलगोल में मारसिंह (तृतीय) के सेनापति चामुण्डराय ने बाहुबली की अविनश्वर मूर्ति बनवाई। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि गंगराष्ट्र के शासक कट्टर जैन थे।

राष्ट्रकूट वंश के शासक भी जैनधर्म के महान संरक्षक रहे हैं। गोविंद (तृतीय) (राज्यकाल ७९८ से ८१५ ई.) महान् जैनाचार्य अरिकीर्ति का संरक्षक था। उसके पुत्र अमोघवर्ष (प्रथम) राज्यकाल ८१४ से ८७८ ई. को जिनसेनाचार्य के चरणों में बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आचार्य जिनसेन गुणभद्र के गुरु थे। इन्होंने सन् ७८३-८४ में गोविंद (तृतीय) के समय में आदिपुराण के प्रथम भाग की रचना की और उसका उत्तरार्द्ध गुणभद्राचार्य ने सन् ८९७ में अमोघवर्ष के उत्तराधिकारी कृष्ण (द्वितीय) के राज्यकाल ८८० से ९१२ में पूर्ण किया। अमोघवर्ष प्रथम के समय में

राष्ट्रकूट की राजधानी में 'हरिवंश पुराण' 'आदिपुराण' और उत्तर पुराण, अकलंक चरित, जयधवला टीका आदि ग्रंथों की रचना हुई है। जयधवला-टीका दिगम्बर जैन सिद्धांत का एक महान् ग्रन्थ है। यहीं पर वीराचार्य ने गणित-शास्त्र का 'सार-संग्रह' नाम का एक ग्रन्थ रचा। अमोघवर्ष ने स्वयं नीतिशास्त्र पर एक 'प्रश्नोत्तर रत्नमालिका' बनाई। संक्षेप में अमोघवर्ष (प्रथम) के समय में यह कहा जाता है कि उसने दिगम्बर जैनधर्म स्वीकार किया था और वह अपने समय में दिगम्बर जैनधर्म का सर्वश्रेष्ठ संरक्षक था। कृष्ण (द्वितीय) के राज्यकाल में उसकी प्रजा और सरदारों ने या तो स्वयं मंदिर बनवाये, या बने हुए मंदिरों को दान दिया। शक संवत् ८२० में गुणभद्राचार्य के शिष्य लोकसेन ने महापुराण की पूजा की।

यद्यपि कल्याणी के चालुक्य जैन नहीं थे, तथापि हमारे पास सोमेश्वर (प्रथम) १०४२ से १०६८ ई. का उत्तम उदाहरण है, जिन्होंने श्रवण-बेल्गोल के शिलालेखानुसार एक जैनाचार्य को 'शब्दचतुर्मुख' की उपाधि से विभूषित किया था। इस शिलालेख में सोमेश्वर को 'आहवमल्ल' कहा है।

तामिल देश के चोल राजाओं के सम्बन्ध में यह धारणा निराधार है कि उन्होंने जैन धर्म का विरोध किया। जिनकांची के शिलालेखों से यह बात भली प्रकार विदित होती है कि उन्होंने आचार्य चन्द्रकीर्ति और अनवत्य-वीर्यवर्मन की रचनाओं की प्रशंसा की। चोल राजाओं द्वारा जिनकांची के मंदिरों को पर्याप्त सहायता मिलती रही है।

कलचूरि वंश के संस्थापक त्रिभुवनमल्ल विज्जल राज्यकाल ११५६ से ११६७ ई. के तमाम दान-पत्रों में एक जैन तीर्थंकर का चित्र अंकित था। वह स्वयं जैन था। अनंतर वह अपने मंत्री वासव के दुष्प्रयत्न से मारा गया; क्योंकि उसने वासव के कहने से जैनियों को सन्ताप देने से इन्कार कर दिया था। वासव लिंगायत सम्प्रदाय का संस्थापक था।

मैसूर के होय्यल शासक जैन रहे हैं। विनयादित्य (द्वितीय) राज्यकाल १०४७ से ११०० ई. तक इस वंश का ऐतिहासिक व्यक्ति रहा है। जैनाचार्य शान्तिदेव ने उसकी बहुत सहायता की थी। विष्णुवर्द्धन की

रानी शान्तलादेवी जैनाचार्य प्रभाचन्द्र की शिष्या थी और विष्णुवर्द्धन के मंत्री गंगराज और हुल्ला ने जैनधर्म का बहुत प्रचार किया। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पहले के होय्यसल नरेश जैन थे। विष्णुवर्द्धन अपरनाम 'विट्टी' रामानुजाचार्य के प्रभाव में आकर वैष्णव हो गये। विट्टी वैष्णव होने से पहले कट्टर जैन था और वैष्णव शास्त्रों में उसका वैष्णव हो जाना एक आश्चर्यजनक घटना कही जाती है। इस कहावत पर विश्वास नहीं किया जाता कि उसने रामानुज की आज्ञा से जैनों को सन्ताप दिया; क्योंकि उसकी रानी शान्तलादेवी जैन रही और विष्णुवर्द्धन की अनुमति से जैन मंदिरों को दान देती रही। विष्णुवर्द्धन के मंत्री गंगराज की सेवाएं जैनधर्म के लिए प्रख्यात हैं। विष्णुवर्द्धन ने वैष्णव हो जाने के पश्चात् स्वयं जैन मंदिरों को दान दिया, उनकी मरम्मत कराई और उनकी मूर्तियों और पुजारियों की रक्षा की। विष्णुवर्द्धन के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उस समय प्रजा को धर्म-सेवन की स्वतंत्रता थी। विष्णुवर्द्धन के उत्तराधिकारी यद्यपि वैष्णव थे तो भी उन्होंने जैन मंदिर बनाये और जैनाचार्यों की रक्षा की। उदाहरण के तौर पर नरसिंह (प्रथम) राज्यकाल ११४३ से ११७३, वीरवल्लभ (द्वितीय) राज्यकाल ११७३ से १२२० और नरसिंह (तृतीय) राज्यकाल १२५४ से १२९१।

विजयनगर के राजाओं की जैनधर्म के प्रति भारी सहिष्णुता रही है। अतः वे भी जैन धर्म के संरक्षक थे। बुक्का (प्रथम) राज्यकाल १३५७ से १३७८ ने अपने समय में जैनों और वैष्णवों का समझौता कराया। इससे यह सिद्ध है कि विजयनगर के राजाओं की जैनधर्म पर अनुकंपा रही है। देवराय प्रथम की रानी विम्मादेवो जैनाचार्य अभिनवचारुकीर्ति पंडिताचार्य की शिष्या रही है और उसीने श्रवणबेलगोल में शांतिनाथ की मूर्ति स्थापित कराई।

बुक्का (द्वितीय) राज्यकाल १३८५ से १४०६ के सेनापति इरुगुप्पा ने एक सांची के शिलालेखानुसार सन् १३८५ ईस्वी में जिनकांची में १७ वें तीर्थंकर भगवान् कुन्थनाथ का मदिर और संगीतालय बनवाया। इसी मंदिर

के दूसरे शिलालेख के अनुसार विजयनगर के नरेश कृष्णदेवराय सन् १५१० से १५२९ की जैनधर्म के प्रति सहिष्णुता रही और उसने जैन मंदिरों को दान दिया। विजयनगर के रामराय तक सभी शासकों ने जैन मंदिरों को दान दिये और उनकी जैनधर्म के प्रति आस्था रही।

विजयनगर के शासकों का और उनके अधीन सरदारों का, और मैसूर राज्य का आजतक जैनधर्म के प्रति यही दृष्टिकोण रहा है। कारकल के शासक गरसोप्पा और भैरव भी जैनधर्मानुयायी थे और उन्होंने भी जैन-कला को प्रदर्शित करनेवाले अनेक कार्य किये।

अब प्रश्न यह है कि जैनधर्म की देशना क्या है? अथवा श्रवण-बेल्गोल और अन्य स्थानों की बाहुबली की विशाल मूर्तियों एवं अन्य चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ संसार को क्या सन्देश देती हैं?

जिन शब्द का अर्थ विकारों को जीतना है। जैनधर्म के प्रवर्त्तकों ने मनुष्य को सम्यक् श्रद्धा, सम्यक् बोध, सम्यक् ज्ञान और निर्दोष चारित्र के द्वारा परमात्मा बनने का आदर्श उपस्थित किया है। जैनधर्म का ईश्वर में पूर्ण विश्वास है और जैनधर्म के अनुष्ठान द्वारा अनेक जीव परमात्मा बने हैं। जैनधर्म के अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर के धर्म का २५०० वर्षों का एक लम्बा इतिहास है। यह धर्म भारत में एक कोने से दूसरे कोने तक रहा है। आज भी गुजरात, मथुरा, राजस्थान, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, दक्षिण मैसूर और दक्षिण भारत इसके प्रचार के केन्द्र हैं। इस धर्म के साधु और विद्वानों ने इस धर्म को समुज्ज्वल किया और जैन व्यापारियों ने भारत में सर्वत्र सहस्रों मंदिर बनवाये, जो आज भारत की धार्मिक पुरातत्व कला की अनुपम शोभा हैं।

भगवान महावीर और उनसे पूर्व के तीर्थंकरों ने बुद्ध की तरह भारत में बताया कि मोक्ष का मार्ग कोरे क्रियाकाण्ड में नहीं है, बल्कि वह प्रेम और विवेक पर निर्धारित है। महावीर और बुद्ध का अवतार एक ऐसे समय में हुआ है जब भारत में भारी राजनैतिक उथल-पुथल हो रही थी। महावीर ने एक ऐसी साधु-संस्था का निर्माण किया, जिसकी भित्ति पूर्ण अहिंसा

पर निर्धारित थी। उनका 'अहिंसा परमो धर्मः' का सिद्धांत सारे संसार में २५०० वर्षों तक अग्नि की तरह व्याप्त हो गया। अन्त में इसने नवभारत के पिता महात्मा गांधी को अपनी ओर आकर्षित किया। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है कि अहिंसा के सिद्धांत पर ही महात्मा गांधी ने नवीन भारत का निर्माण किया।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि श्रवणबेल्गोल पर श्रीराजकृष्ण जैन की यह पुस्तक इस महान् तीर्थ की यात्रा करनेवाले सभी यात्रियों के लिए बड़ी रोचक और लाभप्रद सिद्ध होगी। इस पुस्तक में उन्होंने उन सब आवश्यक विवरणों को विस्तारपूर्वक दिया है, जो इस विराट मूर्ति में निहित भावना को वास्तविक रूप में समझने के लिए आवश्यक हैं।

नई दिल्ली
१५ जनवरी १६५३

—टी. एन. रामचन्द्रन्, एम. ए.
डिप्टी डाइरेक्टर-जनरल, पुरातत्त्व-विभाग

विषय-सूची



श्री गोम्मटेश्वर की ५७ फुट ऊंची विशाल प्रतिमा।

श्रवणबेल्गोल
और
दक्षिण के अन्य जैनतीर्थ

: १ :

श्रवणबेल्गोल का महत्व

श्रवणबेल्गोल मैसूर राज्य के हासन जिले में अत्यन्त प्राचीन और रमणीक सुप्रसिद्ध धार्मिक स्थान है। यहां के शिलालेख, भव्य तथा पवित्र मन्दिर, प्राचीन गुफाएं और विशाल मूर्तियाँ ये सब न केवल जैन पुरातत्व की दृष्टि से अपना महत्व रखते हैं अपितु भारत की सभ्यता, संस्कृति तथा इतिहास का भी इससे घनिष्ट सम्बन्ध है। यहीं पर अंतिम श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु ने समाधिमरणपूर्वक देहोत्सर्ग किया, यहीं उनके शिष्य मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त ने उनकी पाद-पूजा करते हुए अपना अन्तिम जीवन बिताया और यहीं पर समरधुरन्धर, वीरमार्तंड, गङ्गराज्य के सेनापति चामुण्डराय ने ५७ फुट ऊंची विश्वविख्यात भगवान बाहुबली की मूर्ति का निर्माण कराया।

श्रवणबेल्गोल विंध्यगिरि और चन्द्रगिरि दो पर्वतों की तलहटी में एक सुन्दर और स्वच्छ सरोवर पर स्थित है। यहां

की भूमि अनेक मुनि-महात्माओं की तपस्या से पवित्र, अनेक धर्मनिष्ठ यात्रियों की भक्ति से पूजित और अनेक नरेशों तथा सम्राटों के दान से अलंकृत और इतिहास में प्रसिद्ध हुई है। यद्यपि दक्षिण भारत में मैसूर राज्य प्राकृतिक सौन्दर्य में अपना विशेष स्थान रखता है, तो भी प्रकृति देवी ने जिस प्रकार श्रवणबेल्गोल की भूमि को आलिंगन किया है, वैसा सौन्दर्य अन्यत्र देखने को नहीं आता। इसे जैनवद्री तथा दक्षिण काशी भी कहते हैं और गोम्मटेश्वर की विशाल मूर्ति के कारण इसे गोम्मटपुर भी कहा जाता है।

श्रवणबेल्गोल आरसीकेरी स्टेशन से ४२ मील, हासन से ३१ मील, चिनार्यपट्टन से ८ मील, बेंगलोर से १०० मील तथा मैसूर से ६२ मील है। यहां से एक सड़क जैनियों के पवित्र तीर्थ मूलवद्री, हलेबिड, वेणूर और कारकल को गई है। १२°–५१′ उत्तर अक्षांश और ७६°–२९′ पूर्व रेखांश पर स्थित होने के कारण यहां की ऋतु सदैव ही जैन श्रमणों (मुनियों) के ज्ञान-ध्यान के लिए अनुकूल रही है। यहां की धार्मिकता इस स्थान के नाम में ही गर्भित है। श्रमण नाम जैन मुनि का है, कन्नडी भाषा में 'बेल' का अर्थ श्वेत और 'गोल' का अर्थ सरोवर है। इसलिए श्रवणबेल्गोल को जैन साधुओं का धवल सरोवर भी कहा जाता है।

श्रवणबेल्गोल में लगभग ५०० शिलालेख जैन धर्म तथा उसके अनुयायिओं का गौरव प्रकट करते हैं। इनका अनुसन्धान सर्वप्रथम मैसूर पुरातत्व विभाग के डाइरेक्टर श्री राइस महोदय ने सन् १८८९ में किया था। इनके प्रकाशन

ने इन लेखों के साहित्य सौन्दर्य व ऐतिहासिक महत्व की ओर विद्वत्समाज का ध्यान आकर्षित किया। उक्त संग्रह का दूसरा संस्करण सन् १९२२ में प्राक्तनविमर्ष-विचक्षण रावबहादुर श्री आर० नरसिंहाचारजी ने निकाला। इन्होंने श्रवण-बेल्गोल के सब लेखों की सूक्ष्म रूप से जांच की। ५०० लेखों का संग्रह किया तथा अपनी अंग्रेजी की पुस्तक 'श्रवण-बेल्गोल' में सब लेख कन्नड़ी भाषा में छपवाये। उनकी रोमन लिपि की तथा अंग्रेजी में अनुवाद किया। ये लेख प्रायः समस्त प्राचीन दिगम्बर जैनाचार्यों के कृत्यों के प्राचीन ऐतिहासिक प्रमाण हैं। इनसे पता चलता है कि यहां के जैनाचार्यों की परम्परा दिग्दिगन्तरों में प्रख्यात थी और जैनाचार्यों ने बड़े-बड़े राजा,महाराजाओं से सम्मान प्राप्त किया था। साथ ही इनसे यह भी मालूम होता है कि उन आचार्यों ने किन-किन राजाओं को जैनधर्म की दीक्षा दी, किस-किस राजा, महाराजा, रानी, राजकुमार, सेनापति, राजमंत्री तथा किस-किस वर्ग के मनुष्यों ने आकर धर्म आराधना की। ये शिलालेख इस बात के साक्षी हैं कि जैनियों का साम्राज्य देश के लिए कितना हितकर था और उनके सम्राट् किस प्रकार धर्म साम्राज्य स्थापित करने के लिए लालायित थे। इन शिलालेखों में भगवान महावीर से लेकर आचार्यों की वंशावली तथा कुन्द-कुन्दाचार्य, उमास्वाति, समन्तभद्र, शिवकोटि, पूज्यपाद, गोल्लाचार्य, त्रैकाल्ययोगी, गोपनन्दि, प्रभाचन्द्र, दामनन्दि, जिनचन्द्र, वासवचन्द्र, यशःकीर्ति, कल्याणकीर्ति, श्रुतकीर्ति, वादिराज, चतुर्मुखदेव आदि आचार्यों का परिचय मिलता है।

एक ओर श्री राइस साहब तथा श्री नरसिंहाचारजी जहां जैन समाज के धन्यवाद के पात्र हैं, दूसरी ओर हमें इस बात का खेद है कि जैन विद्वानों तथा धनाढ्यों की अपने पुरातत्त्व की ओर कोई दृष्टि नहीं है। यदि उक्त महानुभाव इतना परिश्रम न करते तो हमें इन शिलालेखों का पूर्ण विवरण न मिलता। श्री प्रोफेसर हीरालालजी तथा श्री पं० नाथूरामजी प्रेमी ने श्री राइस साहब तथा श्री नरसिंहाचारजी के संग्रहों को आधार मानकर 'जैनशिलालेख संग्रह' प्रथम भाग निर्माण किया, जिससे जैन समाज को बहुत लाभ हुआ।

: २ :

ऐतिहासिक इतिवृत्त

श्रवणबेल्गोल का इतिहास ईसा से ३०० वर्ष पूर्व उस समय प्रारम्भ होता है जब त्रैकाल्यदर्शी, निमित्तज्ञानी, अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु ने उज्जयिनी में १२ वर्ष के दुर्भिक्ष की आशंका से अपने १२००० शिष्यों सहित उत्तरापथ से दक्षिणापथ को प्रस्थान किया। उनका संघ क्रमशः एक बहुत समृद्धियुक्त जनपद में पहुंचा। चन्द्रगुप्त भी उनके साथ थे। यहां आकर उनको विदित हुआ कि उनकी आयु अब बहुत थोड़ी शेष है। उन्होंने विशाखाचार्य को संघ का नायक बना कर उन्हें चौल और पांड्यदेश भेज दिया। भद्रबाहु स्वयं सल्लेखना (समाधिमरण) धारण करने के लिए पास वाले चंद्रगिरि पर्वत पर चले गए, जिसको कटवप्र भी कहते हैं। नवदीक्षित चन्द्रगुप्त मुनि अपने गुरु की वैय्यावृत्ति के लिए वहीं रहे। चन्द्रगुप्त मुनि ने अन्त समय तक उनकी खूब सेवा की तथा उनके स्वर्गारोहण के पश्चात् १२ वर्ष तक उनके चरण-चिह्न की पूजा में अपना शेष जीवन व्यतीत कर उन्हीं के पथ का अनुसरण किया। इसी पहाड़ी पर प्राचीनतम मंदिर चन्द्रगुप्त बस्तिका है। यहीं पर भद्रबाहु गुफा में चन्द्रगुप्त के चरण-चिह्न हैं। इसी स्थान पर ७०० जैन श्रमणों ने समाधिमरण किया। इसलिए इसका नाम श्रवणबेल्गोल पड़ा।

इसी नगर की दूसरी पहाड़ी विन्ध्यगिरि पर गंग नरेश राचमल्ल के मंत्री तथा सेनापति वीरमार्तण्ड चामुण्डराय ने बाहुबली की ५७ फुट ऊंची विशाल मूर्ति उद्घाटित कराई।

श्रवणबेल्गोल का सबसे बड़ा महत्व वहां के ५०० के लगभग शिलालेखों में है। इनमें लगभग १०० लेख साधुओं और गृहस्थों के समाधिमरण, लगभग १०० लेख मंदिर-मूर्ति-वाचनालय-परकोटा-सीढ़ियों एवं जीर्णोद्धार आदि, १०० लेख मन्दिरों की पूजा आदि के खर्च तथा १६० लेख संघों तथा यात्रियों के बारे में और शेष ४० लेख के लगभग आचार्यों और योद्धाओं के सम्बन्ध में हैं। ये शिलालेख इतिहास, साहित्य और काव्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

श्रवणबेल्गोल से जिन तीन महापुरुषों का सम्बन्ध है, उनका थोड़ा-सा जीवन वृत्तान्त यहाँ दे देना आवश्यक है। वे तीन महापुरुष—

(१) प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव की द्वितीय रानी सुनन्दा के पुत्र बाहुबली (२) सम्राट् चन्द्रगुप्त (३) बाहुबली की मूर्ति के निर्माता वीरमार्तण्ड चामुण्डराय हैं।

भगवान बाहुबली

भरतक्षेत्र में जब इस अवसर्पिणी का तृतीय कालचक्र समाप्त हो रहा था और भोगभूमि की रचना नष्ट होकर कर्म-भूमि की व्यवस्था प्रारम्भ हो रही थी तब उस संध्याकाल में अयोध्या में त्रैलोक्यबन्दनीय, महामहिमाशाली और अलौकिक विभूतिमय आदि तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव ने जन्म लिया। उस समय मंगलनाद से दिशाएं गूंज उठीं और देवों तथा

मनुष्यों के हृदय आनन्द से प्रफुल्लित हो गए ।

ऋषभदेव ने बालक्रीड़ा करते हुए अपनी माता और पिता के हृदयों को प्रमुदित किया। उनकी बुद्धि स्वाभाविक प्रतिभा से परिपूर्ण थी । उनमें चमत्कृत ज्ञानशक्ति और अद्भुत श्रुत-विज्ञता थी । उन्होंने किसी विद्यालय में विद्या पढ़े बिना ही विशिष्ट श्रुतज्ञान प्राप्त किया। भगवान के शरीर में क्रमश: यौवन ने प्रवेश किया । उनके वज्रमय शरीर में अतुलित बल था; किन्तु यह सब होते हुए भी उनके हृदय में विषय-वासना किंचित् भी जाग्रत नहीं थी, फिर भी उनके पिता नाभिराय ने प्रजा की सन्तति अविच्छिन्न रहने के लिए और धर्म की सन्तति बराबर चलती रहे इसलिए भगवान के समक्ष उनके विवाह का प्रस्ताव रखा, इस पर ऋषभदेव ने कर्मभूमि की स्थिति का विचार किया और यह सोचकर कि उनका अनुसरण करके प्रजाजन भी विवाह मार्ग में प्रवृत्त होंगे और उससे लोक में सुख-शांति की स्थापना होगी, अपनी अनुमति प्रदान कर दी। इनका विवाह महाराज कच्छ और महाकच्छ की अवर्णनीय रूप राशि से विभूषित दो बहिनों—यशस्वती और सुनन्दा—के साथ हुआ।

इस प्रकार भगवान ऋषभदेव गृहस्थ में रहते हुए सुख से अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। यथासमय महारानी यशस्वती (नंदा) के निन्यानवे पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। द्वितीय रानी सुनन्दा की कुक्षि से कुमार बाहुबली तथा ब्राह्मी नाम की कन्या ने जन्म लिया। भरत इन सब भाइयों में ज्येष्ठ थे।

बाहुबली २४ कामदेवों में प्रथम कामदेव थे। उनके केश भ्रमर के समान काले, वक्षःस्थल चौड़ा, विस्तृत ललाट और भुजाएं लम्बी थीं। उनकी दोनों जंघाएं केले के स्तम्भ के समान थीं।

एक दिन भगवान् ऋषभदेव राज्यसिंहासन पर बैठे हुए थे। उस समय इन्द्र अप्सराओं और देवों के साथ भगवान के राज्य दरबार में आया। भगवान राज्य और भोगों से किस प्रकार विरक्त होंगे यह विचार कर इन्द्र ने उस समय नृत्य करने के लिए एक ऐसे पात्र को नियुक्त किया जिसकी आयु अत्यन्त क्षीण हो गई थी। वह नीलांजना नाम की सुर-बाला नृत्य करती हुई आयु के क्षय होने से क्षणभर में विलय को प्राप्त हो गई। इस घटना ने भगवान के चित्त पर गहरा प्रभाव डाला। उन्होंने सोचा कि यह जगत विनश्वर है, लक्ष्मी बिजली के समान चंचल है। यौवन, शरीर, आरोग्य और ऐश्वर्य सभी चलाचल हैं। यह जीव रूप, यौवन और सौभाग्य के मद में उन्मत्त हुआ वृथा इनमें स्थिरबुद्धि रखता है। इस प्रकार भगवान ऋषभदेव काललब्धि को पाकर मुक्ति के मार्ग में समुद्यत हुए। उन्होंने अपने वस्त्राभूषणों को जीर्ण तृण के समान सारहीन समझ-कर उतार डाला, सुकोमल करों से केशों का लोंच किया और पूर्ण दिगम्बर मुद्रा धारण कर वे वन में जाकर चन्द्र-कान्तिमणि सदृश स्वच्छ शिला पर आसीन होकर ध्यानमग्न हो गये। भगवान ने बहुत समय पर्यन्त कठिन तपश्चरण करते हुए अन्त में शुक्लध्यान की तीक्ष्ण खड्‌ग से दिव्य

आत्मिक दीप्ति को प्रकाशित करते हुए प्रचण्ड घातिया कर्म शत्रुओं को निहत किया और त्रैलोक्य पदार्थों को हस्तामलक सदृश स्पष्ट प्रदर्शित करनेवाले अलौकिक केवलज्ञान को प्राप्त किया ।

इधर राजर्षि भरत को एक ही साथ तीन समाचार मिले। प्रथम भगवान को केवलोत्पत्ति, द्वितीय अन्तःपुर में पुत्र का जन्म और तृतीय आयुधशाला में चक्ररत्न की उत्पत्ति। भरत ने सोचा कि भगवान को केवलज्ञान होना धर्म का फल है पुत्र का उत्पन्न होना काम का फल है और देदीप्यमान चक्र का उत्पन्न होना अर्थ पुरुषार्थ का फल है, अथवा यह सभी धर्म पुरुषार्थ का पूर्ण फल है क्योकि अर्थ धर्मरूपी वृक्ष का फल है और काम उसका रस है। अतः सब कार्यों में सबसे पहले भगवान की पूजा ही करनी चाहिए। यह सोचकर महाराज भरत अपने छोटे भाइयों, अन्तःपुर की स्त्रियों तथा नगर के लोगों के साथ भगवान के समवशरण में गए। वहाँ भगवान ने अतिशय और गम्भीर निरक्षरी दिव्यध्वनि द्वारा षड्द्रव्य, साततत्त्व, पंचास्तिकाय, छह लेश्याएं, चौदह गुणस्थान, चौदह मार्गणा, अनुयोग, जीव के भाव, चारों गतियां और दश धर्म आदि का निरूपण किया। भरत भगवान को बारम्बार प्रणाम करके अपने महल को पधारे। इसके पश्चात् भरतेश्वर ने विधिपूर्वक चक्ररत्न की पूजा की और पुत्रोत्पत्ति का उत्सव मनाया।

तदनंतर भरत ने दिग्विजय के लिए प्रयाण किया। चक्रवर्ती के पुण्यप्रताप से सब राजा भरत के आधीन हुए तथा

उन्होंने चक्रवर्ती को उत्तमोत्तम भेंटें प्रदान कीं। किन्तु जब भरत दिग्विजय के पश्चात् अयोध्या लौटे तो उनका चक्र नगर के गोपुर द्वार को उल्लंघन करके आगे न जा सका। इससे सेनापति आदि प्रमुख लोगों को यह जानकर विस्मय हुआ कि अभी देश में कोई ऐसी शक्ति विद्यमान है जो चक्रवर्ती की अधीनता स्वीकार करने को तत्पर नहीं है। उस समय चक्रवर्ती ने अपने पुरोहितों को बुलाकर चक्र के रुकने का कारण पूछा और मन में सोचा कि अभी कोई मेरे राज्य में ही असाध्य शत्रु है जो मेरा अभिनन्दन नहीं करता और न ही मेरी वृद्धि चाहता है। निमित्तज्ञानी पुरोहितों ने भरत से कहा कि यद्यपि आपने बाहर के लोगों को जीत लिया है तथापि आपके घर के लोग आपके अनुकूल नहीं हैं। ये आपके भाई अजेय हैं और इनमें भी अतिशय युवा, धीर, वीर और बलवान बाहुबली मुख्य हैं। आपकी माता के उदर से उत्पन्न आपके भाइयों ने निश्चय किया है कि वे भगवान आदिनाथ के अतिरिक्त किसी को प्रणाम नहीं करेंगे। आपको उनके पास दूत भेजकर संदेशा भेजना चाहिए कि आपका बड़ा भाई पिता के तुल्य है, चक्रवर्ती है और सब प्रकार से पूज्य है। अतः आपके बिना यह राज्य उनको संतोष का देनेवाला नहीं हो सकता। आपको उन्हें प्रणाम करना ही चाहिए। भरत के दूत भेजने पर उसके सहोदर भाइयों ने आपस में परामर्श किया और इसके फलस्वरूप कि अब क्या करना चाहिए, भगवान ऋषभदेव के समवशरण में पधारे। भगवान जो स्वयं राज्यलक्ष्मी को जीर्ण तृणवत् छोड़ चुके थे, कैसे उनको

घर में रहने का उपदेश देते। भगवान ने उन पुत्रों से कहा कि इस विनाशी राज्य से क्या हो सकता है? ये सब पदार्थ तृष्णा रूपी अग्नि को प्रज्वलित करनेवाले हैं। एक दिन भरत भी इस विनश्वर राज्य को छोड़ेगा, इसलिए इस अस्थिर राज्य के लिए तुम क्यों लड़ते हो? इस तरह भगवान के वचन सुनकर उन राजकुमारों को वैराग्य हो गया और उन्होंने भगवान से परम दैगम्बरी दीक्षा धारण कर ली।

अपने सहोदर भाइयों के दीक्षा-समाचार को सुनकर महाराज भरत को अब केवल यह चिन्ता रही कि बाहुबली को कैसे अपने अनुकूल किया जावे? बाहुबली नीति में चतुर, भारी पराक्रमी और बुद्धिमान राजकुमार है, अतः इसको साम, दाम, दण्ड और भेद से जीतना अशक्य है। यह विचारकर और मंत्रियों से परामर्श लेकर पोदनपुर को एक अत्यन्त चतुर दूत भेजा। दूत ने नतमस्तक होकर बाहुबली को प्रणाम किया और बाहुबली ने भी उसको योग्य आसन देकर चक्रवर्ती की कुशल क्षेम पूछी। चतुर दूत ने कहा कि इक्ष्वाकुवंश-शिरोमणि आपके बड़े भाई ने यह संदेशा भेजा है कि यह हमारा राज्य हमारे प्रिय भाई बाहुबली के बिना हमें शोभा नहीं देता और कहा कि आपको भी भरत का सत्कार करना चाहिए और प्रणाम करना चाहिए। बाहुबली इन मर्मछेदन करनेवाले वचनों को न सह सका। उसने कहा कि बड़े भाई नमस्कार करने योग्य हैं यह बात अन्य समय में कही जा सकती है, लेकिन जिसने मस्तक पर तलवार रख छोड़ी है उसको प्रणाम करना यह कहां की रीति है। आदिब्रह्मा

भगवान ऋषभदेव ने 'राजा' यह शब्द मेरे तथा भरत दोनों के लिए दिया था। वह अवश्य ही हमारे पिता की दी हुई पृथ्वी हमसे छीनना चाहता है अतः उसका प्रत्याख्यान (तिरस्कार) होना ही चाहिए। मुझे पराजित किये बिना भरत इस पृथ्वी का उपभोग नहीं कर सकता, अतः तू जाकर अपने स्वामी को युद्ध के लिए तैयार कर दे।

दूत ने सब समाचार महाराज भरत को सुना दिए। दोनों ओर से भयंकर युद्ध की तैयारी हुई। दोनों ओर के मन्त्रियों ने सोचा कि दोनों भाई तद्भव मोक्षगामी हैं, इनकी कुछ भी क्षति नहीं होगी। इनका युद्ध क्रूर ग्रहों के समान शान्ति के लिए नहीं है। इनके युद्ध से दोनों पक्ष के योद्धाओं का व्यर्थ संहार होगा और इसमें धर्म तथा यश का विघात होगा। यह सोच कर और नर-संहार से डरकर दोनों ओर के मन्त्रियों ने दोनों की आज्ञा लेकर धर्म-युद्ध की घोषणा कर दी। इन दोनों के बीच दृष्टि-युद्ध, जल-युद्ध और मल्ल-युद्ध का निश्चय हुआ।

युद्ध प्रारम्भ हुआ। अत्यन्त धीर और निर्निमेष दृष्टिवाले बाहुबली ने दृष्टियुद्ध में भरत को पराजित किया। इसके पश्चात् मदोन्मत्त और अभिमानोद्धत दोनों भाई जलयुद्ध के लिए सरोवर में प्रविष्ट हुए। इसमें भी बाहुबली की विजय हुई। इसके पश्चात् वे दोनों नर शार्दूल मल्लयुद्ध के लिए रंगभूमि में आ उतरे। उन दोनों भाइयों का अनेक प्रकार से हाथ हिलाने, ताल ठोंकने, पैंतरा बदलने और भुजाओं के व्यायाम से बड़ा भारी मल्लयुद्ध हुआ। इसमें बाहुबली ने भरत को दोनों हाथों से उठाकर क्षणमात्र में ऊपर घुमा दिया; परन्तु

विवेक को न छोड़ा। उसने अपने बड़े भाई को अपने कंधों पर धारण किया। इस प्रकार बाहुबली ने अपने बड़े भाई का गौरव रखा। स्वभावतः बाहुबली के पक्षवालों ने आल्हादित हो कोलाहल किया और भरत के पक्षवाले लज्जित हुए।

चक्रवर्ती इस पराजय पर खिसयाना हुआ और क्षोभ में अन्धा होकर युद्ध-सम्बन्धी प्रतिज्ञा को भंग करते हुए उसने चक्ररत्न का स्मरण किया। चक्र को बुलाकर और निर्दय होकर भरत ने वह चक्र बाहुबली पर चला दिया, परन्तु वह चक्र बाहुबली के अवध्य होने के कारण बाहुबली की प्रदक्षिणा देकर निस्तेज हो भरत के पास वापिस आ गया।

इधर कुमार बाहुबली ने सोचा कि देखो! हमारे बड़े भाई ने इस नश्वर राज्य के लिए हमें मारने का कैसा जघन्य कार्य किया। यह साम्राज्य क्षणभंगुर है, फलकाल में दुःख देनेवाला है, व्यभिचारिणी स्त्री के समान है। अहा! विषयों में आसक्त पुरुष इन विषयजनित सुखों का निन्द्यपना, अपकार, क्षणभंगुरता और नीरसपने को नहीं सोचते। विषयों का जैसा उद्वेग है, वैसा उद्वेग शस्त्रों का प्रहार, प्रज्वलित अग्नि, वज्र, बिजली और बड़े-बड़े सर्प भी नहीं करते। भोगों की इच्छा करनेवाले मनुष्य बड़े-बड़े समुद्र, प्रचण्ड युद्ध, भयंकर वन, नदी और पर्वतों में प्रवेश करते हैं। वज्रपात जैसे कटु शब्दों को सहन करते हैं। भोगातुर प्राणी हित-अहित को नहीं जानता। शरीर का बल हाथी के कान के समान चंचल है। जीर्ण शीर्ण शरीर रूपी झोंपड़ा रोगरूपी चूहों के द्वारा नष्ट किया जाता है। इस प्रकार बाहुबली ने संसार को

असार समझते हुए अपने भाई भरत को निम्न वाक्य कहे—

"भरत ! यह ठीक है, कि तूने छह खण्ड पृथ्वी को अपने वश में कर लिया है। क्या तुझे लज्जा नहीं आई कि तूने भाइयों का सत्व छीनकर राज्य प्राप्त करने की कुचेष्टा की है ? क्या आदिब्रह्मा भगवान वृषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र का यही कार्य था कि वह इस प्रकार अपने कुल का उद्धार करे ? तूने मोहित होकर मुझ पर जो चक्र चलाया है क्या वह न्याय-संगत था ? इत्यादि । अब तू ही इस राज्य-लक्ष्मी का उपभोग कर, अब तुझे ही यह राज्य प्रिय रहे, हम अब निष्कंटक तपरूपी लक्ष्मी को अपने अधीन करेंगे । मैं विनय से च्युत हो गया था अतएव इसको मेरी चंचलता समझ कर क्षमा कीजिए ।" बाहुबली ने अपने पुत्र महाबली को राज्य देकर गुरुदेव के चरणों की आराधना करते हुए जिन-दीक्षा धारण की। इधर भरत को भी अपने कृत्य पर पश्चात्ताप हुआ ।

बाहुबली मुनि ने एक वर्षतक निराहार खड़े रहकर प्रतिमा-योग धारण किया। दोनों पैरों और हाथों तक वन की लताओं ने शरीर को व्याप्त कर लिया। बांबी बनाकर घुटनों से ऊंचे तक सर्प फुंकार रहे थे। केश कन्धों तक आगए थे; किन्तु धीर-वीर बाहुबली सब बाधाओं को सहते हुए अत्यन्त शान्त थे। उन्होंने अपने गुणों द्वारा पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि को जीत लिया, २२ परीषहों को सहन किया, २८ मूलगुण और ८४ लाख उत्तरगुणों का पालन किया। एक वर्ष तक घोर तपश्चरण करने पर लेश्या की विशुद्धि को प्राप्त कर शुक्ल-ध्यान के सन्मुख हुए।

बाहुबली के चित्त में एक शल्य थी कि भरतेश्वर को मुझसे संक्लेश प्राप्त हुआ है। यह मिथ्या शल्य उनके केवलज्ञान होने में बाधक थी, अतः जिस समय भरत ने आकर उनकी पूजा की उनकी शल्य मिट गई और तत्क्षण उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। भरत ने मंत्रियों, राजाओं और अन्तःपुर की समस्त स्त्रियों के साथ भगवान बाहुबली को नमस्कार किया। कैवल्य के प्रताप से बाहुबली के ऊपर छत्र और नीचे दिव्य सिंहासन देदीप्यमान हो रहा था। देव चमर ढुरा रहे थे और उनकी गन्धकुटी भी निर्माण की गई थी। इस प्रकार धर्मामृत वर्षाते हुए भगवान बाहुबली अपने पूज्य पिता भगवान वृषभदेव के सामीप्य से पवित्र हुए कैलाश पर्वत पर जा पहुंचे।

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य

इतिहासज्ञ इस विषय में प्रायः एकमत हैं कि सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य जैनधर्म के अनुयायी थे। विन्सेन्ट स्मिथ का कहना है कि "दो हजार वर्ष से अधिक हुए, भारत के प्रथम सम्राट् ने उस प्राकृतिक सीमा को प्राप्त किया था, जिसको न कभी अंग्रेजों ने और न मुसलमानों ने पूर्णता के साथ प्राप्त किया।" वे ३२२ ईस्वी पूर्व मगध के सिंहासन पर विराजमान थे। इसी वीर ने भारत में एकछत्र साम्राज्य की स्थापना की और यूनानियों को भारत से निकाला। सैल्यूकस का आक्रमण चन्द्रगुप्त के शासनकाल की मुख्य घटना है। सैल्यूकस ने चन्द्रगुप्त से सन्धि करके उसको ५०० हाथी दिए और काबुल, हिरात और कन्धार भी

उसके राज्य में मिले। सम्पूर्ण उत्तर भारत, काश्मीर, अफ़गानिस्तान और विलोचिस्तान इस राज्य के अन्तर्गत थे। सैल्यूकस ने चन्द्रगुप्त को अपनी कन्या भी भेंट में दी थी।

चन्द्रगुप्त की शासन-व्यवस्था जनसत्तात्मक थी। उसने भूमिकर, तटकर (आयात और निर्यात), बिक्रीकर (सैलसटैक्स) तथा प्रत्यक्षकर आदि की आय से सार्वजनिक हित के कार्य किये। स्थान-स्थान पर डाम लगवाकर अधिक सिंचाई का प्रबंध किया। चिकित्सालय, स्वास्थ्य-रक्षा और सार्वजनिक कष्टों का निवारण आदि सभी कार्य व्यवस्थित रूप से किए।

चन्द्रगुप्त जिस प्रकार राज्य संचालन में निपुण था, उसी प्रकार ज्ञान तथा कला और कौशल में सुचतुर। वह एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति था। उनसे २०० वर्ष पूर्व भारत भूमि को अंतिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर ने पवित्र किया था। चन्द्रगुप्त पर उन्हींके उपदेशों का प्रभाव था।

एक दिन रात्रि के पिछले पहर में चन्द्रगुप्त को १६ दुःस्वप्न दिखाई दिये। संसार से भयभीत चन्द्रगुप्त को किसी योगिराज से इन स्वप्नों का फल जानने की अभिलाषा हुई। इधर अनेक देशों में विहार करते हुए १२००० शिष्यों को साथ लेकर अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी उज्जयिनी नगरी के उपवन में आए। महाराज चन्द्रगुप्त को संघ के आगमन की सूचना मिली। सम्राट् मुनिसंघ के वंदना की उत्कण्ठा से प्रजा को लेकर दर्शनों को गया। तीन प्रदक्षिणा देकर उनकी पूजा की और स्वप्नों का फल पूछा। निमित्तज्ञानी भद्रबाहु ने बतलाया कि इनका फल पुरुषों को वैराग्य उत्पन्न

करानेवाला तथा आगामी खोटे काल की सूचना देना है।

एक दिन भद्रबाहु मुनिराज नगर में जिनदास सेठ के घर आहार के निमित्त गए। उस निर्जन घर में उस समय केवल एक साठ दिन का बालक पालने में झूल रहा था, जिसने कहा "जाओ, जाओ"। मुनिराज ने पूछा, "वत्स कितने वर्ष पर्यन्त?" बालक ने कहा, "बारह वर्ष पर्यन्त।" मुनिराज ने निमित्त-ज्ञान से जान लिया कि मालवा में बारह वर्ष पर्यन्त घोर दुर्भिक्ष पड़ेगा और मुनिधर्म का पालना कठिन हो जायगा। श्री भद्रबाहु अन्तराय समझकर लौट आए और संघ को बुला कर कहा कि यहां बारह वर्ष का अकाल पड़ेगा और अकाल के समय संयमी पुरुषों को ऐसे दारुण देश में रहना उचित नहीं है।

जब श्रावकों ने मुनि-संघ के जाने की बात सुनी तो उन्होंने बहुत अनुनय-विनय किया और हर प्रकार से शुद्ध भोजन का आश्वासन दिलाया; किन्तु भद्रबाहुस्वामी ने शास्त्र की मर्य्यादा रखते हुए संयम का ठीक पालन हो इसलिए दक्षिणा-पथ को प्रस्थान किया। सम्राट् चन्द्रगुप्त ने भी अपने पुत्र को राज्य देकर मुनिदीक्षा धारण करली और भद्रबाहु के साथ दक्षिण को चल दिये।

श्री भद्रबाहु स्वामी विहार करते हुए किसी गहन अटवी में जा पहुंचे। वहां उन्होंने एक आकस्मिक आकाशवाणी सुनी। उन्होंने अपना जीवन बहुत ही थोड़ा शेष जानकर वहीं रहना निश्चय किया और अपने पद पर विशाखाचार्य को नियोजित करके समस्त संघ को दक्षिण जाने की आज्ञा दी। केवल चन्द्रगुप्त मुनि उनकी वैय्यावृत्ति के लिए भद्रबाहु के साथ रहे।

भद्रबाहु योगिराज ने अपने मन, वचन और काय के योगों की प्रवृत्ति को रोक कर सल्लेखना विधि स्वीकार की। चन्द्रगुप्त मुनि ने वहां श्रावकों के न रहने से प्रोषधोपवास किया। भद्रबाहु ने उनको चर्या के लिए भेजा; किन्तु तीन दिन बराबर अन्तराय हुआ। चौथे दिन वन-देवता ने एक नगर बसाया जिसका नाम 'श्रवणबेल्गोल' रखा गया। चन्द्रगुप्त मुनि यहीं आहार करने लगे।

भद्रबाहु मुनिराज ने सप्तभय रहित होकर क्षुधादि उपद्रवों को जीता और ४ प्रकार की आराधना आराध कर शुद्धोपयोग स्वीकार कर निर्रभिलाषी हो समाधिपूर्वक शरीर का परित्याग किया। जिस कन्दरा में भद्रबाहु ने शरीर छोड़ा चन्द्रगुप्त मुनिराज ने वहीं रहकर बारह वर्ष पर्यन्त गुरु में चरणों की उपासना करते हुए तपश्चरण किया और अन्त में समाधि-मरणपूर्वक देह-तायग किया।

मंत्री चामुण्डराय

भारतवर्ष एक श्रीसम्पन्न देश है। उसकी यह श्री विशेषकर चार रूपों में स्पष्ट व्यक्त है, अर्थात् धन-सम्पत्ति, वीरता तथा पराक्रम, सांस्कृतिक समृद्धि और अध्यात्मवाद। भौतिक दृष्टि से अपनी महान धन-सम्पत्ति के कारण भारत-वर्ष विदेशियों के द्वारा सोने की चिड़िया के नाम से पुकारा गया। अत्यंत प्राचीन काल से यहां एक से बढ़कर एक ऐसे वीर योद्धा और पराक्रमी महापुरुष जन्म लेते रहे हैं जिसके कारण यदि भारत को वीर-प्रसूता भूमि कहा जाय, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। यहां की सांस्कृतिक

समृद्धि यहां के रत्न-सदृश अमूल्य साहित्य, कला-कौशल, मन्दिरों तथा मूर्तियों, उच्च परम्पराओं और सत्य तथा अहिंसापूर्ण निर्मल चरित्र इत्यादि से प्रकट होती है और यहां का अध्यात्मवाद यहां के ऋषि मुनियों, साधु-साध्वियों और आत्मज्ञानी विद्वान्, सहस्त्रों आचार्यों के तप-त्याग के कारण भारत सचमुच पुण्य-भूमि और संतों का देश कहलाता है।

संसार के इतिहास में ऐसे महापुरुष विरले ही मिलेंगे, जो इन चारों ही श्रियों से सम्पन्न हों। भारत को ऐसे जिन महापुरुषों को जन्म देने का गौरव प्राप्त है वीर-मार्तण्ड चामुण्डराय उनमें से एक हैं। इनको चामुण्डराय भी कहते हैं और गोम्मट उनका घरू नाम था। 'राय' दक्षिण के गंग नरेश राचमल्ल द्वारा मिली हुई पदवी थी। इन के वाल-जीवन, गृहस्थ अवस्था की घटनाएं अंधकार में हैं, फिर भी शिलालेखों और कीर्तिगाथाओं से इनके महान् व्यक्तित्व का पता अवश्य लगता है। ये जैनधर्मानुयायी और ब्रह्मक्षत्रिय वंशज थे जिससे अनुमान होता है, कि मूल में इनका वंश ब्राह्मण था, पर बाद में क्षत्रिय कार्य को अपनाने के कारण ये क्षत्रिय माने जाने लगे थे। चामुण्डराय ने दीर्घ-जीवन पाया, क्योंकि इन्हें गंगवंश के एक दो नहीं तीन शासकों के अधीन काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गंगवंश मैसूर राज्य में ईसा की चौथी शताब्दि से लेकर ग्यारहवीं शताब्दि तक रहा है और चामुण्डराय गंगवंशी राजा राचमल्ल के मंत्री और सेनापति थे। राजा राचमल्ल का राज्यकाल सन् ९७४ ई० से सन् ९८४ निश्चित है।

इससे यह कहा जा सकता है, कि वीर मार्तण्ड चामुण्डराय दसवीं शताब्दि के महापुरुष थे।

इनकी धर्मपत्नी का नाम अजितादेवी और पुत्र का नाम जिनदेव था।

चामुण्डराय की योग्यता, वीरता और बुद्धिमत्ता का अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि वे गंग नरेशों के राज्य-मंत्री और सेनापति के उच्च पद पर कई वर्षों तक आसीन रहे। चामुण्डराय एक बुद्धिमान महामात्य और राज-नेता तो थे ही, पर वे एक बड़े वीर योद्धा, सेनापति भी थे। जिस युग में चामुण्डराय हुए वह गंगवंश के लिए बड़ी विपत्तियों का युग था और गंगराज्य पर शत्रु चारों ओर से आक्रमण कर रहे थे। इनके समय में जो अनेक युद्ध हुए, उनका पता दक्षिण के इतिहास से मिलता है। इनके संचालक और विजेता चामुण्डराय ही थे। इन्होंने अपनी वीरता और युद्ध-कौशल से अनेक शत्रु राजाओं को परास्त किया था, जिसके उपलक्ष में उन्हें समरधुरंधर, वीरमार्तण्ड, रणरंगसिंह, वैरिकुलकालदण्ड, असहायपराक्रम, प्रतिपक्षराक्षस, भुजविक्रम, समरपरशुराम, भट्टमणि इत्यादि जैसी उपाधियों से सम्मानित किया गया।

ये महागुणवान और धर्मनिष्ठ सज्जन थे। अपनी सत्यप्रियता के कारण ये 'सत्ययुधिष्ठिर' कहलाते थे और जैनधर्मनिष्ठ होने के कारण जैन ग्रंथकारों ने इन्हें सम्यक्त्वरत्नाकर, शौचाभरण, गुणरत्नभूषण तथा देवराज आदि विशेषण दिये हैं।

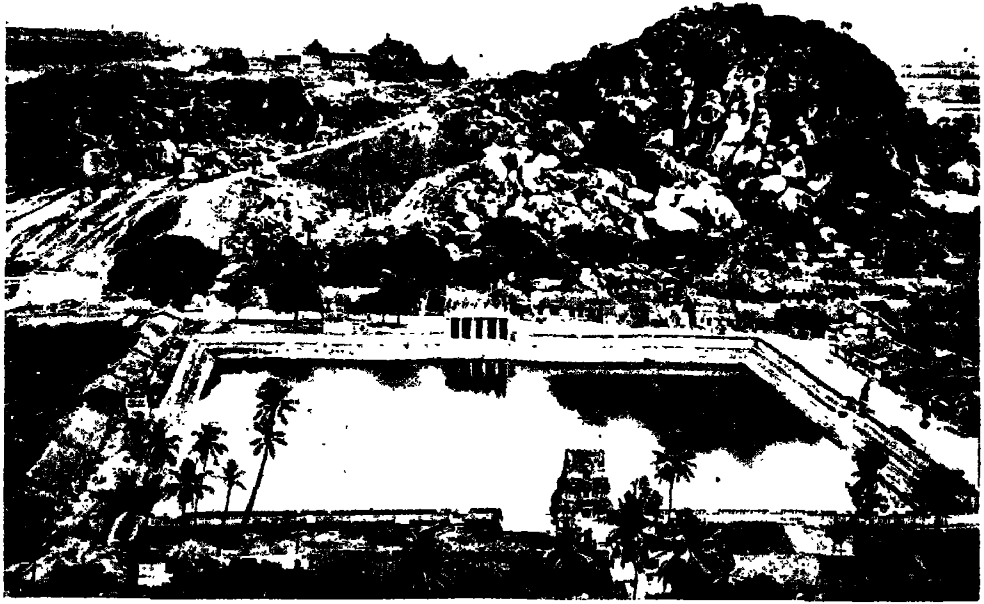
वीरमार्तण्ड चामुण्डराय जहां स्वयं संस्कृत और कन्नड़ी-

भाषा के प्रकाण्ड विद्वान, कवि तथा लेखक थे, वहां दूसरे विद्वानों को समाश्रय देनेवाले भी थे। इन्होंने स्वयं कन्नड़ी भाषा का 'त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराण' (चामुण्डराय पुराण) प्रसिद्ध ग्रंथ रचा है जो उपलब्ध कन्नड साहित्य का सबसे प्राचीन गद्यग्रंथ गिना जाता है। इनका दूसरा ग्रंथ संस्कृत में 'चारित्रसार' है, जो एक संग्रह ग्रंथ है। ये दोनों ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। अपने को कवि प्रकट करने की अपेक्षा इनको जनप्रिय गद्य लेखक होना अधिक इष्ट था। विद्वानों को ये कितने प्रिय थे, इसका पता इसीसे लगता है कि 'गोम्मटसार' जैसा महान् ग्रंथ इनके ही नाम पर रचा गया है।

इन्होंने अनेक मन्दिर और मूर्तियों का निर्माण किया, पर उनकी भारत को सबसे बड़ी देन श्रवणबेल्गोल तीर्थ पर बाहुबली की ५७ फीट ऊंची मनोरम तथा दर्शनीय मूर्ति है जो एक ही प्रस्तर खण्ड की बनी हुई है। इसे गोम्मटेश्वर भी कहते हैं। अजण्टा और एलोरा की कलापूर्ण गुफाओं, आबू के प्रसिद्ध मन्दिरों और आगरे के जगत-विख्यात ताजमहल के समान बाहुबली की यह मूर्ति भारत के कलाकौशल तथा संस्कृति को चार चांद लगाती है। आज भारत इनसे महान् है, दर्शनीय है।

इन्होंने भी जीवन के अन्त में श्रवणबेल्गोल की पुण्यभूमि में समाधिमरणपूर्वक देह-विसर्जन की। इससे हम देखते हैं, कि वीरमार्तण्ड चामुण्डराय भारत के एक अत्यंत प्रसिद्ध राज-नेता, योद्धा तथा सेनापति, विद्वान तथा कवि, धर्मपरायण गुणवान सद्गृहस्थ और कला-प्रेमी महापुरुष थे। भारत के

इतिहास में सदा इनका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जाकर अमर रहेगा। ये जैनों या दक्षिण भारत के ही नहीं, वरन् समस्त भारत के गौरव थे। हम इन पर जितना भी मान करें, इनसे जितनी भी शिक्षा प्राप्त करें, कम हैं।



विन्ध्यगिरि के मन्दिर

: ३ :

मंदिर और स्मारक

श्रवणबेल्गोल के प्राचीन मन्दिरों और स्मारकों का वर्णन निम्न शीर्षकों में दिया जाता है :—

१. विन्ध्यगिरि २. चन्द्रगिरि ३. नगर ४. आसपास के ग्राम.

विन्ध्यगिरि

यह पर्वत बड़ी पहाड़ी के नाम से प्रसिद्ध है। इसे दोड्डवेट और इन्द्रगिरि भी कहते हैं। यह समुद्र तट से ३३४७ फुट और नीचे के मैदान से ४७० फुट ऊंचा है। ऊपर चढ़ने के लिए कोई ६०० सीढ़ी हैं। इसी पहाड़ पर विश्वविख्यात ५७ फुट ऊंची खड्गासन गोम्मटेश्वर की सौम्य मूर्ति है। यह मूर्ति १४-१५ मील से यात्रियों को प्रथम तो एक ध्वजा के स्तम्भ के आकार में दिखाई देती है, किंतु पास आने पर उसे एक विस्मय में डालनेवाली, अपूर्व और अलौकिक प्रतिमा के दर्शन होते हैं। यात्री अगाध शान्ति का अनुभव करता है और अपने जीवन को सफल मानता है।

गोम्मटेश्वर की मूर्त्ति

यह दिगंवर, उत्तराभिमुखी, खड्गासन, ध्यानस्थ प्रतिमा समस्त संसार की आश्चर्यकारी वस्तुओं में से एक है। सिर पर केशों के छोटे-छोटे कुंतल, कान बड़े और लम्बे, वक्षःस्थल चौड़ा, नीचे लटकती हुई विशाल भुजाएं और कटि किञ्चित् क्षीण

है। घुटनों से नीचे की ओर टांगें खर्वाकार हैं। मूर्ति की आंखें, इसके ओष्ट, इसकी ठुड्डी, आंखों की भौंहें सभी अनुपम और लावण्यपूर्ण हैं। मुख पर अपूर्व कान्ति और अगाध शान्ति है। घुटनों से उपर तक बांबियां दिखाई गई हैं, जिनसे कुक्कुट सर्प निकल रहे हैं, दोनों पैरों और भुजाओं से माधवी लता लिपट रही है। मुखपर अचल ध्यान-मुद्रा अङ्कित है। मूर्ति क्या है मानों त्याग, तपस्या और शान्ति का प्रतीक है। दृश्य बड़ा ही भव्य और प्रभावोत्पादक है। पादपीठ एक विकसित कमल के आकार का बनाया गया है। निःसंदेह मूर्तिकार ने अपने इस अपूर्व प्रयास में सफलता प्राप्त की है। समस्त संसार में गोम्मटेश्वर की तुलना करनेवाली मूर्ति कहीं भी नहीं है। इतने भारी और विशाल पाषाण पर सिद्ध हस्त कलाकार ने जिस कौशल से अपनी छैनी चलाई है उससे भारत के मूर्तिकारों का मस्तक सदैव गर्व से ऊंचा रहेगा।

बाहुबली (गोम्मटेश्वर) की मूर्ति यद्यपि जैन है तथापि न केवल भारत, अपितु सारे संसार का अलौकिक धन है। शिल्प-कला का बेजोड़ रत्न है, अशेष मानव जाति की यह अमूल्य धरोहर है। इतने सुन्दर प्रकृतिप्रदत्त पाषाण से इस मूर्ति का निर्माण हुआ है कि १००० वर्ष से अधिक बीतने पर भी यह प्रतिमा सूर्य, मेघ, वायु आदि प्रकृतिदेवी की अमोघ शक्तियों से बातें कर रही है। उसमें किसी प्रकार की भी क्षति नहीं हुई और ऐसा प्रतीत होता है कि शिल्पी ने इसे अभी टांकी से उत्कीर्ण किया हो।

गोम्मटेश्वर की मूर्ति आज के क्षुब्ध संसार को देशना

दे रही है कि परिग्रह और भौतिक पदार्थों की ममता पाप का मूल है। जिस राज्य के लिए भरतेश्वर ने मुझसे संग्राम किया, मैंने जीतने पर भी उस राज्य को जीर्णतृणवत् समझ कर एक क्षण में छोड़ दिया। यदि तुम शांति चाहते हो तो मेरे समान निर्द्वन्द्व होकर आत्मरत हो।

एकबार स्वर्गीय ड्यूक आफ वैलिंगटन जब वे सरिंगापाटन का घेरा डालने के लिए अपनी फौजों की कमाण्ड कर रहे थे, मार्ग में इस मूर्ति को देखकर आश्चर्यान्वित हो गए और ठीक हिसाब न लगा सके कि इस मूर्ति के निर्माण में कितना रुपया तथा समय व्यय हुआ है। अभी हमारे प्रधान मंत्री माननीय जवाहरलाल नेहरू भी उस मूर्ति को देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए।

गोम्मटेश्वर कौन थे ?

गोम्मटेश्वर कौन थे और उनकी मूर्ति यहां किसके द्वारा किस प्रकार और कब प्रतिष्ठित की गई, इसका कुछ उल्लेख शिलालेख नं २३४ (८५) में पाया जाता है। यह लेख एक छोटा-सा सुन्दर कन्नड काव्य है जो सन् ११८० ई० के लगभग बोप्पनकवि के द्वारा रचा गया था, वह इस प्रकार है।

"गोम्मट, पुरुदेव अपर नाम ऋषभदेव प्रथम तीर्थङ्कर के पुत्र थे। इनका नाम बाहुबली या भुजबली भी था। इनके ज्येष्ठ भ्राता भरत थे। ऋषभदेव के दीक्षित होने के पश्चात् भरत और बाहुबली दोनों भाइयों में साम्राज्य के लिए युद्ध हुआ, इसमें बाहुबली की विजय हुई, पर संसार की गति से विरक्त हो उन्होंने राज्य अपने ज्येष्ठ भ्राता भरत

को सौंप दिया और आप तपस्या करने वन में चले गए। थोड़े ही काल में तपस्या के द्वारा उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। भरत ने जो अब चक्रवर्ती होगए थे, पोदनपुर में स्मृति रूप उनकी शरीराकृति के अनुरूप ५२५ धनुष प्रमाण की एक प्रतिमा स्थापित कराई, समयानुसार मूर्ति के आसपास का प्रदेश कुक्कुट सर्पों से व्याप्त हो गया, जिससे उस मूर्ति का नाम कुक्कुटेश्वर पड़ गया। धीरे-धीरे वह मूर्ति लुप्त हो गई और उसके दर्शन केवल मुनियों को ही मंत्रशक्ति से प्राप्त होते थे। गंगनरेश राचमल्ल के मंत्री चामुण्डराय ने इस मूर्ति का वृत्तान्त सुना और उन्हें इसके दर्शन करने की अभिलाषा हुई। पर पोदनपुर की यात्रा अशक्य जान उन्होंने उसी के समान एक सौम्य मूर्ति स्थापित करने का विचार किया और तदनुसार इस मूर्ति का निर्माण कराया।" आगे कवि ने अपने भावों को अत्यन्त रसपूर्ण सुन्दर कविता में वर्णन किया है। जिसका भाव इस प्रकार है :—

"यदि कोई मूर्ति अत्युन्नत (विशाल) हो, तो यह आवश्यक नहीं कि वह सुन्दर भी हो। यदि विशालता और सुन्दरता दोनों हों, तो यह आवश्यक नहीं, कि उसमें अलौकिक वैभव भी हो। गोम्मटेश्वर की मूर्ति में विशालता, सुन्दरता और अलौकिक वैभव, तीनों का सम्मिश्रण है। अत: गोम्मटेश्वर की मूर्ति से बढ़कर संसार में उपासना के योग्य क्या वस्तु हो सकती है?

यदि माया (शची) इनके रूप का चित्र न बना सकी, १,००० नेत्र वाला इन्द्र भी इनके रूप को देखकर तृप्त न

हुआ और २००० जिह्वा वाला नागेन्द्र (अधिशेष) भी इनका गुणगान करने में असमर्थ रहा, तो दक्षिण के अनुपम और विशाल गोम्मटेश्वर के रूप का कौन चित्रण कर सकता है। कौन उनके रूप को देखकर तृप्त हो सकता है और कौन उनका गुणगान कर सकता है ?

पक्षी भूलकर भी इस मूर्ति के ऊपर नहीं उड़ते। बाहु-बली की दोनों काखों में से केशर की सुगन्ध निकलती है। तीनों लोकों के लोगों ने यह आश्चर्यजनक घटना देखी। वह कौन है जो इस तेजस्वी मूर्ति का ठीक वर्णन कर सकता है ?

नागराजों का प्रख्यात संसार (पाताललोक) जिसकी नींव है, पृथ्वी (मध्यलोक) जिसका आधार है, परिधिचक्र जिसकी दीवारें हैं, स्वर्गलोक (ऊर्ध्वलोक) जिसकी छत है, जिसकी अट्टारी पर देवों के रथ हैं, जिनका ज्ञान तीन लोकों में व्याप्त है। अतः वही त्रिलोक गोम्मटेश्वर का निवास है।

क्या बाहुबली अनुपम सुन्दर हैं ? हां, वे कामदेव हैं। क्या वे बलवान हैं ? हाँ, उन्होंने सम्राट् भरत को परास्त कर दिया है। क्या वे उदार हैं ? हां, उन्होंने जीता हुआ साम्राज्य भरत को वापिस दे दिया है। क्या वे मोह रहित हैं ? हां, वे ध्यानस्थ हैं और उनको केवल दो पैर पृथ्वी से सन्तोष है जिस पर वे खड़े हैं। क्या वे केवलज्ञानी हैं ? हां, उन्होंने कर्मबन्धन का नाश कर दिया है।

जो मन्मथ से अधिक सुन्दर हैं, उत्कृष्ट भुजबल को धारण करनेवाले हैं, जिसने सम्राट् के गर्व को खण्डित कर दिया, राज्य को त्यागने से जिसका मोह नष्ट हो गया, जिसने कैवल्य

प्राप्त करके सिद्धत्व पा लिया, समस्त संसार ने जिन पर नमेरु पुष्पों की वर्षा देखी, उन पुष्पों की चमक और दिव्य सुगन्ध परिधिचक्र से आगे चली गई। ………: गोम्मटेश्वर के मस्तक पर पुष्पवृष्टि देखकर स्त्री, पुरुष, बालक और पशु समूह भी हर्षित हो उठा। बेल्गोल के गोम्मटेश्वर के चरणों पर पुष्पवृष्टि ऐसी प्रतीत होती थी, मानो उज्ज्वल तारा समूह उनके चरणों की वन्दना को आया हो। बाहुबली पर ऐसी पुष्पवृष्टि या तो उस समय हुई थी, जब उन्होंने द्वन्द्व युद्ध में भरत को परास्त किया या उस समय हुई जब उन्होंने कर्मशत्रुओं पर विजय प्राप्त की।

अय प्राणी! तू व्यर्थ जन्म रूपी बन में भ्रमण कर रहा है। तू मिथ्या देवों में क्यों श्रद्धा करता है? तू सर्वश्रेष्ठ गोम्मटेश्वर का चिन्तन कर। तू जन्म, बुढ़ापा और खेद से मुक्त हो जायगा।

गोम्मटेश्वर की यह विशाल मूर्ति देशना कर रही है कि कोई प्राणी हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह में सुख न माने, अन्यथा मनुष्य जन्म बेकार जायगा।

बाहुबली को निरपराध स्त्रियों का विलाप भी न रोक सका। उनका रोना उनके कानों तक नहीं पहुँचा। बिना कारण परित्याग करने पर उनको बसन्त ऋतु, चन्द्रमा, पुष्प धनुष और वाण ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे नायक के बिना नाट्य मंडली। बांबियां और शरीर पर लिपटी हुई माधवी लता बतला रही है कि पृथ्वी बिना कारण परित्याग के सिमट गई हो और लतारूप शोकग्रस्त स्त्रियों ने उनको

आलिंगन कर लिया हो ।

बाहुबली को भरतेश्वर की प्रार्थना भी न रोक सकी । भरत ने कहा था कि "भाई ! मेरे ९८ भाइयों ने संसार-त्याग कर के दीक्षा धारण कर ली है । यदि आप भी तपश्चरण को जायंगे, तो यह राज्य सम्पदा मेरे किस काम आयगी ?"

गोम्मटदेव ! आपकी वीरता प्रशंसनीय है । जब आपके बड़े भाई भरत ने प्रार्थना की, कि आप यह विचार छोड़ दें कि आपके दोनों पांव मेरी पृथ्वी में हैं । पृथ्वी न मेरी है और न आपकी । भगवान ने बतलाया है कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चरित्र ही आत्मा के निजी गुण हैं । ऐसा सुनते ही आपने सर्व गर्व त्याग दिया और आपको कैवल्य की प्राप्ति हुई ।

गोम्मटदेव ! यह आप ही के योग्य था । आपके तपश्चरण से आपको स्थायी सुख मिला तथा औरों को आपने मार्ग-प्रदर्शक का कार्य किया । आपने घातिया कर्मों का नाश करके अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य और अनन्तसुख प्राप्त किया और अघातिया कर्मों के नाश से आपने सिद्धत्व प्राप्त किया ।

हे गोम्मटदेव ! जो लोग इन्द्र के समान सुगन्धित पुष्पों से आपके चरण कमल पूजते हैं, प्रसन्नचित्त होकर दर्शन करते हैं, आपकी परिक्रमा करते हैं और आपका गान करते हैं, उनसे अधिक पुण्यशाली कौन होगा ?"

यह वर्णन थोड़े-बहुत हेर-फेर के साथ 'भुजबलिशतक', 'भुजबलिचरित' 'गोम्मटेश्वर चरित', 'राजावलिकथा' तथा

'स्थलपुराण' में भी पाया जाता है।

'भुजबलिचरित' के अनुसार जैनाचार्य जिनसेन ने पोदनपुरस्थ मूर्ति का वर्णन चामुण्डराय की माता कालल देवी को सुनाया। उसे सुन कर मातश्री ने प्रण किया कि जबतक गोम्मटदेव के दर्शन न कर लूंगी, दुग्ध नहीं लूंगी। मातृभक्त चामुण्डराय ने यह संवाद अपनी पत्नी अजितादेवी के मुख से सुना और तत्काल गोम्मटेश्वर की यात्रा को प्रस्थान किया। मार्ग में उन्होंने श्रवणबेल्गोल की चन्द्रगुप्त बस्ती में भगवान पार्श्वनाथ के दर्शन किए और अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु के चरणों की वन्दना की। रात्रि को स्वप्न आया कि पोदनपुर वाली गोम्मटेश्वर की मूर्ति का दर्शन केवल देव कर सकते हैं, वहां की वन्दना तुम्हारे लिए अगम्य है, पर तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न होकर गोम्मटेश्वर तुम्हें यहीं दर्शन देंगे। तुम मन, वचन, काय की शुद्धि से सामनेवाले पर्वत पर एक स्वर्णबाण छोड़ो और भगवान के दर्शन करो। मातश्री को भी ऐसा ही स्वप्न हुआ। दूसरे दिन प्रातःकाल ही चामुण्डराय ने स्नान पूजन से शुद्ध हो चन्द्रगिरि की एक शिला पर अवस्थित होकर, दक्षिण दिशा को मुख करके एक स्वर्णबाण छोड़ा, जो बड़ी पहाड़ी (विन्ध्यगिरि) के मस्तक पर जाकर लगा। बाण लगते ही विन्ध्यगिरि का शिखर कांप उठा, पत्थरों की पपड़ी टूट पड़ी और मैत्री, प्रमोद और कारुण्य का ब्रह्मविहार दिखलाता हुआ गोम्मटेश्वर का मस्तक प्रकट हुआ। चामुण्डराय और उसकी माता की आंखों से भक्तिवश अविरल अश्रुधारा वहने लगी। तुरंत असंख्य मूर्तिकार वहां आ गए। प्रत्येक के हाथ में

हीरे की एक-एक छैनी थी। बाहुबली के मस्तक के दर्शन करते जाते थे और आसपास के पत्थर उतारते जाते थे। कन्धे प्रकट हुए, छाती दिखाई देने लगी, विशाल बाहुओं पर लिपटी हुई माधवीलता दिखाई दी। वे पैरों तक आ पहुंचे। नीचे वांमियों में से कुक्कुट सर्प निकल रहे थे, पर बिल्कुल अहिंसक। पैरों के नीचे एक विकसित कमल निकला। भक्त माता का हृदय-कमल भी खिल गया और उसने कृतार्थ और आनन्दित हो 'जय गोम्मटेश्वर' की ध्वनि की। आकाश से पुष्पवृष्टि हुई और सभी धन्य धन्य कहने लगे। फिर चामुण्डराय ने कारीगरों से दक्षिण बाजू पर ब्रह्मदेव सहित पाताल गम्ब, सन्मुख यक्षगम्ब, ऊपर का खण्ड, त्यागदकम्ब, अखण्ड बागिलु नामक दरवाजा और यत्र तत्र सीढ़ियां बनवाईं। दरवाजे पर ही एक भव्यात्मा गुल्लकाय देवी की मूर्ति है।

इसके पश्चात् अभिषेक की तैयारी हुई। उस समय एक वृद्धा महिला गल्लकायजी नाम की, एक नारियल की प्याली में अभिषेक के लिए थोड़ा-सा अपनी गाय का दूध ले आई और लोगों से कहने लगी कि मुझे अभिषेक के लिए यह दूध लेकर जाने दो, पर बिचारी बुढ़िया को कौन सुनता? वृद्धा प्रतिदिन सवेरे गाय का दूध लेकर आती और अंधेरा होने पर निराश होकर घर लौट जाती। इस प्रकार एक मास बीत गया। अभिषेक का दिन आया पर चामुण्डराय ने जितना भी दुग्ध एकत्रित कराया उससे अभिषेक न हुआ। हज़ारों घड़े दूध डालने पर भी दुग्ध गोम्मटेश्वर की कटि तक भी न पहुंचा। चामुण्डराय ने घबरा कर प्रतिष्ठाचार्य से कारण

पूछा। उन्होंने बतलाया कि मूर्ति निर्माण पर जो तुझमें कुछ गर्व की आभा-सी आ गई है, इसलिए दुग्ध कटि से नीचे नहीं उतरता। उन्होंने आदेश दिया कि जो दुग्ध वृद्धा गुल्लिकाया अपनी कटोरी में लाई है उससे अभिषेक कराओ। चामुण्डराय ने ऐसा ही किया, और उस अत्यल्प दुग्ध की धारा गोम्मटेश के मस्तक पर छोड़ते ही न केवल समस्त मूर्ति का अभिषेक हुआ, बल्कि सारी पहाड़ी दुग्धमय हो गई। चामुण्डराय को ज्ञान हुआ कि इतनी मेहनत, इतना व्यय और इतना वैभव भक्ति भरी एक दुग्ध की कटोरी के सामने तुच्छ है।

इसके पश्चात् चामुण्डराय ने पहाड़ी के नीचे एक नगर बसाया और मूर्ति के लिए ९६,००० वरह की आय के गांव लगा दिए। अपने गुरु अजितसेन के कहने पर उस गांव का नाम श्रमणवेल्गोल रखा और उस गुलकायज्जि वृद्धा की मूर्ति भी बनवाई।

'गोम्मटेश्वर चरित' में लिखा है कि चामुण्डराय के स्वर्ण-बाण चलाने से जो गोम्मट की मूर्ति प्रकट हुई थी, चामुण्डराय ने उसे मूर्तिकारों से सुघटित करा कर अभिषिक्त और प्रतिष्ठित कराई।

'स्थलपुराण' के अनुसार चामुण्डराय ने मूर्ति के हेतु एक लाख छयानवे हजार वरह की आय के ग्रामों का दान दिया।

राजावलिकथा के अनुसार प्राचीन काल में राम, रावण और रावण की रानी मन्दोदरी ने बेल्गोल के गोम्मटेश्वर की वन्दना की थी।

मुनिवंशाभ्युदय काव्य में लिखा है कि गोम्मट की मूर्ति को राम और सीता लङ्का से लाए थे। वे इसका पूजन करते थे। जाते समय वे इस मूर्ति को उठाने में असमर्थ रहे इसीसे वे उन्हें इस स्थान पर छोड़ कर चले गए।

उपर्युक्त प्रमाणों से यही विदित होता है कि इस मूर्ति की स्थापना चामुण्डराय ने ही कराई थी। ५७ फुट की मूर्ति खोद निकालने योग्य पाषाण कहीं और स्थान से लाकर इतने ऊंचे पर्वत पर प्रतिष्ठित किया जाना बुद्धिगम्य नहीं है। इसी पहाड़ पर प्रकृति-प्रदत्त स्तम्भाकार चट्टान काट कर इस मूर्ति का निर्माण हुआ है। मूर्ति के सम्मुख का मण्डप नव सौन्दर्य से खचित छतों से सजा हुआ है।

गोम्मटेश्वर की प्रतिष्ठा और उपासना

बाहुबली चरित्र में गोम्मटेश्वर की प्रतिष्ठा का समय कल्कि संवत् ६०० में विभवसंवत्सर चैत्र शुक्ल ५ रविवार को कुम्भ लग्न, सौभाग्ययोग, मृगशिरा नक्षत्र लिखा है। विद्वानों ने इस संवत् की तिथि २३ मार्च सन् १०२८ निश्चित की है।

प्रश्न हो सकता है कि बाहुबली की मूर्ति की उपासना कैसे प्रचलित हुई। इसका प्रथम कारण यह है कि इस अवसर्पिणी काल में सबसे प्रथम भगवान ऋषभदेव से भी पहले मोक्ष जानेवाले क्षत्रिय वीर बाहुबली ही थे। इस युग के आदि में इन्होंने ही सर्वप्रथम मुक्ति-पथ प्रदर्शन किया। दूसरा कारण यह हो सकता है कि बाहुबली के अपूर्व त्याग, अलौकिक आत्मनिग्रह और निज बन्धु-प्रेम आदि असाधारण एवं अमानुषिक गुणों ने सर्वप्रथम अपने बड़े भाई सम्राट् भरत

को इन्हें पूजने को बाध्य किया और तत्पश्चात् औरों ने भी भरत का अनुकरण किया। चामुण्डराय स्वयं वीरमार्तण्ड थे, सुयोग्य सेनापति थे। अतः उनके लिए महाबाहु बाहुबली से बढ़कर दूसरा कोई आदर्श व्यक्ति न था। यही कारण है कि अन्य क्षत्रियों ने भी चामुण्डराय का अनुसरण करके कारकल और वेलूर में गोम्मटेश की मूर्तियां स्थापित कराईं।

गोम्मटेश्वर नाम क्यों पड़ा ?

अब प्रश्न हो सकता है कि बाहुबली की मूर्ति का नाम गोम्मट क्यों पड़ा ? संस्कृत में गोम्मट शब्द मन्मथ (कामदेव) का ही रूपान्तर है। इसलिए बाहुबली की मूर्तियां गोम्मट नाम से प्रख्यात हुईं। इतना ही नहीं, बल्कि मूर्ति स्थापना के पश्चात् इस पुण्य कार्य की स्मृति को जीवित रखने के लिए सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्यप्रवर श्री नेमीचन्द्रजी ने चामुण्डराय का उल्लेख 'गोम्मटराय' के नाम से ही किया और अपने शिष्य चामुण्डराय के लिए रचे हुए 'पंच संग्रह' ग्रन्थ का नाम उन्होंने गोम्मटसार रखा। चामुण्डराय का घरू नाम भी गोम्मट था। इसलिए भी कहा जाता है कि मूर्ति का नाम गोम्मटेश्वर पड़ा।

मूर्ति का आकार

भगवान बाहुबली की इतनी उन्नत मूर्ति का नाप लेना कोई सरल कार्य नहीं है। सन् १८६५ में मैसूर के चीफ कमिश्नर श्री वौरिंग ने मूर्ति का ठीक-ठीक माप कराकर उसकी ऊंचाई ५७ फुट दर्ज की थी। सन् १८७१ ईस्वी में महामस्तकाभिषेक के समय मैसूर के सरकारी अफसरों ने मूर्ति के निम्न माप लिये—

	फुट	इंच
चरण से कर्ण के अधोभाग तक	५०	०
कर्ण के अधो भाग से मस्तक तक	६	६
चरण की लम्बाई	९	०
चरण के अग्रभाग की चौड़ाई	४	६
चरण का अंगुष्ठ	२	९
पाद पृष्ठ की ऊपर की गोलाई	६	४
जंघा की अर्ध गोलाई	१०	०
नितम्ब से कर्ण तक	२४	६
पृष्ठ-अस्थि के अधोभाग से कर्ण तक	२०	०
नाभि के नीचे उदर की चौड़ाई	१३	०
कटि की चौड़ाई	१०	०
कटि और टेहुनी से कर्ण तक	१७	०
वाहुमूल से कर्ण तक	७	०
वक्षःस्थल की चौड़ाई	२६	०
ग्रीवा के अधोभाग से कर्ण तक	२	६
तर्जनी की लम्बाई	३	६
मध्यमा की लम्बाई	५	३
अनामिका की लम्बाई	४	७
कनिष्ठका की लम्बाई	२	८

: ४ :

गोम्मट-मूर्ति की कुण्डली

श्रीयुत गोविन्द पै के मतानुसार 'श्रवणबेल्गोल' के गोम्मट स्वामी की मूर्ति की स्थापना-तिथि १३ मार्च, सन् ९८१ है। बहुत कुछ सम्भव है कि यह तिथि ही मूर्ति की स्थापना-तिथि हो। क्योंकि भारतीय ज्योतिष के अनुसार 'बाहुबलि चरित्र' में गोम्मट-मूर्ति की स्थापना की जो तिथि, नक्षत्र, लग्न, संवत्सर आदि दिये गये हैं वे उस तिथि में अर्थात् १३ मार्च, सन् ९८१ में ठीक घटित होते हैं। अतएव इस प्रस्तुत लेख में उसी तिथि और लग्न के अनुसार उस समय के ग्रह स्फुट करके लग्न-कुण्डली तथा चन्द्रकुण्डली दी जाती हैं और उस लग्न-कुण्डली का फल भी लिखा जाता है। उस समय का पञ्चांग विवरण इस प्रकार है—

श्रीविक्रम सं० १०३८ शकाब्द ९०३ चैत्र शुक्ल पंचमी रविवार घटी ५६, पल ५८, रोहिणी नाम नक्षत्र, २२ घटी, १५ पल, तदुपरान्त प्रतिष्ठा के समय मृगशिर नक्षत्र २५ घटी, ४८ पल, आयुष्मान् योग ३४ घटी, ४६ पल इसके बाद प्रतिष्ठा समय में सौभाग्य योग २१ घटी, ४९ पल।

उस समय की लग्न स्पष्ट १० राशि, २६ अंश, ३९ कला और ५७ विकला रही होगी। उसकी षड्वर्ग-शुद्धि इस प्रकार है—

१०।२६।३९।५७ लग्न स्पष्ट—इस लग्न में गृह शनि का हुआ और नवांश स्थिर लग्न अर्थात् वृश्चिक का आठवां है, इसका स्वामी मंगल है। अतएव मंगल का नवांश हुआ। द्रेष्काण तृतीय तुलाराशि का हुआ जिसका स्वामी शुक्र है। त्रिशांश विषम राशि कुम्भ में चतुर्थ बुध का हुआ और द्वादशांश ग्यारहवां धनराशि का हुआ जिसका स्वामी गुरु है। इसलिए यह षड्वर्ग बना—

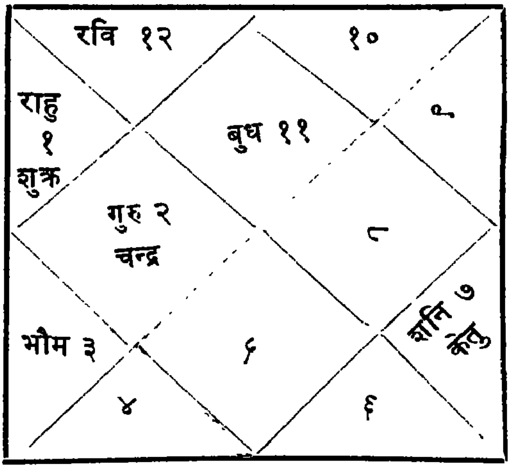
(१) गृह—शनि, (२) होरा—चन्द्र, (३) नवांश—मंगल, (४) त्रिशांश—बुध, (५) द्रेष्काण—शुक्र, (६) द्वादशांश गुरु का हुआ। अब इस बात का विचार करना चाहिए कि षड्वर्ग कैसा है और प्रतिष्ठा में इसका क्या फल है? इस षड्वर्ग में चार शुभ ग्रह पदाधिकारी हैं और दो क्रूर ग्रह। परन्तु दोनों क्रूर ग्रह भी यहां नितांत अशुभ नहीं कहे जा सकते हैं क्योंकि शनि यहां पर उच्च राशि का है। अतएव यह सौम्य ग्रहों के ही समान फल देने वाला है। इसलिए इस षड्वर्ग में सभी सौम्य ग्रह हैं, यह प्रतिष्ठा में शुभ है और लग्न भी बलवान है; क्योंकि षड्वर्ग की शुद्धि का प्रयोजन केवल लग्न की सबलता अथवा निर्बलता देखने के लिए ही होता है, फलतः यह मानना पड़ेगा कि यह लग्न बहुत ही बलिष्ठ है। जिसका कि फल आगे लिखा जायगा। इस लग्न के अनुसार प्रतिष्ठा का समय सुबह ४ बजकर ३८ मिनट होना चाहिए। क्योंकि ये लग्न, नवांशादि ठीक ४ बज कर ३८ मिनट पर ही आते हैं। उस समय के ग्रह स्पष्ट इस प्रकार रहे होंगे।

नवग्रह-स्पष्ट-चक्र

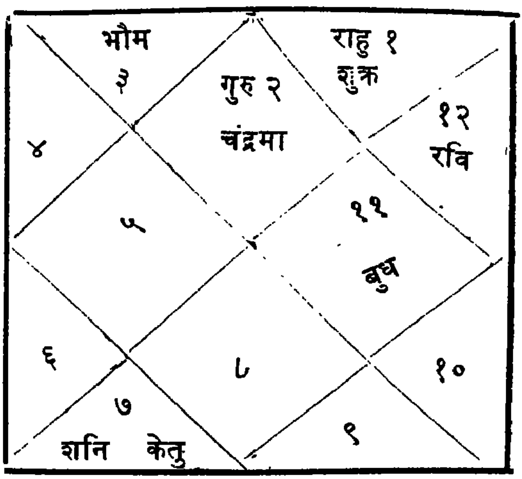
रवि	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु	ग्रह
११	१	२	१०	१	०	६	०	६	राशि
२४	२५	७	२	३	५	६	७	७	अंश
४३	४१	२६	५८	११	३६	१३	२१	२१	कला
१४	२५	४८	५१	३१	४२	५६	३७	३७	विकला
५८	७८२	४५	१०८	४	५६	२	३	३	गति
४५	५२	३७	५६	४१	५२	३१	११	११	विगति

यहाँ पर 'ग्रह-लाघव' के अनुसार अहर्गण ४७८ हैं तथा चक्र ४९ हैं, करणकुतूहलीय अहर्गण १२३५-९२ मकरन्दीय १६८८३२९ और सूर्यसिद्धान्तीय ७१४४०३९८४९५६ है। परन्तु इस लेख में ग्रहलाघव के अहर्गण पर से ही ग्रह बनाये गये हैं और तिथि नक्षत्रादिक के घट्यादि भी इसीके अनुसार हैं।

उस समय की लग्न-कुण्डली



उस समय की चन्द्रकुण्डली



प्रतिष्ठाकर्त्ता के लिए लग्नकुण्डली का फल

सूर्य्य

जिस प्रतिष्ठापक के प्रतिष्ठा-समय द्वितीय स्थान में सूर्य रहता है, वह पुरुष बड़ा भाग्यवान् होता है। गौ, घोड़ा और हाथी आदि चौपाये पशुओं का पूर्ण सुख उसे होता है। उसका धन उत्तम कार्यों में खर्च होता है। लाभ के लिए उसे अधिक चेष्टा नहीं करनी पड़ती है। वायु और पित्त से उसके शरीर में पीड़ा होती है।

चन्द्रमा का फल

यह लग्न से चतुर्थ है इसलिए केन्द्र में है साथ-ही-साथ उच्च राशि का तथा शुक्लपक्षीय है। इसलिए इसका फल बहुत उत्तम है। प्रतिष्ठाकर्त्ता के लिए इसका फल इस प्रकार हुआ होगा।

चतुर्थ स्थान में चन्द्रमा रहने से पुरुष राजा के यहाँ सब से बड़ा अधिकारी रहता है। पुत्र और स्त्रियों का सुख उसे अपूर्व मिलता है। परन्तु यह फल वृद्धावस्था में बहुत ठीक घटता है। कहा है—

"यदा बन्धुगोबान्धवैरत्रिजन्मा नवद्वारि सर्वाधिकारी सदैव" इत्यादि—

भौम का फल

यह लग्न से पंचम है इसलिए त्रिकोण में है और पंचम मंगल होने से पेट की अग्नि बहुत तेज हो जाती है। उसका मन पाप से बिलकुल हट जाता है और यात्रा करने में उसका मन प्रसन्न रहता है। परन्तु वह चिन्तित रहता है और

बहुत समय तक पुण्य का फल भोग कर अमर कीर्त्ति संसार में फैलाता है।

बुधफल

यह लग्न में है। इसका फल प्रतिष्ठा-कारक को इस प्रकार रहा होगा—

लग्नस्थ बुध कुम्भ राशि का होकर अन्य ग्रहों के अरिष्टों को नाश करता है और बुद्धि को श्रेष्ठ बनाता है, उसका शरीर सुवर्ण के समान दिव्य होता है और उस पुरुष को वैद्य, शिल्प आदि विद्याओं में दक्ष बनाता है। प्रतिष्ठा के ८वें वर्ष में शनि और केतु से रोग आदि जो पीड़ाएँ होती हैं उनको विनाश करता है।*

गुरुफल

यह लग्न से चतुर्थ है और चतुर्थ बृहस्पति अन्य पाप ग्रहों के अरिष्टों को दूर करता है तथा उस पुरुष के द्वार पर घोड़ों का हिनहिनाना, बन्दीजनों से स्तुति का होना आदि बातें हैं। उसका पराक्रम इतना बढ़ता है कि शत्रु लोग भी उसकी सेवा करते हैं; उसकी कीर्त्ति सर्वत्र फैल जाती है और उसकी आयु को भी बृहस्पति बढ़ाता है। शूरता, सौजन्य, धीरता आदि गुणों की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है।†

---

* "बुधो मूर्तिगो मार्जयेदन्यरिष्टं गरिष्ठा धियो वैखरीवृत्तिभाजः।
जना दिव्यचामीकरीभूतदेहाश्चिकित्साविदो दुश्चिकित्स्या भवन्ति॥"
"लग्ने स्थिताः जीवेन्दुभार्गवबुधाः सुखकान्तिदाः स्युः।"

† गृहद्वारतः श्रूयते वाजिह्रेषा द्विजोच्चारितो वेदघोषोऽपि तद्वत्।
प्रतिस्पर्धितः कुर्वते पारिचर्यं चतुर्थे गुरौ तप्तमन्तर्गतञ्च॥
—चमत्कारचिन्तामणि

शुक्रफल—

यह लग्न से तृतीय और राहु के साथ है। अतएव इसका फल प्रतिष्ठा के ५वें वर्ष में सन्तान-सुख को देना सूचित करता है। साथ-ही-साथ उसके मुख से सुन्दर वाणी निकलती है। उसकी बुद्धि सुन्दर होती है। उसका मुख सुन्दर होता है और वस्त्र सुन्दर होते हैं। मतलब यह है कि इस प्रकार के शुक्र के होने से उस पूजक के सभी कार्य सुन्दर होते हैं।‡

मुखे जीवे सुखी लोकः सुभगो राजपूजितः।
विजितारिः कुलाध्यक्षो गुरुभक्तश्च जायते॥

—लग्नचन्द्रिका

अर्थ—सुख अर्थात् लग्न से चतुर्थ स्थान में बृहस्पति होवे तो पूजक (प्रतिष्ठाकारक) सुखी, राजा से मान्य, शत्रुओं को जीतनेवाला, कुल-शिरोमणि तथा गुरु का भक्त होता है। विशेष के लिए बृहज्जातक १९ वां अध्याय देखो।

‡ मुखं चारुभाषं मनीषापि चार्वी मुखं चारु चारूणि वासांसि तस्य।

—वाराही संहिता

भार्गवे सहजे जातो धनधान्यसुतान्वितः।
नीरोगी राजमान्यश्च प्रतापी चापि जायते॥

—लग्नचन्द्रिका

अर्थ—शुक्र के तीसरे स्थान में रहने से पूजक धन-धान्य, सन्तान आदि सुखों से युक्त होता है। तथा निरोगी, राजा से मान्य और प्रतापी होता है। बृहज्जातक में भी इसी आशय के कई श्लोक हैं जिनका तात्पर्य यही है जो ऊपर लिखा गया है।

शनिफल

यह लग्न से नवम है और इसके साथ केतु भी है, परन्तु यह तुलाराशि का है। इसलिए उच्च का शनि हुआ अतएव यह धर्म की वृद्धि करनेवाला और शत्रुओं को वश में करता है। क्षत्रियों में मान्य होता है और कवित्व शक्ति, धार्मिक कार्यों में रुचि, ज्ञान की वृद्धि आदि शुभ चिह्न धर्मस्थ उच्च शनि के हैं।

राहु फल

यह लग्न से तृतीय है अतएव शुभग्रह के समान फल का देनेवाला है। प्रतिष्ठासमय राहु तृतीय स्थान में होने से, हाथी या सिंह पराक्रम में उसकी बराबरी नहीं कर सकते; जगत् उस पुरुष का सहोदर भाई के समान हो जाता है। तत्काल ही उसका भाग्योदय होता है। भाग्योदय के लिए उसे प्रयत्न नहीं करना पड़ता है।*

केतु का फल

यह लग्न से नवम में है अर्थात् धर्म-भाव में है। इसके होने से क्लेश का नाश होना, पुत्र की प्राप्ति होना, दान देना, इमारत बनाना, प्रशंसनीय कार्य करना आदि बातें होती हैं।

---

*न नागोऽथ सिंहो भुजो विक्रमेण प्रयातीह सिंहीसुते तत्समत्वम्।
विद्याधर्मधनैर्युक्तो बहुभाषी च भाग्यवान्॥ इत्यादि

अर्थ—जिस प्रतिष्ठाकारक के तृतीय स्थान में राहु होने से उसके विद्या, धर्म, धन और भाग्य उसी समय से वृद्धि को प्राप्त होते हैं। वह उत्तम वक्ता होता है।

अन्यत्र भी कहा है—†

"शिखी धर्मभावे यदा क्लेशनाशः
सुतार्थी भवेन्म्लेच्छतो भाग्यवृद्धिः।" इत्यादि

मूर्ति और दर्शकों के लिए तत्कालीन ग्रहों का फल—मूर्ति के लिए फल तत्कालीन चन्द्रकुण्डली से कहा जाता है। दूसरा प्रकार यह भी है कि चर स्थिरादि लग्न नवांश और त्रिंशांश से भी मूर्ति का फल कहा गया है।

लग्न, नवांशादि का फल

लग्न स्थिर है और नवांश भी स्थिर राशि का है तथा त्रिंशांशादिक भी षड्वर्ग के अनुसार शुभ ग्रहों के हैं। अतएव मूर्ति का स्थिर रहना और भूकम्प, बिजली आदि महान् उत्पातों से मूर्ति को रक्षित रखना सूचित करते हैं। चोर, डाकू आदि का भय नहीं हो सकता। दिन प्रतिदिन मनोज्ञता बढ़ती है और चामत्कारिक शक्ति अधिक आती है। बहुत काल तक सब विघ्न-बाधाओं से रहित हो कर उस स्थान की प्रतिष्ठा को बढ़ाती है। विधर्मियों का आक्रमण नहीं हो सकता

†एकोऽपि जीवो बलवांस्तनुस्थः सितोऽपि सौम्योऽप्यथवा बली चेत्।
दोषानशेषान्विनिहंति सद्यः स्कंदो यथा तारकदैत्यवर्गम्॥

गुणाधिकतरे लग्ने दोषेऽत्यल्पतरे यदि।
सुराणां स्थापनं तत्र कर्तुरिष्टार्थसिद्धिदम्॥

भावार्थ—इस लग्न में गुण अधिक हैं और दोष बहुत कम हैं अर्थात् नहीं के बराबर हैं। अतएव यह लग्न सम्पूर्ण अरिष्टों को नाश करने वाला और श्रीचामुण्डराय के लिए सम्पूर्ण अभीष्ट अर्थों को देनेवाला सिद्ध हुआ होगा।

और राजा, महाराजा, सभी उस मूर्ति का पूजन करते हैं। सब ही जन-समुदाय उस पुण्य-शाली मूर्ति को मानता है और उसकी कीर्त्ति सब दिशाओं में फैल जाती है आदि शुभ बातें नवांश और लग्न से जानी जाती हैं।

चन्द्रकुण्डली के अनुसार फल

वृष राशि का चन्द्रमा है और यह उच्च का है तथा चन्द्रराशीश चन्द्रमा से बारहवां है और गुरु चन्द्र के साथ में है तथा चन्द्रमा से द्वितीय मंगल और दसवें बुध तथा बारहवें शुक्र हैं। अतएव गृहाध्याय के अनुसार गृह 'चिरंजीवी' योग होता है। इसका फल मूर्त्ति को चिरकाल तक स्थायी रहना है। कोई भी उत्पात मूर्ति को हानि नहीं पहुंचा सकता है। परन्तु ग्रह स्पष्ट के अनुसार तात्कालिक लग्न से जब आयु बनाते हैं तो परमायु तीन हजार सात सौ उन्नीस वर्ष, ग्यारह महीने और १९ दिन आते हैं।

मूर्ति के लिए कुण्डली तथा चन्द्रकुण्डली का फल उत्तम है और अनेक चमत्कार वहाँ पर हमेशा होते रहेंगे। भयभीत मनुष्य भी उस स्थान में पहुंच कर निर्भय हो जायगा।

इस चन्द्रकुण्डली में 'डिम्भाख्य' योग है। उसका फल भी अनेक उपद्रवों से रक्षा करना तथा प्रतिष्ठा को बढ़ाना है। कई अन्य योग भी हैं किन्तु विशेष महत्त्वपूर्ण न होने से नाम नहीं दिये हैं।

प्रतिष्टा के समय उपस्थित लोगों के लिए भी इसका उत्तम फल रहा होगा। इस मुहूर्त में बाण पंचक अर्थात् रोग, चोर, अग्नि, राज, मृत्यु इनमें से कोई भी बाण नहीं है। अतः

उपस्थित सज्जनों को किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ होगा। सबको अपार सुख एवं शान्ति मिली होगी।

इन लग्न, नवांश, षड्वर्गादिक में ज्योतिष-शास्त्र की दृष्टि से कोई भी दोष नहीं है प्रत्युत अनेक महत्त्वपूर्ण गुण मौजूद हैं। इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में लोग मुहूर्त, लग्नादिक के शुभाशुभ का बहुत विचार करते थे। परन्तु आज-कल की प्रतिष्ठाओं में मनचाहा लग्न तथा मुहूर्त ले लेते हैं जिससे अनेक उपद्रवों का सामना करना पड़ता है। ज्योतिष-शास्त्र का फल असत्य नहीं कहा जा सकता; क्योंकि काल का प्रभाव प्रत्येक वस्तु पर पड़ता है और काल की निष्पत्ति ज्योतिष-देवों से ही होती है। इसलिए ज्योतिष-शास्त्र का फल गणितागत बिल्कुल सत्य है। अतएव प्रत्येक प्रतिष्ठा में पञ्चाङ्ग-शुद्धि के अतिरिक्त लग्न, नवांश, षड्वर्गादिक का भी सूक्ष्म विचार करना अत्यन्त जरूरी है।

: ५ :

महामस्तकाभिषेक

श्री गोम्मटेश्वर का महामस्तकाभिषेक कुछ वर्षों के अन्तराय से बड़ी धूमधाम, बहुत क्रियाकाण्ड और भारी द्रव्यव्यय से होता है। सन् १५०० के शिलालेख नं.२३१ में इसका जो वर्णन है उसमें अभिषेक करानेवाले आचार्य, शिल्पकार, बढ़ई, और अन्य कर्मचारियों के पारिश्रमिक का ब्यौरा है तथा दुग्ध और दही का भी खर्चा लिखा है। सन् १३९८ के शिलालेख नं. २५४ (१०५) में लिखा है कि पण्डितार्य ने गोम्मटेश्वर का ७ बार मस्तकाभिषेक कराया था। पञ्चवाण कवि ने सन् १६१२ ई० में शान्ति वर्णी द्वारा कराये हुए मस्तकाभिषेक का उल्लेख किया है व अनन्त कवि ने सन् १६७७ में मैसूर नरेश चिक्कदेवराज ओडेयर के मंत्री विशालाक्ष पंडित द्वारा कराये हुए और शान्तराज पंडित ने सन् १८२५ के लगभग मैसूर नरेश कृष्णंराज ओडेयर तृतीय द्वारा कराये हुए मस्तकाभिषेक का उल्लेख किया है। शिलालेख नं २२३ (९८) में सन् १८२७ में होनेवाले मस्तकाभिषेक का उल्लेख है। सन् १९०९ में भी मस्तकाभिषेक हुआ था। मार्च सन् १९२५ में भी मस्तकाभिषेक हुआ था, जिसे मैसूर नरेश महाराजा कृष्णराजबहादुर ने अपनी तरफ से कराया था। महाराजा ने अभिषेक के लिए ५०००) रु० प्रदान किये, उन्होंने स्वयं गोम्मटस्वामी की प्रदक्षिणा की, नमस्कार किया तथा द्रव्य से पूजन की।

सबसे अन्तिम बार गोम्मटस्वामी का महामस्तकाभिषेक सन् १९४० में हुआ था। इसमें दूध, दही, केला, पुष्प, नारियल का चूरा, घृत, चंदन, सर्वोषधि, इक्षुरस, लाल चंदन, बादाम, खारक, गुड़, शक्कर, खसखस आदि वस्तुओं से और जल से अभिषेक कराया गया।

१. परकोटा और उसमें मूर्तियां

चामुण्डराय ने जब मूर्ति का निर्माण कराया, इसके चारों ओर कुछ न था। पश्चात् होय्यसल नरेश विष्णुवर्द्धन के सेनापति गङ्गराज ने मूर्ति की रक्षा के लिए एक परकोटा बनवाना आवश्यक समझा। इस परकोटे का निर्माण संभवतः सन् १११७ ई० के लगभग हुआ।

परकोटे के भीतर मण्डपों में ४३ जिन-बिम्ब निम्न प्रकार हैं। चन्द्रप्रभु व एक अन्तिम अज्ञात मूर्ति को छोड़कर बाकी मूर्तियों पर लेख हैं।

परकोटे के द्वार पर दोनों ओर छः छः फुट ऊंचे द्वारपाल हैं। बाहर गोम्मटेश्वर के ठीक सामने छः फुट की ऊंचाई पर ब्रह्मदेव स्तम्भ है। इसमें ब्रह्मदेव की पद्मासन मूर्ति है। ऊपर गुमटी है। स्तम्भ के नीचे पांच फुट ऊंची गुलकायज्जि की मूर्ति है।

नाम प्रतिमा	ऊंचाई फुट	नाम प्रतिमा	ऊंचाई फुट
१ कुष्मांडिनी-पद्मासन	३ ,,	५ ऋषभदेव	५ ,,
२ चन्द्रप्रभु-खड्गासन	३½ ,,	६ नेमनाथ	५ ,,
३ पार्श्वनाथ	५ ,,	७ अजितनाथ	४½ ,,
४ शांतिनाथ	४½ ,,	८ वासुपूज्य	४½ ,,

९	विमलनाथ	४ ,,	२७	शांतिनाथ	४ ,,
१०	अनन्तनाथ	४ ,,	२८	अरनाथ	५ ,,
११	नमिनाथ	४ ,,	२९	मल्लिनाथ	५ ,,
१२	संभवनाथ	४ ,,	३०	मुनिसुव्रतनाथ	५ ,,
१३	सुपार्श्वनाथ	४ ,,	३१	पार्श्वनाथ	६ ,,
१४	पार्श्वनाथ	६ ,,	३२	शीतलनाथ	४ ,,
१५	संभवनाथ	४½ ,,	३३	पुष्पदन्त	४ ,,
१६	शीतलनाथ	४ ,,	३४	पार्श्वनाथ	४ ,,
१७	अभिनन्दननाथ	४ ,,	३५	अजितनाथ	४ ,,
१८	चन्द्रप्रभु	४ ,,	३६	सुमतिनाथ	४ ,,
१९	पुष्पदंत	४ ,,	३७	वर्द्धमान	४ ,,
२०	मुनिसुव्रतनाथ	४ ,,	३८	शांतिनाथ	४ ,,
२१	श्रेयांशनाथ	४ ,,	३९	मल्लिनाथ	४ ,,
२२	विमलनाथ	४ ,,	४०	कूष्मांडिनी	१½ ,,
२३	कुंथनाथ	३ ,,	४१	बाहुबली	६ ,,
२४	धर्मनाथ	४ ,,	४२	चन्द्रप्रभु	३ ,,
२५	नेमिनाथ	४ ,,	४३	अज्ञात	
२६	अभिनन्दननाथ	४ ,,			

दो मूर्तियों को छोड़कर शेष सब नयकीर्ति सिद्धान्तदेव तथा उनके शिष्य बालचन्द्र अध्यात्मि के समय की हैं।

२. सिद्धरबस्ति

इस मन्दिर में एक ३ फुट ऊंची पद्मासन सिद्धभगवान की प्रतिमा है। मूर्ति के दोनों ओर ६ फुट ऊंचे स्तम्भ हैं। दाहिनी

ओर वाले स्तम्भ में कवि अरहदास का बनाया हुआ संस्कृत में पंडितार्य के समाधिमरण-सम्बंधी शिलालेख है। इसी स्तम्भ के नीचे के भाग में एक आचार्य अपने शिष्य को उपदेश देते हुए दिखाये गए हैं। दूसरे स्तम्भ में आचार्य श्रुतमुनि के समाधिमरण का शिलालेख है।

३. अखण्ड बागिलु

कन्नड में बागिलु का अर्थ दरवाजा है। यह दरवाजा एक अखण्ड शिला को काट कर बनाया गया है। ऊपर के भाग में बहुत ही सुन्दर कारीगरी है। दरवाजे के ऊपर दो हाथी लक्ष्मी पर जल-कलश ढुरा रहे हैं। दरवाजे के दाईं ओर बाहुबली और बाईं ओर भरत की मूर्तियां हैं। ये दोनों ही मूर्तियां दरवाजे की शोभा बढ़ाने के लिए सन् ११३० ई० में गण्डविमुक्त सिद्धान्तदेव के शिष्य दण्डनायक भरतेश्वर ने प्रतिष्ठित कराई थीं। दरवाजे की सीढ़ियां भी उन्हींने बनवाईं थीं।

४. सिद्धरगुण्डु

अखण्ड बागिलु के दाईं ओर एक वृहत् शिला है, जिसे सिद्धरगुण्डु कहते हैं। इसे सिद्धशिला भी कहते हैं। इस शिला पर कई लेख हैं। ऊपर के भाग में कई पंक्तियों में आचार्यों की चित्रावली है। कई चित्रों के नीचे आचार्यों के नाम भी दिये हैं।

५. गुल कायज्जिबागिलु

इस दरवाजे पर जो एक बैठी हुई स्त्री की मूर्ति के नीचे शिलालेख है, उससे मालूम होता है कि वह चित्र मल्लिसेहि

की पुत्री का है। यह चित्र उसके स्मारक के रूप में बनाया है। लेकिन कुछ लोग इस दरवाज़े को उस भव्य महिला गुल्लकायज्जि से संबंधित करते हैं, जिसके एक कटोरी दुग्ध से भगवान बाहुबली की मूर्ति का मस्तकाभिषेक हुआ था।

६. त्यागदब्रह्मदेव स्तम्भ

यह खचित स्तम्भ कला की दृष्टि से दर्शनीय है। यह ऊपर से इस प्रकार लटकाया गया है कि इसके नीचे से रूमाल निकाला जा सकता है। स्तम्भ पर खुदे हुए शिलालेख में चामुण्डराय की वीरता और उसकी विजय का वर्णन है। इस लेख का बहुत-सा भाग स्तम्भ के तीन तरफ एक व्यक्ति हेग्गँडे कण्न ने अपना लेख लिखवाने के लिए घिसवा डाला। यदि यह लेख पूरा होता तो सम्भवतः उससे गोम्मटेश्वर की स्थापना का ठीक समय मालूम हो जाता। स्तम्भ की पीठिका के दक्षिण बाज़ू पर चामुण्डराय की मूर्ति है जिस पर चंवरवाही खड़े हुए हैं। सामनेवाली मूर्ति आचार्य नेमचन्द्र की कही जाती है। इस स्तम्भ को चागद कँब भी कहते हैं, यहां पर दान दिया जाता था, इसलिए भी इसको त्यागद स्तम्भ कहते हैं।

७. चेन्नण्ण बस्ति

यह मन्दिर त्यागद ब्रह्मदेव स्तम्भ से पश्चिम की ओर थोड़ी दूरी पर है। इसमें एक गर्भगृह, एक ड्योढी और एक बरामदा है। २½ फुट ऊंची चन्द्रप्रभु भगवान की मूर्ति है। सामने एक मानस्तम्भ है। बरामदे के दो खंभों पर क्रमशः एक स्त्री और एक पुरुष की मूर्ति खुदी हुई हैं। ये मूर्तियां चेन्नण्ण और

उनकी स्त्री की मालूम होती हैं। मंदिर के उत्तर-पूर्व में और दो कुण्डों के बीच में एक मण्डप बना हुआ है।

८. ओदेगल बस्ति

इस मन्दिर में तीन गर्भगृह हैं, इसलिए इसे त्रिकूट बस्ति भी कहते हैं। यह चन्द्रगिरि पर्वत की शान्तेश्वर बस्ति के समान ऊंची भूमि पर है। ऊपर जाने के लिए सीढ़ियां हैं। दीवारों की मजबूती के लिए इसमें पाषाण के आधार हैं। बीच की गुफा में आदिनाथ की, दाईं गुफा में शान्तिनाथ की और बांईं गुफा में नेमिनाथ की पद्मासन मूर्तियां हैं। इस बस्ति के पश्चिम की ओर चट्टान पर २७ लेख नागरी अक्षरों में अंकित हैं जिनमें प्रायः तीर्थयात्रियों के नाम दिये हुए हैं।

९. चौबीस तीर्थङ्कर बस्ति

इस मंदिर में २½ फुट ऊंचे पाषाण पर २४ तीर्थङ्करों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। नीचे एक पंक्ति में तीन बड़ी मूर्तियां हैं। उनके ऊपर प्रभावली के आकार में २१ अन्य छोटी मूर्तियां हैं।

१०. ब्रह्मदेव मंदिर

यह विन्ध्यगिरि के नीचे सीढ़ियों के समीप छोटा-सा देवालय है। इसमें सिन्दूर से रंगा हुआ एक पाषाण है, जिसे लोग 'जारुगुप्पे अप्प' भी कहते हैं। इस मंदिर को हिरिसालि के गिरिगौड के कनिष्ठ भ्राता रङ्गय्य ने सम्भवतः सन् १६७९ ई० में बनवाया था।



चन्द्रगिरि के मन्दिर

: ६ :

चन्द्रगिरि के मंदिर

यह छोटी पहाड़ी समुद्रतट से ३०५२ फुट है। इसे चिक्क-बेट और चन्द्रगिरि भी कहते हैं। पुराने शिलालेखों में इसे कटवप्र और कन्नड़ में कलबप्पु भी कहा गया है। यह पहाड़ी तीर्थगिरि और ऋषिगिरि के नाम से भी प्रसिद्ध रही है। यही वह पवित्र पहाड़ी है जिस पर अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहुस्वामी ने अपना मरण निकट जानकर तपश्चरण का अन्तिम आधार संन्यासमरण किया। यहीं सम्राट् चन्द्रगुप्त ने उनकी परिचर्या की और अपना भी शेष जीवन इसी पहाड़ी पर बिताया।

इस देवमन्दिर को छोड़ कर इस पर्वत पर शेष मंदिर सब एक ५०० फुट लम्बी और २२५ फुट चौड़ी दीवार के घेरे के अन्दर हैं। समस्त मन्दिर द्राविड़ी ढंग के बने हुए हैं।

चन्द्रगिरि पर्वत पर के अधिकांश प्राचीनतम शिलालेख या तो पार्श्वनाथ बस्ति के दक्षिण की शिला पर उत्कीर्ण हैं या उस शिला पर जो शासन बस्ति और चामुण्डराय बस्ति के सन्मुख हैं।

१. शांतिनाथ बस्ति

यह मन्दिर २४ फुट लम्बा और १६ फुट चौड़ा है। इसमें एक गर्भगृह, एक सुखनासि और एक ड्योढ़ी है। इसकी

दीवारों और छत पर कभी अच्छी चित्रकारी बनी हुई थी जिसके निशान अब भी बाकी हैं। इसमें १६वें तीर्थङ्कर भगवान् शांतिनाथ की ११ फुट ऊंची खड्गासन मूर्ति है।

२. सुपार्श्वनाथ बस्ति

यह मन्दिर २५ फुट लम्बा और १४ फुट चौड़ा है। इसमें ७ वें तीर्थङ्कर भगवान सुपार्श्वनाथ की ३ फुट ऊंची पद्मासन प्रतिमा है। मूर्त्ति पर सप्तफणी नाग की छाया हो रही है।

३. पार्श्वनाथ बस्ति

यह मन्दिर ५९ फुट लम्बा और २९ फुट चौड़ा है। इसमें एक गर्भगृह, एक सुखनासि, एक नवरङ्ग और एक ड्योढ़ी है। वास्तुकला की दृष्टि से यह मन्दिर मनोहर है। दरवाज़े विशाल हैं। नवरङ्ग और सामने की ड्योढ़ी की ओर बरामदे बने हुए हैं। बाहर की दीवारें खम्भों और छोटी-छोटी गुम्मटों से सजी हुई हैं।

इसमें २३वें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ की १५ फुट ऊंची विशाल और मनोज्ञ प्रतिमा है, जिस पर सप्तफणी नाग की छाया है। चन्द्रगिरि पर यही सबसे बड़ी मूर्ति है। मन्दिर के सामने मानस्तम्भ है जिसके चारों ओर यक्ष-यक्षणियों की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। नवरंग में एक शिलालेख में सन् ११२९ ई० में मल्लिषेण मलधारि के समाधिमरण का वर्णन है। यहां का मानस्तम्भ मैसूर के नरेश चिक्कदेवराज ओडेयर के समय में (सन् १६७२–१७०४) पुट्टेय नामक एक सेठ ने बनवाया था।

४. कत्तले बस्ति

यह मन्दिर १२४ फुट लम्बा और ४० फुट चौड़ा है। चन्द्रगिरि पर यह सबसे बड़ा मन्दिर है। गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणा है। नवरंग से मिला हुआ एक सभा-भवन भी है और एक बाहरी बरामदा भी। बाहरी ऊंची दीवार के कारण इस मन्दिर में अन्धेरा रहता है। इसलिए इस मन्दिर का नाम कत्तले बस्ति (अन्धेरेवाला मन्दिर) पड़ा है। बरामदे में पद्मावती की मूर्ति है। इसीसे इसे पद्मावती बस्ति भी कहते हैं। इस मन्दिर में प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव की ६ फुट ऊंची मनोहर प्रतिमा है। दोनों बाजुओं पर दो चौरीवाहक खड़े हुए हैं। मन्दिर के ऊपर का दूसरा खंड जीर्ण अवस्था में होने के कारण बन्द कर दिया गया है। यह मन्दिर होय्सल नरेश विष्णुवर्द्धन के सेनापति गङ्गराज ने अपनी मातुश्री पोचव्वे के हेतु सन् १११८ ई० के लगभग निर्माण कराया था।

५. चन्द्रगुप्त बस्ति

यह मन्दिर २२ फुट लम्बा और १६ फुट चौड़ा है। चन्द्रगिरि पर यह सबसे छोटा मन्दिर है। इसमें लगातार ३ कोठे हैं। सामने बरामदा है। बीच के कोठे में २३वें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ की मूर्ति है। दाएं कोठे में पद्मावती की और बायें में कूष्मांडिनी की मूर्ति है। बरामदे के दायें ओर यक्ष और बायें ओर सर्वाह्णयक्ष की मूर्ति है। बरामदे के सामने के दरवाज़े की कारीगरी देखने योग्य है। घेरे के पत्थरों पर जाली का काम है। इसपर श्रुतकेवली

भद्रबाहु और मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के कुछ दृश्य खुदे हुए हैं। यह अपूर्व कौशल का नमूना है ।

यह वह पवित्र मन्दिर है जिसे स्वयं महाराज चन्द्रगुप्त ने बनवाया था। इसी मन्दिर पर चामुण्डराय को स्वप्न आया था कि यदि तुम सामनेवाले पहाड़ पर एक स्वर्णबाण छोड़ो तो बाहुबली तुम्हें यहीं दर्शन देंगे।

६. चन्द्रप्रभु बस्ति

यह मन्दिर ४२ फुट लम्बा और २५ फुट चौड़ा है। ८ वें तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभु भगवान् की ३ फुट ऊँची पद्मासन मूर्ति है। इस मन्दिर में एक सुखनासि, गर्भगृह, नवरङ्ग और एक ड्योढ़ी है। सुखनासि में उक्त तीर्थङ्कर के यक्ष और यक्षिणी श्याम और ज्वालामालिनी विराजमान हैं। यह मन्दिर संभवतः सन् ८०० ईस्वी का बना हुआ है।

७. चामुण्डराय बस्ति

यह मन्दिर ६८ फुट लम्बा और ६६ फुट चौड़ा है। बनावट और सजावट की दृष्टि से इस पहाड़ पर यह सबसे बड़ा मन्दिर है। इसमें एक गर्भगृह, एक सुखनासि और एक नवरङ्ग हैं। इसपर दूसरा खण्ड और गुम्मट भी है। इसमें नेमिनाथ भगवान् की ५ फुट ऊंची मनोहर प्रतिमा है। बाहरी दीवारें स्तम्भों, आलों और उत्कीर्ण प्रतिमाओं से अलंकृत हैं। यह मन्दिर गङ्गनरेश राचमल्ल के मंत्री चामुण्डराय ने निर्माण कराया था। मन्दिर के ऊपर के खण्ड में एक पार्श्वनाथ भगवान् की तीन फुट ऊँची मूर्ति है।

८. शासन बस्ति

यह मन्दिर ५५ फुट लम्बा और २६ फुट चौड़ा है। इसमें एक गर्भगृह, एक सुखनासि और एक नवरङ्ग है। इसमें भगवान् आदिनाथ की ५ फुट ऊंची प्रतिमा है। मूर्ति के दोनों ओर चौरीबाहक खड़े हुए हैं। सुखनासि में गोमुख यक्ष और चक्रेश्वरी यक्षिणी की प्रतिमा है। बाहरी दीवारों में स्तभों और आलों की सजावट है। कहीं-कहीं प्रतिमाएं भी उत्कीर्ण हैं।

९. मज्जिगण बस्ति

यह मन्दिर ३२ फुट लम्बा और १९ फुट चौड़ा है। इसमें एक गर्भगृह, एक सुखनासि और एक नवरङ्ग है। इस मन्दिर में ३½ फुट ऊंची १४वें तीर्थङ्कर भगवान् अनन्तनाथ की प्रतिमा है। घेरे की दीवारों के बाहर फूलदार चित्रकारी है।

१०. एरडुकट्टे बस्ति

यह मन्दिर ५५ फुट लम्बा और २६ फुट चौड़ा है। इसमें ५ फुट ऊंची भगवान् आदिनाथ की प्रतिमा है। गर्भगृह के बाहर सुखनासि में यक्ष और यक्षिणी की मूर्तियां हैं।

११. सवतिगन्धवारण बस्ति

यह मन्दिर ६९ फुट लम्बा और ३५ फुट चौड़ा है। इस मन्दिर को विष्णुवर्द्धन नरेश की रानी शान्तलदेवी ने सन् ११२३ में बनवाया था। शान्तलदेवी को 'सवतिगन्धवारण' (सौतों के लिए मत्त हाथी) भी कहते थे। इस विशाल मन्दिर में भगवान् शांतिनाथ की मूर्ति प्रभावली संयुक्त पांच फुट ऊंची है। सुखनासि में किम्पुरुष यक्ष और महामानसि यक्षिणी की मूर्तियां हैं। गर्भगृह के ऊपर एक सुन्दर गुम्मट है।

१२. तेरिन बस्ति

यह मन्दिर ७० फुट लम्बा और २६ फुट चौड़ा है। इस मन्दिर के सन्मुख एक रथ (तेरु) के आकार की इमारत बनी हुई है। इसीसे इसका नाम तेरिन बस्ति पड़ा है। इसमें ५ फुट ऊंची भगवान बाहुबली की मूर्ति है। सामने के रथाकार मन्दिर पर चारों ओर ५२ जिनमूर्तियां खुदी हुई हैं। इसको नन्दीश्वर मन्दिर कहा जाता है।

१३. शान्तीश्वर बस्ति

यह मन्दिर ५६ फुट लम्बा और ३० फुट चौड़ा है। इसमें एक गर्भगृह, एक सुखनासि और एक नवरङ्ग है। यह मन्दिर ऊंची भूमि पर बना हुआ है। गुम्मट पर अच्छी कारीगरी है। गर्भगृह के बाहर यक्ष-यक्षिणी की मूर्तियां हैं। पीछे की दीवार के मध्यभाग में जो आला है, उसमें एक खड्गासन जिनमूर्ति उत्कीर्ण है।

१४. कूगे ब्रह्मदेव स्तम्भ

यह विशाल स्तम्भ चन्द्रगिरि पर्वत पर घेरे के दक्षिणी द्वार पर प्रतिष्ठित है। इसके शिखर पर पूर्वमुखी ब्रह्मदेव की छोटी-सी पद्मासन मूर्ति है। इसकी पीठिका आठों दिशाओं में आठ हस्तियों पर प्रतिष्ठित रही है, किन्तु अब थोड़े-से ही हाथी रह गए हैं।

१५. महानवमीमण्डप

कत्तले बस्ति के गर्भगृह के दक्षिण की ओर दो सुन्दर पूर्व-मुख चतुःस्तम्भ मण्डप बने हुए हैं। दोनों के मध्य में एक-एक लेखयुक्त स्तम्भ है। उत्तर की ओर के मण्डप के स्तम्भ

की बनावट बहुत सुन्दर है। उसका गुम्मटाकार शिखर भी दर्शनीय है। उसपर नयकीर्ति आचार्य के समाधिमरण का उल्लेख है।

१६. भरतेश्वर

महानवमी मण्डप से पश्चिम की ओर इमारत के समीप बाहुबली के बड़े भाई भरतेश्वर की ९ फुट ऊंची मूर्ति है। यह मूर्ति एक भारी चट्टान में घुटनों तक खोदकर अपूर्ण छोड़ दी गई है।

१७. इरूवे ब्रह्मदेव मन्दिर

यह मन्दिर घेरे के बाहर है। यहां ब्रह्मदेव की मूर्ति है। सामनेवाली चट्टान पर जिन-प्रतिमाएं, हाथी, स्तम्भ आदि खुदे हुए हैं।

१८. कञ्चिनदोणे

इरूवे ब्रह्मदेव मन्दिर के उत्तर-पश्चिम में एक चौकोर घेरे के भीतर चट्टान में एक कुण्ड है। यही कञ्चिनदोणे कहलाता है।

१९. लक्कि दोणे

यह एक दूसरा कुण्ड घेरे से पूर्व की ओर है। कुण्ड से पश्चिम की ओर चट्टान पर जो लेख हैं, उनमें जैन आचार्यों, कवियों और राजपुरुषों के नाम हैं।

२०. भद्रबाहु की गुफा

इस गुफा में अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहुस्वामी के चरण हैं।

२१. चामुण्डराय की शिला

चन्द्रगिरि पर्वत के नीचे जो चट्टान है उसे चामुण्डराय की शिला कहते हैं। कहा जाता है कि चामुण्डराय ने इसी शिला पर खड़े होकर विन्ध्यगिरि पर्वत की ओर बाण चलाया था जिससे गोम्मटेश्वर की विशाल मूर्ति प्रकट हुई थी। शिला पर कई जैन गुरुओं के चित्र हैं। वहां उनके नाम भी अङ्कित हैं।

: ७ :

श्रवणबेल्गोल नगर

श्रवणबेल्गोल चन्द्रगिरि और विन्ध्यगिरि के बीच में बसा हुआ है। यहाँ के प्राचीन स्मारक इस प्रकार हैं—

१. भण्डारि बस्ति

यह श्रवणबेल्गोल का सबसे बड़ा मन्दिर है। इसकी लम्बाई-चौड़ाई २६६×७७ फुट है। इसमें एक गर्भगृह में एक सुन्दर चित्रमय वेदी पर चौबीस तीर्थङ्करों की तीन-तीन फुट ऊंची मूर्तियाँ हैं। इसीसे इसे चौबीस तीर्थङ्कर बस्ति भी कहते हैं। वस्ति के सम्मुख एक पाषाणनिर्मित सुन्दर मानस्तम्भ है।

२. अक्कन बस्ति

नगर भर में यही बस्ति होय्यसल शिल्पकला का एकमात्र नमूना है। इस सुन्दर भवन में गर्भगृह, सुखनासि, नवरङ्ग और मुखमण्डप हैं। गर्भगृह में सप्तफणी पार्श्वनाथ की पाँच फुट ऊंची भव्य मूर्ति है। गर्भगृह के दरवाज़े पर बड़ा अच्छा खुदाई का काम है। नवरङ्ग के चार काले स्तम्भ, जो आइने के सदृश चमकीले हैं, और कला-कौशलपूर्ण नव-छत्र बड़े ही सुन्दर हैं, मन्दिर के गुम्मट अनेक प्रकार की जिन-मूर्त्तियों से चित्रित हैं, शिखर पर सिंहल लाट है। यह बस्ति होय्सल नरेश वल्ला (द्वितीय) के ब्राह्मण मंत्री चंद्रमौलि

की जैनधर्मावलम्बिनी भार्या आचियक्क ने निर्माण कराई थी। 'अक्कन' आचियक्कन का ही संक्षिप्त रूप है इसीसे इसे 'अक्कन बस्ति' कहते हैं।

३. सिद्धान्त बस्ति

यह बस्ति अक्कन बस्ति के पश्चिम की ओर है। किसी समय जैन सिद्धान्त के समस्त ग्रंथ इसी बस्ति के एक बन्द कमरे में रखे जाते थे। इसीसे इसका नाम सिद्धान्तबस्ति पड़ा। इसमें एक पाषाण पर चतुर्विंशति तीर्थङ्करों की प्रतिमाएं हैं। बीच में पार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिमा है और उनके आसपास शेष तीर्थङ्करों की।

४. दानशाले बस्ति

यह छोटा-सा देवालय अक्कन बस्ति के द्वार के पास ही है। इसमें एक तीन फुट ऊँचे पाषाण पर पंचपरमेष्ठी की प्रतिमाएं हैं। यहाँ पहले दान दिया जाता रहा होगा। इसीसे यह नाम पड़ा है।

५. नगरजिनालय

इस भवन में गर्भगृह, सुखनासि और नवरङ्ग हैं। इसमें आदिनाथ की प्रभावलिसंयुक्त अढ़ाई फुट ऊँची मूर्ति है। नवरंग की बाईं ओर एक गुफा में दो फुट ऊँची ब्रह्मदेव की मूर्ति है जिसके दायें हाथ में कोई फल और बायें हाथ में कोड़े के आकार की कोई चीज़ है। पैरों में खड़ाऊँ है। पीठिका पर घोड़े का चिह्न बना हुआ है। नगर के महाजनों द्वारा ही इसकी रक्षा होती थी इसीसे इसका नाम नगरजिनालय पड़ा।

६. मङ्गायि बस्ति

इसमें गर्भगृह, सुखनासि और नवरंग हैं। इसमें एक साढ़े चार फुट ऊँची शान्तिनाथ की मूर्ति विराजमान है। सुखनासि के द्वार पर आजू-बाजू पाँच फुट ऊँची चँवरवाहियों की मूर्तियाँ हैं। नवरंग में बर्द्धमान स्वामी की मूर्त्ति है।

७. जैन मठ

यह यहाँ के गुरु का निवास-स्थान है। इमारत बहुत सुन्दर है। बीच में खुला हुआ आँगन है। यहाँ के तीन गर्भगृहों में अनेक पाषाण और धातु की मूर्तियाँ हैं। नवदेवता बिम्ब में पंचपरमेष्ठी के अतिरिक्त जिनधर्म, जिनागम, चैत्य और चैत्यालय भी चित्रित हैं। मठ की दीवारों पर तीर्थङ्करों व जैन राजाओं के जीवन की घटनाओं के अनेक रंगीन चित्र हैं। पार्श्वनाथ के समवसरण व भरत चक्रवर्ती के जीवन के चित्र भी दर्शनीय हैं। चार चित्र नागकुमार की जीवन घटनाओं के हैं। ऊपर की मंज़िल में पार्श्वनाथ की मूर्ति है और एक काले पाषाण पर चतुर्विंशति तीर्थङ्कर खचित हैं।

८. कल्याणि

यह नगर के बीच के एक छोटे-से सरोवर का नाम है। इसके चारों ओर सीढ़ियाँ और दीवाल हैं। दीवाल के दरवाज़े शिखरबद्ध हैं। अनन्त-कवि-कृत गोम्मटेश्वरचरित में उल्लेख है कि चिक्क देवराज ने अपने टकसाल के अध्यक्ष अण्णप्प की प्रार्थना से 'कल्याणि' का निर्माण कराया।

९. जक्कि कट्टे

यह भण्डारि बस्ति के दक्षिण में एक छोटा-सा सरोवर है। इसके पास की दो चट्टानों पर जैन-प्रतिमाओं के नीचे दो लेख हैं।

१०. चेन्नण्ण का कुण्ड

नगर के दक्षिण की ओर कुछ दूरी पर यह कुण्ड है। इसका निर्माता चेन्नण्ण बस्ति का निर्माता चेन्नण्ण है।

: ८ :

निकटवर्ति-ग्राम

जिननाथपुर

यह श्रवणबेल्गोल से एक मील उत्तर की ओर है। (शांतिनाथबस्ति) यहाँ की शान्तिनाथबस्ति होय्सल-शिल्प-कला का बहुत सुन्दर नमूना है। शांतिनाथ की साढ़े पाँच फुट ऊंची मूर्त्ति बड़ी भव्य और दर्शनीय है। यह बस्ति मैसूर राज्य भर के जैन-मन्दिरों में सबसे अधिक आभूषित है।

अरेगलबस्ति

ग्राम के पूर्व में अरेगलबस्ति नाम का एक दूसरा मन्दिर है। यह शांतिनाथबस्ति से भी पुराना है। इसमें पार्श्वनाथ भगवान् की सप्तफणी, प्रभावलीसंयुक्त पाँच फुट ऊंची पद्मासन मूर्त्ति है। एक चट्टान (अरेगल) के ऊपर निर्मित होने से ही यह मन्दिर अरेगलबस्ति कहलाता है। मंदिर में चतुर्विंशति तीर्थङ्कर, पंचपरमेष्ठी, नवदेवता, नन्दीश्वर आदि की धातुनिर्मित मूर्त्तियां भी हैं। ग्राम की नैऋत दिशा में एक समाधिमण्डप है। इसे शिलाकूट कहते हैं।

हेलेबेल्गोल

यह ग्राम श्रवणबेल्गोल से चार मील उत्तर की ओर है। यहाँ का होय्सल-शिल्पकला का बना हुआ जैन मंदिर ध्वस्त

अवस्था में हैं। गर्भगृह में अढ़ाई फुट की खड्गासन मूर्ति है। कुछ खंडित मूर्त्तियाँ भी हैं।

साणेहल्लि

यह ग्राम श्रवणबेल्गोल से तीन मील पर है। यहाँ एक ध्वस्त जैन मंदिर है। इसे गंगराज की भावज जक्किमव्वे ने निर्माण कराया था।



हलेविड के विजयपार्श्वनाथ

: ९ :

दक्षिण के अन्य जैन-तीर्थ

हलेबिड

यह स्थान श्रवणबेल्गोल से ६४ मील और बेलूर से १० मील है। इसे द्वारसमुद्र भी कहते हैं। किसी समय इस नगर के आसपास ७२० जिनमंदिर थे, जिनको लिंगायतों ने नष्ट कर दिया। उनके भग्नावशेष आज भी जैन गौरव का स्मरण करा रहे हैं।

हलेबिड एक समय होय्सल नरेश विष्णुवर्द्धन की राजधानी थी। इसका राज्यकाल सन् ११११ से ११४१ ईस्वी था। पहले यह जैनधर्मानुयायी था। सन् १११७ ईस्वी में इसने श्री रामानुज के प्रभाव में आकर वैष्णव धर्म अंगीकार किया और इसके स्मृतिरूप विष्णुवर्द्धन ने बेलूर में एक बहुत विशाल केशव मंदिर बनवाया था। जैनधर्म छोड़ने के पश्चात् इसने न केवल जैन मन्दिरों का ध्वंस कराया, अपितु अगणित जैनियों को मृत्यु के घाट उतारा और उन्हें अनेक प्रकार के कष्ट दिये।

'स्थलपुराण' में वर्णन है, कि पृथ्वी विष्णुवर्द्धन के द्वारा जैनों को दिए हुए कष्ट सहन न कर सकी और उसके अत्याचार और संताप के कारण हलेबिड के दक्षिण में कई बार भूकम्प आये और पृथ्वी का कुछ भाग भू-गर्भ में समा गया। जनता

की काफी क्षति हुई। यद्यपि विष्णुवर्द्धन ने कई बार शांति-यज्ञ कराया, पर सब व्यर्थ। बहुत व्यय करने पर भी वह प्रकृति के रोष को न रोक सका। अन्त में विष्णुवर्द्धन को श्री शुभचन्द्राचार्य के पास श्रवणबेल्गोल जाना पड़ा।

आचार्य महोदय को, उसके जैनों पर किये गये अत्याचारों के समाचार पहले ही विदित थे। पहले तो उन्होंने उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की, किन्तु बहुत अनुनय-विनय के पश्चात् प्रजा के हित को ध्यान में रखकर उन्होंने विष्णुवर्द्धन को क्षमा किया। राजा ने जैनधर्म का विरोध न करने की प्रतिज्ञा की तथा राज्य की ओर से जैन-मंदिरों और मठों को जो दान दिया जाता था, उसको पूर्ववत् देने का आश्वासन दिलाया। इसके पश्चात् शांति-विधान हुआ।

हलेबिड में सन् ११३३ ईस्वी में बोप्पा ने, अपने पिता गंगराज की स्मृति में २३वें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ का मंदिर निर्माण कराया, जिसमें पार्श्वप्रभु की खड्गासन १४ फुट ऊँची काले पत्थर की बहुत मनोज्ञ प्रतिमा है। मूर्ति के दोनों ओर धरणेन्द्र और पद्मावती हैं। मूर्ति की आकृति श्रवण-बेल्गोल के गोम्मटेश्वर-जैसी ही है। इस मंदिर के १४ स्तंभ कसौटी के पत्थर के हैं। आगे के दो स्तंभों पर पानी डालने से उनका रंग काले से हरा हो जाता है। उसमें मनुष्य की उल्टी और फैली हुई छाया दिखाई देती है। मन्दिर यद्यपि बाहर से सादा है, किन्तु उसके अन्दर की कारीगरी दर्शनीय है। द्वार के दाहिनी ओर एक यक्ष की और बाईं ओर कूष्मांडिनीदेवी की मूर्ति है, समीप में एक सुन्दर सरोवर है।

कहते हैं कि जिस दिन इस मंदिर की प्रतिष्ठा हुई, उसी दिन होय्सल नरेश विष्णुवर्द्धन की एक युद्ध में विजय हुई और उसी दिन उनके पुत्र भी उत्पन्न हुआ। इस हर्षोपलक्ष में विष्णुवर्द्धन ने दान दिया और भगवान् पार्श्वनाथ के दर्शन करके उसका नाम 'विजयपार्श्वनाथ' रक्खा।

यहां पर ऐसे ही दो मन्दिर और हैं। मध्य के मन्दिर में प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव की मूर्ति है। यह मन्दिर सन् ११३८ में हेगडे मल्लिमाया ने बनवाया था। तृतीय मन्दिर सन् १२०४ ईस्वी का बना हुआ हं। इसमें १४ फुट ऊंची भगवान् शांतिनाथ की खड्गासन प्रतिमा है। यहां कई शिलालेख भी हैं। एक जैन मुनि का अपने शिष्य को उपदेश देने का दृश्य बड़ा ही प्रभावोत्पादक है। मूर्ति के दोनों ओर मस्तकाभिषेक करने के लिए निःश्रेणि (ज़ीना) बनी हुई हं, मंदिर के सामने मानस्तम्भ पर गोम्मटेश्वर की मूर्ति है।

हलेबिड में देखने योग्य एक होय्सलेश्वर मंदिर भी है। जितने स्थान में चतुर कारीगर ने यह मन्दिर बनाया, समस्त संसार में इतने स्थान में इससे अधिक कारीगरी का मन्दिर अन्यत्र नहीं। इतिहासज्ञों का अनुमान है, कि इस मन्दिर के निर्माण में ८६ वर्ष लगे और फिर भी यह अधूरा रहा। उसका शिखर अभी तक पूरा नहीं हुआ। यह भी शिल्प-कला का बेजोड़ नमूना है। मन्दिर की बाहरी दीवारों पर हाथी, सिंह और नाना प्रकार के पक्षी, देवी-देवता तथा ७०० फुट लम्बाई में रामायण के दृश्य दिखलाए गये हैं।

हलेबिड में आज जैनियों की आबादी नहीं है। सड़क के एक ओर होने के कारण उत्तर भारत के यात्री भी वहां कम जाते हैं।

बेणूर

यह ग्राम दक्षिण कनारा (कर्णाटक) में हलेबिड से लगभग ६० मील है। यहां पर श्रवणबेल्गोल के भट्टारक चारुकीर्ति की प्रेरणा से सन् १६०४ ईस्वी में चामुण्डराय के कुटुम्बी थिम्मराज ने भगवान् बाहुबली की ३७ फुट ऊंची खड्गासन प्रतिमा प्रतिष्ठित कराई थी। थिम्मराज ने एक मन्दिर शांतिनाथ भगवान् का निर्माण कराया। गोम्मटेश्वर की मूर्ति गुरपुर नदी के बाएं तट पर प्राकार में अत्यन्त मनोज्ञ और मनोहर दिखाई देती है। इनके अतिरिक्त बेणूर में ४ मन्दिर और हैं। एक मन्दिर में तो एक हज़ार से अधिक प्रतिमाएं विराजमान हैं।

मूडबद्री

बेणूर से मंगलोर जिले में मूडबद्री केवल १२ मील है। यहां जो धर्मशाला है उसमें एक समय में १०० से अधिक यात्री नहीं ठहर सकते। मूडबद्री किसी समय जैनविद्या का केन्द्र रहा है। वहां के शास्त्रभंडारों तथा मन्दिरों का प्रबन्ध भट्टारक और पंचों के आधीन हैं। आज भी वहां के शास्त्रभंडारों में अनेक अनुपलब्ध ग्रंथ ताड़पत्रों पर अंकित हैं। धवलादि सिद्धांतग्रंथों की एकमात्र प्राचीनतम प्रतियां यहीं सुरक्षित हैं।

यहां पर कुल २२ मन्दिर हैं। इनमें चन्द्रप्रभु का मन्दिर,

सिद्धांतमन्दिर और गुरुमन्दिर विशेष दर्शनीय हैं। चन्द्रप्रभु भगवान् का मन्दिर अत्यन्त प्राचीन और विशाल है। इसके चारों तरफ दो कोट, मानस्तंभ और दो हाथी हैं। चन्द्रप्रभु की विशाल प्रतिमा पञ्च धातुओं की बनी हुई है। धातु की इतनी बड़ी प्रतिमा अन्यत्र कहीं देखने में नहीं आई। इस मन्दिर को 'त्रिभुवन-तिलक-चूड़ामणि' कहते हैं। यह मन्दिर सन् १४२९ ईस्वी में ८-१० करोड़ रुपये की लागत से बना था। इसी मंदिर की दूसरी मंजिल में सहस्रकूट जिनालय में धातु की १००८ प्रतिमाएं अत्यन्त मनोहर हैं।

'सिद्धान्तबस्ति' मन्दिर में 'षटखंडागम सूत्रादि' सिद्धांत ग्रंथ हैं। हीरा, पन्ना, मूंगा, गरुड़मणि, पुष्पराग, वैडूर्य, चांदी, सोना आदि की ३५ प्रतिमाएं हैं। इन प्रतिमाओं के दर्शन प्रायः शाम को तीन से पांच बजे तक पञ्च लोग कुछ भंडार लेकर कराते हैं। यह रुपया मूडबद्री के समस्त मंदिरों के जीर्णोद्धार में व्यय होता है।

'गुरुबस्ति' मंदिर में भगवान् पार्श्वनाथ की १० फुट ऊंची मनोज्ञ प्रतिमा है।

इनके अतिरिक्त मूडबद्री में होसा बस्ति, विक्रमसेठी बस्ति, हीरी व अम्मनोर बस्ति, विट्टकेरी बस्ति, कोरी बस्ति, लिप्पद बस्ति, देरमसेठी बस्ति, कल्लु बस्ति, छोटी बस्ति, मादयसेठी बस्ति, बैकी बस्ति, केरे बस्ति, पडू बस्ति तथा भट्टारकजी का मन्दिर है।

कारकल अतिशय क्षेत्र

यह स्थान मुडबद्री से १० मील दूर है। प्रबन्ध यहां के

भट्टारकजी के हाथ में है और वहीं ठहरने की व्यवस्था करते हैं। भट्टारकजी के मठ से शहर आधा मील दूर पड़ता है। मठ के समीप ही पाठशाला, कुआं और तालाब हैं। मठ के उत्तर की ओर चौरासा पहाड़ पर एक मन्दिर है। इसमें ऋषभदेव से लेकर वासुपूज्य पर्यन्त चार दिशाओं में १०-१० हाथ ऊंची बारह खड्गासन प्रतिमाएं हैं। दक्षिणदिशा के पहाड़ पर कोट खिंचा हुआ है। एक फर्लाङ्ग ऊपर चढ़ने पर ४२ फीट ऊंची भगवान् बाहुबलि की प्रतिमा के दर्शन करके मन प्रसन्न हो जाता है।

इस मूर्ति को सन् १४३२ ई० में कारकलनरेश वीर पांड्य ने निर्माण कराया था। यहाँ भैरव, ओडेयर वंश के राजा प्रायः सब जैन थे। शान्तारवंश के महाराज लोकनाथरस के शासनकाल में सन् १३३४ ई० में कुमुदचन्द्र भट्टारक के बनवाये हुए शान्तिनाथ मन्दिर को उनकी बहनों और राज्याधिकारियों ने दान दिया था।

जब कि श्रवणबेल्गोल की मूर्ति विन्ध्यगिरि के पाषाण में से काट कर बनाई गई है, कारकल की विशाल मूर्ति, इस पहाड़ी से भिन्न प्रकार के पत्थर में से बनाकर, पहाड़ी के ऊपर दूर से लाकर विराजमान की गई है।

कन्नड़ी की कविता 'कारकल गोम्मटेश्वर चरित्र' में वर्णन है कि कारकल के गोम्मटेश्वर की प्रतिमा को ले जाने के लिये एक २० पहियों की लम्बी गाड़ी बनवाई गई थी और इसको ऊपर ले जाने के लिए पूरा एक महीना लगा था। आज इसका अनुमान लगाना भी कठिन है, कि यह सब कैसे

हुआ। इस पर कितना व्यय हुआ होगा?

वरांग क्षेत्र

यह स्थान कारकल से ३४ मील है। यहां एक धर्मशाला, कुआं, मकान व विशाल मंदिर हैं। उसमें लगभग २०० छोटी-बड़ी प्रतिमाएं हैं। इस मंदिर के सामने के तालाब में पावापुरी के समान कमल फूले रहते हैं। बीच में मंदिर है। उसके चारों तरफ चारों दिशा में दस प्रतिमाएं शांतमुद्रा-दशा में विराज रही हैं। यहां का प्रबन्ध पद्मावति होमचवाले भट्टारक के हाथ में है। इनके पास इस क्षेत्र सम्बन्धी 'स्थलपुराण' और 'माहात्म्य' बतलाया जाता है।

स्तवनिधि

यह स्थान बेलगांव-कोल्हापुर रोड पर, बेलगांव से ३८ मील पर रमणीक जंगल में है। यहां भगवान् पार्श्वनाथ की अतिशयवती प्रतिमा है। महावीरजी तीर्थ के समान यहां भी हज़ारों यात्री मनोति मनाने आते हैं। यहां चार मंदिर और एक मानस्तम्भ है।

सिद्धक्षेत्र कुंथलगिरि

इस तीर्थ के सम्बन्ध में निर्वाणकांड में निम्नलिखित गाथा आती है :—

"वंसत्थलवणणियरे, पच्छिमभायम्भिकुंथुगिरिसिहरे।
कुल-देश-भूषण मुणी, णिव्वाणगया णमो तेसिं।"

यह तीर्थ बार्सी टाउन से २२ मील कच्ची सड़क पर है। बार्सी टाउन को शोलापुर होकर जाते हैं।

यहां पर एक धर्मशाला और कुल दस मन्दिर तथा अच्छी-अच्छी प्रतिमाएं हैं। एक मंदिर में मौंहरा है। पहाड़ पर जाने को सीढ़ियां लगी हैं। बीच में सब मंदिर पड़ते हैं। पहाड़ का चढ़ाव सरल है। ऊपर बहुत बड़ा मूलनायक का मंदिर है। उसमें श्री आदिनाथ की प्राचीन प्रतिमा विराजमान है। देशभूषण और कुलभूषण मुनि यहां से मोक्ष को पधारे हैं। उन्हींकी चरण-पादुकाएं हैं।

: १० :

श्रवणबेलगोल-स्तवन

(१)

तुम प्राचीन कलाओं का आदर्श विमल दरशाते
भारतके ध्रुव गौरव-गढ़ पर जैन-केतु फहराते
कला-विश्व के सुप्त प्राण पर अमृत-रस बरसाते
निधियों के हृत साहस में नवनिधि-सौरभ सरसाते
आओ इस आदर्श कीर्ति के दर्शन कर हरषाओ
वन्दनीय हे जैनतीर्थ तुम युग-युग में जय पाओ ।।

(२)

शुभस्मरण कर तीर्थराज हे शुभ्र अतीत तुम्हारा
फूल-फूल उठता है अन्तस्तल स्वयमेव हमारा
सुरसरि-सदृश बहा दी तुमने पावन गौरव-धारा
तीर्थक्षेत्र जग में तुम हो देदीप्यमान ध्रुवतारा
खिले पुष्प की तरह विश्व में नवसुगन्ध महकाओ
वन्दनीय हे जैनतीर्थ तुम युग-युग में जय पाओ ।।

(३)

दिव्य विन्ध्यगिरि भव्य चन्द्रगिरि की शोभा है न्यारी
पुलकित हृदय नाच उठता है हो बरबस आभारी
श्रुत-केवली सुभद्रबाहु सम्राट् महा यश-धारी
तप तप घोर समाधिमरण कर यहीं कीर्ति बिस्तारी
उठो पूर्वजों की गाथाएं जग का मान बढ़ाओ
वन्दनीय हे जैनतीर्थ तुम युग-युगमें जय पाओ ।।

(४)

सात-आठ सौ शिलालेख का है तुममें दुर्लभ धन
श्रावक-राजा-सेनानी श्राविका-आर्यिका मुनिजन
धीर-वीर-गम्भीर कथाएं धर्म-कार्य संचालन
उक्त शिलालेखों में है इनका सुन्दरतम वर्णन
दर्शन कर इस पुण्य क्षेत्रका जीवन सफल बनाओ
वन्दनीय हे जैनतीर्थ तुम युग-युगमें जय पाओ ॥

(५)

पशु-रक्षा पर प्राण दिये जिन लोगोंने हँस-हँस कर
वीर-वधू सायिर्बे* लड़ी पति-संग समर के स्थल पर
चन्द्रगुप्त सम्राट् मौर्यका जीवन अति उज्ज्वलतर
चित्रित है इसमें इन सबका स्मृति-पट महामनोहर
आ-आ एक बार तुम भी इसके दर्शन कर जाओ
वन्दनीय हे जैनतीर्थ तुम युग-युगमें जय पाओ ॥

(६)

मन्दिर अति-प्राचीन कलामय यहां अनेक सुहाते
दुर्लभ मानस्तम्भ मनोहर अनुपम छवि दिखलाते
यहां अनेकानेक विदेशी दर्शनार्थ हैं आते
यह विचित्र निर्माण देख आश्चर्यचकित रह जाते
अपनी निरुपम कला देखने देशवासियों ! आओ
वन्दनीय हे जैनतीर्थ तुम युग-युगमें जय पाओ ॥

(७)

प्रतिमा गोम्मटदेव बाहुबलि की अति-गौरवशाली
देखो कितनी आकर्षक है चित्त-लुभानेवाली
बढ़ा रही शोभा शरीर पर चढ़ लतिका शुभशाली
मानों दिव्य कलाओंने अपने हाथों ही ढाली

---

*इनका प्राकृत नाम शावियब्बे है।

इस उन्नति के मूल केन्द्र में जीवन ज्योति जगाओ
वन्दनीय हे जैनतीर्थ तुम युग-युगमें जय पाओ ॥

(८)

ऊंचे सत्तावन सुफीट पर नभसे शीश लगाए
शोभा देती जैनधर्म का उज्ज्वल यश दरशाए
जिसने कौशल-कला-कलाविद के सम्मान बढ़ाए
देख-देख हैदर-टीपू-सुलतान जिसे चकराए
आओ इसका गौरव लख अपना सम्मान बढ़ाओ
वन्दनीय हे जैनतीर्थ तुम युग-युगमें यश पाओ ॥

(९)

गंग-वंश के राचमल्ल नृप विश्व-कीर्ति-व्यापक हैं
नृप-मन्त्री चामुण्डरायजी जिसके संस्थापक हैं
जो निर्माण हुआ नौसे नब्बे में यशवर्द्धक है
राज्य-वंश मैसूर आजकल जिसका संरक्षक है
उसकी देख-रेख रक्षामें अपना योग लगाओ
वन्दनीय हे जैनतीर्थ तुम युग-युगमें जय पाओ ॥

(१०)

कहे लेखनी पुण्य-तीर्थ क्या गौरव-कथा तुम्हारी
विस्तृत कीर्ति-सिन्धु तरने में है असमर्थ विचारी
नत मस्तक अन्तस्तल तन-मन-धन तुम पर बलिहारी
शत-शत नमस्कार तुम को हे नमस्कार अधिकारी
फिर सम्पूर्ण विश्व में अपनी विजय-ध्वजा फहराओ
वन्दनीय हे जैनतीर्थ तुम युग-युगमें जय पाओ ॥

जै० सि० भास्कर से] [कल्याणकुमार जैन 'शशि'

: ११ :

बाहुबलि-स्तवन

जिस वीरने हिंसा की हुकूमत को मिटाया ।
जिस वीरके अवतार ने पाखण्ड नशाया ॥
जिस वीरने सोती हुई दुनिया को जगाया ।
मानव को मानवीयता का पाठ पढ़ाया ॥
उस वीर, महावीर के कदमों में झुका सर ।
जय बोलियेगा एक बार प्रेम से प्रियवर !

कहता हूँ कहानी मैं सुनन्दा के नन्द की ।
जिसने न कभी दिल में गुलामी पसन्द की ॥
नौबत भी आई भाई से भाई के द्वन्द की ।
लेकिन न मोड़ा मुंह, न जुबां अपनी बन्द की ॥
आजादी छोड़ जीना जिसे नागवार था ।
बेशक स्वतन्त्रता से मुहब्बत थी, प्यार था ॥

थे 'बाहुबलि' छोटे, 'भरतराज' बड़े थे ।
छह-खण्ड के वैभव सभी पैरों में पड़े थे ॥
थे चक्रवर्ति, देवता सेवा में खड़े थे ।
लेकिन थे वे भाई कि जो भाई से लड़े थे ॥
भगवान ऋषभदेव के वे नौनिहाल थे ।
सानी न था दोनों ही अनुज बे-मिसाल थे ॥

भगवान तो, दे राज्य, तपोवन को सिधारे ॥
करने थे उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर्म के आरे ।
रहने लगे सुख-चैन से दोनों ही दुलारे ।
वे अपने-अपने राज्य में सन्तुष्ट विचारे ॥

इतने में उठी कान्ति की एक आभ विषैली।
जो देखते ही देखते ब्रह्माण्ड में फैली॥

करने के लिए दिग्विजय भरतेश चल पड़े।
कदमों में गिरे शत्रु, नहीं रह सके खड़े॥
थी ताब, यह किसकी कि जो चक्री से आ लड़े?
यों, आके मिले आप ही राजा बड़े-बड़े॥
फिर हो गया छह-खण्ड में भरतेश का शासन।
पुजने लगा अमरों से नरोत्तम का सिंहासन॥

था सबसे बड़ा पद जो हुकूमत का वो पाया।
था कौन बचा, जिसने नहीं सिर था झुकाया?
दल देव-व-दानव का जिसे पूजने आया।
फिरती थी छहों खण्ड में भरतेश की छाया॥
यह सत्य हर तरह है कि मानव महान् था।
गो, था नहीं परमात्मा; पर, पुण्यवान् था॥

अब लौटा राजधानी को चक्रीश का दल-बल।
जिस देश में आया कि वहीं पड़ गई हल-चल॥
ले-लेके आए भेंट—जवाहरात, फूल-फल।
नरनाथ लगे पूछने—भरतेश की कुशल॥
स्वागत किया, सत्कार किया सबने मोद भर।
था गूंजता भरतेश की जयघोष से अम्बर॥

था कितना विभव साथ में, कितना था सैन्य-दल।
कैसे करूं बयान, नहीं लेखनी में बल॥
हां इतना, इशारा ही मगर काफी है केवल।
सब कुछ था मुहैया, जिसे कर सकता पुण्य-फल॥
सेवक करोड़ों साथ थे, लाखों थे ताजवर।
अगणित थे अस्त्र, शस्त्र; देख थरहरे कायर॥

उत्सव थे राजधानी के हर शख्स के घर में ।
खुशियां मनाई जा रही थीं .खूब नगर में ॥
थे आ रहे चक्रीश, चक्ररत्न ले कर में ।
चर्चाएँ दिग्विजय की थीं घर-घर में डगर में ॥
इतने में एक बाधा नई सामने आई ।
दम-भर के लिए सबको मुसीबत-सी दिखाई ॥

जाने न लगा चक्र नगर-द्वार के भीतर ।
सब कोई खड़े रह गए जैसे कि हों पत्थर ॥
सब रुक गई सवारियां, रास्ते को घेर कर ।
गोया थमा हो मंत्र की ताकत से समुन्दर ॥
चक्रीश लगे सोचने—'ये माजरा क्या है ?
है किसकी शरारत कि जो ये विघ्न हुआ है ?'

क्योंकर नहीं जाता है चक्र अपने देश को ?
है टाल रहा किसलिये अपने प्रवेश को ?
आनन्द में क्यों घोल रहा है कलेश को ?
मिटना रहा है शेष, कहां के नरेश को ?
बाकी बचा है कौन-सा इन छओं खण्ड में ?
जो डूब रहा आज तक अपने घमण्ड में ॥

जब मंत्रियों ने फ़िक्र में चक्रीश को पाया ।
माथा झुका के, सामने आ भेद बताया ॥
'बाहुबली का गढ़ नहीं अधिकार में आया ।
है उसने नहीं आके अभी शीश झुकाया ॥
जबतक न वे अधीनता स्वीकार करेंगे ।
तबतक प्रवेश देश में हम कर न सकेंगे' ॥

क्षण-भर तो रहे मौन, फिर ये बैन उचारा ।—
'भेजो अभी आदेश उन्हें दूत के द्वारा' ॥

आदेश पा भरतेश का तब भृत्य सिधारा ।
लेकर के चक्रवर्ती की आज्ञा का कुठारा ॥
वाचाल था, विद्वान, चतुर था, प्रचण्ड था ।
चक्री के दूत होने का उसको घमण्ड था ॥

बोला कि—'चक्रवर्ति को जा शीश झुकाओ ।
या रखते हो कुछ दम तो फिर मैदान में आओ ।
मैं कह रहा हूँ उसको शीघ्र ध्यान में लाओ ।
स्वामी की शरण जाओ, या वीरत्व दिखाओ ॥'
सुनते रहे बाहूबली गंभीर हो वानी ।
फिर कहने लगे दूत से वे आत्म-कहानी ॥

'रे, दूत ! अहंकार में खुद को न डुबा तू ।
स्वामी की विभव देख कर मत गर्व में आ तू ॥
वाणी को और बुद्धि को कुछ होश में ला तू ।
इन्सान के जामे को न हैवान बना तू ॥
सेवक की नहीं जैसी कि स्वामी की जिन्दगी ।
क्या चीज है दुनिया में गुलामी की जिन्दगी ॥

स्वामी के इशारे पं जिसे नाचना पड़ता ।
ताज्जुब है कि वह शख्स भी, है कैसे अकड़ता ?
मुर्दा हुई-सी रूह में है जोश न बढ़ता ।
ठोकर भी खा के स्वामी के पैरों को पकड़ता ॥
वह आ के अहंकार की आवाज में बोले ।
अचरज की बात है कि लाश पुतलियां खोले ॥'

सुनकर ये, राजदूत का चेहरा बिगड़ गया ।
चुपचाप खड़ा रह गया, लज्जा से गड़ गया ॥
दिल से गरूर मिट गया, पैरों में पड़ गया ।
हैवानियत का डेरा ही गोया उखड़ गया ॥

पर, बाहुबली-राज का कहना रहा जारी ।
वह यों, जवाब देने की उनकी ही थी बारी ॥

बोले कि—'चक्रवर्ति से कह देना ये आकर ।
बाहुबली न अपना झुकाएँगे कभी सर ॥
मैं भी तो लाल उनका हूँ हो जिनके तुम पिसर ।
दोनों को दिए थे उन्होंने राज्य बराबर ॥
सन्तोष नहीं तुमको ये अफसोस है मुझको ।
देखो जरा से राज्य पै, क्या तो है मुझको ॥

अब मेरे राज्य पर भी है क्यों दांत तुम्हारा ?
क्यों अपने बड़प्पन का चलाते हो कुठारा ?
मैं तुच्छ-सा राजा हूँ, अनुज हूँ मैं तुम्हारा ।
दिखलाइयेगा मुझको न वैभव का नजारा ॥
नारी की तरह होती है राजा की सल्तनत ।
यों, बन्धु की गृहणी पै न बद कीजिए नीयत ॥

छोटा हूँ, मगर स्वाभिमान मुझमें कम नहीं ।
बलिदान का बल है, अगर लड़ने का दम नहीं ॥
'स्वातंत्र' के हित प्राण भी जाएँ तो ग़म नहीं ।
लेकिन तुम्हारा दिल है वह जिसमें रहम नहीं ॥
कह देना चक्रधर से झुकेगा ये सर नहीं ।
बाहुबली के दिल पै जरा भी असर नहीं ॥

बेचूंगा न आजादी को, लेकर म ग़ुलामी ।
भाई हैं बराबर के, हों क्यों सेवको स्वामी ?
मत डालिए अच्छा है यही प्यार में खामी ।
आऊँगा नहीं जीते-जी देने को सलामी ॥'
सुन कर के वचन, राजदूत लौट के आया ।
भरतेश को आकर के सभी हाल सुनाया ॥

चुप सुनते रहे जब तलक, काबू में रहा दिल ।
पर, देर तक खामोशी का रखना हुआ मुश्किल ॥
फिर बोले ज़रा ज़ोर से, हो क्रोध से ग़ाफ़िल ।
'मरने के लिए आएगा, क्या मेरे मुक़ाबिल ?
छोटा है, मगर उसको बड़ा-सा ग़रूर है ।
मुझको घमण्ड उसका मिटाना ज़रूर है ॥'

फिर क्या था, समर-भूमि में बजने लगे बाजे ।
हथियार उठाने लगे नृप थे जो विराजे ॥
घोड़े भी लगे हींसने, गजराज भी गाजे ।
कायर थे, छिपा आंख वे रण-भूमि से भाजे ॥
सुभटों ने किया दूर जब इन्सान का जामा ।
घन-घोर से संग्राम का तब सज गया सामां ॥

दोनों ही पक्ष आ गए, आकर अनी भिड़ी ।
सबको यक़ीन यह था कि दोनों में अब छिड़ी ॥
इतने में एक बात वहां ऐसी सुन पड़ी ।
जिसने कि युद्ध-क्षेत्र में फैला दी गड़बड़ी ॥
हाथों में उठे रह गए जो शस्त्र उठे थे ।
मुंह रह गए वे मौन जो कहने को खुले थे ॥

ये सुन पड़ा—न वीरों के अब खून बहेंगे ।
भरतेश व बाहूबली खुद आके लड़ेंगे ॥
दोनों ही युद्ध करके स्व-बल आजमालेंगे ।
हारेंगे वही विश्व की नज़रों में गिरेंगे ॥
दोनों ही बली, दोनों ही हैं चरम-शरीरी ।
धारण करेंगे बाद को दोनों ही फ़क़ीरी ॥

क्या फायदा है व्यर्थ में जो फौज कटाएं ?
बेकार ग़रीबों का यहां खून बहाएं ?

दोजख का सीन किसलिए हम सामने लाएं ?
क्यों नारियों को व्यर्थ में विधवाएं बनाएं ?
दोनों के मंत्रियों ने इसे तय किया मिलकर ।
फिर दोनों नरेशों ने दी स्वीकारता इस पर ॥

तब युद्ध तीन किस्म के होते हैं मुकर्रर ।
जल-युद्ध, मल्ल-युद्ध, दृष्टि-युद्ध, भयंकर ॥
फिर देर थी या ? लड़ने लगे दोनों बिरादर ।
दर्शक हैं खड़े देखते इकटक किए नजर ॥
कितना यह दर्दनाक है दुनिया का रवैया ।
लड़ता है जर-जमीं को यहां भैया से भैया ॥

अचरज में सभी डूबे जब ये सामने आया ।
जल-युद्ध में चक्री को बाहूबलि ने हराया ॥
झुंझला उठे भरतेश कि अपमान था पाया ।
था सब्र, कि है जंग अभी और बकाया ॥
'इस जीत में बाहूबली के कद की ऊंचाई ।—
लोगों ने कहा—खूब ही यह काम में आई !!'

भरतेश के छींटे सभी लगते थे गले पर ।
बाहूबली के पड़ते थे जा आंख के अन्दर ॥
दुखने लगी आँखें, कि लगा जैसे हो खंजर ।
आखिर यों, हार माननी ही पड़ गई थक कर ॥
डाईसौ-धनुष-दुगनी थी चक्रीश की काया ।
लघु-भ्रात की पच्चीस अधिक, भाग्य की माया ॥
फिर दृष्टि-युद्ध, दूसरा भी सामने आया ।
अचरज, कि चक्रवर्ति को इसमें भी हराया ॥
लघु-भ्रात को इसमें भी सहायक हुई काया ।
सब दंग हुए देख ये अनहोनी-सी माया ॥

चक्रीश को पड़ती थी नजर अपनी उठानी ।
पड़ती थी जब कि दृष्टि बाहूबली को झुकानी ॥

गर्दन भी थकी, थक गए जब आँख के तारे ।
लाचार हो कहना पड़ा भरतेश को—'हारे' ॥
गुस्से में हुईं आँखें, धधकते से अंगारे ॥
पर, दिल में बड़े जोर से चलने लगे आरे ।
तन करके रोम-रोम खड़ा हो गया तन का ।
मुँह पर भी झलकने लगा जो क्रोध था मन का ॥

सब कांप उठे क्रोध जो चक्रीश का देखा ।
चेहरे पर उभर आई थी अपमान की रेखा ॥
सब कहने लगे–'अब के बदल जायेगा लेखा ।
रहने का नहीं चक्री के मन, जय का परेखा ॥'
चक्रीश के मन में था–'विजय अबके मैं लूंगा ।
आते ही अखाड़े, उसे मद-हीन करूंगा ॥'

वह वक्त भी फिर आ ही गया भीड़ के आगे ।
दोनों ही सुभट लड़ने लगे क्रोध में पागे ॥
हम भाग्यवान् इनको कहें, या कि अभागे ?
आपस में लड़ रहे जो खड़े प्रेम को त्यागे ।
होती रही कुछ देर घमासान लड़ाई ।
भरपूर दावपेच में थे दोनों ही भाई ॥

दर्शक थे दंग—देख विकट युद्ध—थे थर-थर ।
देवों से घिर रहा था समर-भूमि का अम्बर ॥
नीचे था युद्ध हो रहा दोनों में परस्पर ।
बाहूबली नीचे कभी ऊपर थे चक्रधर ॥
फिर देखते ही देखते ये दृश्य दिखाया ।
बाहूबली ने भरत को कंधे पै उठाया ॥

यह पास था कि चक्री को धरती पै पटक दें।
अपनी विजय से विश्व की सीमाओं को ढक दें॥
रण-थल में बाहुबल से विरोधी को चटक दें।
भूले नहीं जो जिन्दगी-भर ऐसा सबक दें॥
पर, मन में सौम्यता की सही बात ये आई।—
'आखिर तो पूज्य हैं कि पिता-सम बड़े भाई!!'

उस ओर भरतराज का मन क्रोध में पागा।
'प्राणान्त कर दूं भाई का, यह भाव था जागा॥
अपमान की ज्वाला में मनुज-धर्म भी त्यागा।
फिर चक्र चलाकर किया सोने में सुहागा॥
वह चक्र जिसके बल पै छहों खण्ड झुके थे।
अमरेश तक भी हार जिससे मान चुके थे॥

कन्धे से ही उस चक्र को चक्री ने चलाया।
सुरनर ने तभी 'आह' से आकाश गुंजाया॥
सब सोच उठे–'दैव के मन क्या है समाया?'
पर चक्र ने भाई का नहीं खून बहाया॥
वह सौम्य हुआ, छोड़ बनावट की निठुरता।
देने लगा प्रदक्षिणा, धर मन में नम्रता॥

फिर चक्र लौट हाथ में चक्रीश के आया।
सन्तोष-सा, हर शख्स के चेहरे पै दिखाया॥
श्रद्धा से बाहुबलि को सबने भाल झुकाया।
फिर कालचक्र दृश्य नया सामने लाया॥—
भरतेश को रणभूमि में धीरे से उतारा।
तत्काल बहाने लगे फिर दूसरी धारा॥

धिक्कार है दुनिया कि है दमभर का तमाशा।
भटकाता, भ्रमाता है पुण्य-पाप का पाशा॥

कर सकते वफादारी की हम किस तरह आशा ?
है भाई जहाँ भाई ही के खून का प्यासा ॥
चक्रीश ! चक्र छोड़ते क्या यह था विचारा ?
मर जाएगा बेमौत मेरा भाई दुलारा ॥

भाई के प्राण से भी अधिक राज्य है प्यारा ।
दिखला दिया तुमने इसे, निज कृत्य के द्वारा ॥
तीनों ही युद्ध में हुआ अपमान तुम्हारा ।
जब हार गए, न्याय से हट चक्र भी मारा ॥
देवोपुनीत शस्त्र न करते हैं वंश-घात ।
भूले इसे भी, आ गया जब दिल में पक्षपात ॥

प बच गया पर तुमने नहीं छोड़ी कसर थी ।
सोचो, जरा भी दिल में मुहब्बत की लहर थी ?
दिल में था जहर, आग के मानिंद नजर थी ।
थे चाहते कि जल्द बंधे भाई की अरथी ॥
अन्धा किया है तुमको, परिग्रह की चाह ने ।
सब कुछ भुला दिया है गुनाहों की छाह ने ॥

सोचो तो, बना रह सका किसका घमण्ड है ?
जिसने किया उसीका हुआ खण्ड-खण्ड है ॥
अपमान, अहंकार की चेष्टा का दण्ड है ।
किस्मत का बदा, बल सभी बल में प्रचण्ड है ॥
है राज्य की ख्वाहिश तुम्हें लो राज्य संभालो ।
गद्दी पै विराजे उसे कदमों में झुकालो ॥

उस राज्य को धिक्कार कि जो मद में डुबा दे ।
अन्याय और न्याय का सब भेद भुला दे ॥
भाई की मुहब्बत को भी मिट्टी में मिला दे ।
या यों कहो—इन्सान को हैवान बनादे ॥

दरकार नहीं ऐसे घृणित राज्य की मन को।
मैं छोड़ता हूँ आज से इस नारकीपन को॥'

यह कहके चले बाहुबलि मुक्ति के पथ पर।
सब देखते रहे कि हुए हों सभी पत्थर॥
भरतेश के भीतर था व्यथाओं का बवण्डर।
स्वर मौन था, अटल थे, कि धरती पै थी नज़र॥
आँखों में आगया था दुखी-प्राण का पानी।
या देख रहे थे बड़े वैभव की कहानी॥

× × × ×

जाकर के बाहुबलि ने तपोवन में जो किया।
उस कृत्य ने संसार सभी दंग कर दिया॥
तपव्रत किया कि नाम जहां में कमा लिया।
कहते हैं तपस्या किसे, इसको दिखा दिया॥
कायोत्सर्ग वर्ष भर अविचल खड़े रहे।
ध्यानस्थ इस कदर रहे, कवि किस तरह कहे?

मिट्टी जमी शरीर से सटकर, इधर-उधर।
फिर दूब उगी, बेलें बढ़ीं बाहों पै चढ़ कर॥
बांबी बना के रहने लगे मौज से फनधर॥
मृग भी खुजाने खाज लगे ठूंठ जानकर॥
निस्पृह हुए शरीर से वे आत्मध्यान में।
चर्चा का विषय बन गए सारे जहान में॥

पर, शल्य रही इतनी गोमटेश के भीतर।
'ये पैर टिके हैं मेरे चक्री की भूमि पर।'
इसने ही रोक रखा था कैवल्य का दिनकर।
वरना वो तपस्या थी तभी जाते पाप झर॥

यह बात बढ़ी और सभी देश में छाई ॥
इतनी कि चक्रवर्ति के कानों में भी आई ॥
सुन, दौड़े हुए आए भक्तिभाव से भरकर ।
फिर बोले मधुर-बैन ये चरणों में झुका सर ॥
'योगीश ! उसे छोड़िये जो द्वन्द्व है भीतर ।
हो जाय प्रगट जिससे शीघ्र आत्म दिवाकर ॥
हो धन्य, पुण्यमूर्ति ! कि तुम हो तपेश्वरी !
प्रभु ! कर सका है कौन तुम्हारी बराबरी ?
मुझसे अनेकों चक्री हुए, होते रहेंगे ।
यह सच है कि सब अपनी इसे भूमि कहेंगे ॥
पर, आप सचाई पै अगर ध्यान को देंगे ।
तो चक्रधर की भूमि कभी कह न सकेंगे ॥
मैं क्या हूँ ? तुच्छ ! भूमि कहाँ ? यह तो विचारो ।
कांटा निकाल दिल से अकल्याण को मारो ॥'
चक्री ने तभी भाल को धरती से लगाया ।
पदरज को उठा भक्ति से मस्तक पै चढ़ाया ॥
गोया ये तपस्या का ही सामर्थ्य दिखाया—
पुजना जो चाहता था वही पूजने आया ॥
फिर क्या था, मन का द्वन्द्व सभी दूर हो गया ।
अपनी ही दिव्य-ज्योति से भरपूर हो गया ॥
कैवल्य मिला, देवता मिल पूजने आए ।
नरनारियों ने खूब ही आनन्द मनाए ॥
चक्री भी अन्तरंग में फूले न समाए ।
भाई की आत्म-जय पै अश्रु आँख में आए ॥
है वंदनीय, जिसने गुलामी समाप्त की ।
मिलनी जो चाहिए, वही आजादी प्राप्त की ॥

× × × ×

उन गोम्मटेश-प्रभु के सौम्य-रूप की झांकी।
वर्षों हुए कि विज्ञ शिल्पकार ने आंकी॥
कितनी है कलापूर्ण, विशद्, पुण्य की झांकी।
दिल सोचने लगता है, चूमूं हाथ या टांकी?
है श्रवणबेलगोल में वह आज भी सुस्थित।
जिसको विदेशी देख के होते हैं चकितचित॥

कहते हैं उसे विश्व का वे आठवां अचरज।
खिल उठता जिसे देख अन्तरंग का पंकज॥
झुकते हैं और लेते हैं श्रद्धा से चरणरज।
ले जाते हैं विदेश उनके अक्स का कागज॥
वह धन्य, जिसने दर्शनों का लाभ उठाया।
बेशक सफल हुई है उसी भक्त की काया॥

उस मूर्ति से है शान कि शोभा है हमारी।
गौरव है हमें, हम कि हैं उस प्रभु के पुजारी॥
जिसने कि गुलामी की बला सिर से उतारी।
स्वाधीनता के युद्ध की था जो कि चिंगारी॥
आज़ादी सिखाती है गोम्मटेश की गाथा।
झुकता है अनायास भक्तिभाव से माथा॥

× × × ×

'भगवत्' उन्हीं-सा शौर्य हो, साहस हो, सुबल हो।
जिससे कि मुक्ति-लाभ लें, नर जन्म सफल हो॥

अनेकांत से] [—भगवत जैन

वीरसेवामन्दिर के अन्य प्रकाशन

(१) पुरातन-जैनवाक्य-सूची—प्राकृतके प्राचीन ६४ मूल ग्रन्थोंकी पद्यानुक्रमणी, जिसके साथ ४८ टीकादिग्रन्थों में उद्धृत दूसरे प्राकृत पद्यों की भी अनुक्रमणी लगी हुई है। सब मिलाकर २५३५३ पद्य-वाक्यों की सूची। संयोजक और सम्पादक मुख्तार, जुगलकिशोर की गवेषणापूर्ण महत्व की १७० पृष्ठ की प्रस्तावना से अलंकृत, डा० कालिदास नाग एम. ए., डी. लिट् के प्राक्कथन (Foreword) और डा. ए. एन. उपाध्याय एम. ए., डी. लिट् की भूमिका (Introduction) से विभूषित है। शोध-खोज के विद्वानों के लिए अतीव उपयोगी, बड़ा साइज, ... सजिल्द १५)
(प्रस्तावनादि का अलग से मूल्य ५ रु.)

(२) आप्तपरीक्षा—श्रीविद्यानन्द्याचार्य की स्वोपज्ञसटीक अपूर्वकृति, आप्तों की परीक्षा-द्वारा ईश्वर-विषय के सुन्दर, सरस और सजीव विवेचन को लिये हुए, न्यायाचार्य पं० दरबारीलाल के हिन्दी अनुवाद तथा प्रस्तावनादि से युक्त। सजिल्द ८)

(३) न्यायदीपिका—न्याय-विद्या की सुन्दर पोथी, न्यायाचार्य पं० दरबारीलालजी के संस्कृत टिप्पण, हिन्दी अनुवाद, विस्तृत प्रस्तावना और अनेक उपयोगी परिशिष्टों से अलंकृत। सजिल्द ५)

(४) स्वयम्भूस्तोत्र—समन्तभद्रभारती का अपूर्व ग्रन्थ, मुख्तार जुगलकिशोर के विशिष्ट हिन्दी अनुवाद, छन्दपरिचय, समन्तभद्र-परिचय और भक्तियोग, ज्ञानयोग तथा कर्मयोग का विश्लेषण करती हुई महत्व की गवेषणापूर्ण १०६ पृष्ठ की प्रस्तावना से सुशोभित। २)

(५) स्तुतिविद्या—स्वामी समन्तभद्र की अनोखी कृति, पापों को जीतने की

कला, सटीक, सानुवाद और जुगलकिशोरमुख्तारकी महत्वकी प्रस्तावना से अलंकृत, सुन्दर जिल्द-सहित। १॥)

(६) अध्यात्मकमलमार्तण्ड—पंचाध्यायीकार कवि राजमल्लकी सुन्दर आध्यात्मिक रचना, हिन्दी अनुवाद-सहित और मुख्तार जुगलकिशोर की खोजपूर्ण ७८ पृष्ठ की विस्तृत प्रस्तावना से भूषित। १॥)

(७) युक्त्यनुशासन—तत्वज्ञान से परिपूर्ण समन्तभद्र की असाधारण कृति, जिसका अभी तक हिन्दी अनुवाद नहीं हुआ था। मुख्तार जुगलकिशोर के विशिष्ट हिन्दी अनुवाद और प्रस्तावनादिसे अलंकृत, सजिल्द १।)

(८) श्रीपुरपार्श्वनाथस्तोत्र—आचार्य विद्यानन्दिरचित, महत्व की स्तुति, न्या. पं. दरबारीलाल के हिन्दी अनुवादादि-सहित। ॥।)

(९) शासनचतुस्त्रिंशिका—(तीर्थ-परिचय)—मुनि मदनकीर्ति की १३वीं शताब्दी की सुन्दर रचना, न्या. पं. दरबारीलाल के हिन्दी अनुवादादि-सहित .... ॥।)

(१०) सत्साधु-स्मरण-मंगलपाठ—श्रीवीर वर्द्धमान और उनके बाद के २१ महान् आचार्यों के १३७ पुण्य स्मरणों का महत्वपूर्ण संग्रह, संयोजक मुख्तार जुगलकिशोर के हिन्दी अनुवादादि-सहित। ॥)

(११) विवाह-समुद्देश्य—मुख्तार जुगलकिशोर का लिखा हुआ विवाह का सप्रमाण मार्मिक और तात्त्विक विवेचन .... ॥)

(१२) अनेकान्त-रस-लहरी—अनेकान्त जैसे गूढ़ गंभीर विषय को अतीव सरलता से समझने-समझाने की कुञ्जी, मुख्तार जुगलकिशोर-लिखित। .... ।)

(१३) अनित्यभावना—श्रीपद्मनन्दि आचार्य की महत्त्व की रचना, मुख्तार जुगलकिशोर के हिन्दी पद्यानुवाद और भावार्थ-सहित। ।)

(१४) तत्वार्थसूत्र (प्रभाचन्द्रीय)—मुख्तार जुगलकिशोर के हिन्दी अनुवाद तथा व्याख्या से युक्त .... ।)

(१५) बनारसी नाममाला—कविवर बनारसीदास की सुन्दर रचना, शब्दकोश-सहित .... ।)

(१६) उमास्वामी-श्रावकाचार-परीक्षा—मुख्तार जुगलकिशोर के द्वारा लिखित ग्रन्थ-परीक्षाओं के इतिहास-सहित ।)

(१७) समाधितन्त्र—श्रीपूज्यपादाचार्य-विरचित उत्तम आध्यत्मिक ग्रन्थ, संस्कृतटीका, हिंदी अनुवाद और मुख्तार जुगलकिशोर की खोजपूर्ण प्रस्तावनाके साथ। (इसका पहला संस्करण समाप्त हो चुका है) अब यह पुनः 'इष्टोपदेश' के साथ छप रहा है।

वीर सेवा मन्दिर

१, दरियागंज, दिल्ली